प्रथम संस्करण १९४८

'प्रसाद' की मित्रता के नाते
कवि की पुण्य-स्मृति में
प्रिय बन्धु
श्री वाचस्पति पाठक
को

प्रथम संस्करण १९४६

मुद्रक—पं० रामभरोसे मालवीय, अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।
प्रकाशक—किताब महल, ५६-ए, जीरो रोड, इलाहाबाद।

'प्रसाद' की मित्रता के नाते
कवि की पुण्य-स्मृति में
प्रिय बन्धु
श्री वाचस्पति पाठक
को

जयशंकर प्रसाद

हिंदी के आधुनिक कवियों में श्री जयशङ्कर प्रसाद अग्रगण्य थे। एक तरह से नए काव्य की दाग-बेल उन्होंने ही डाली और चतुर्थ शताब्दी के परिश्रम से उसकी रूपरेखा स्थिर की। 'छाया-वाद' की विभिन्न प्रवृत्तियों को 'प्रसाद' के काव्य और कला के माध्यम से ही समझा जा सकता है।

इन्हीं कृती कवि के काव्य की अनेक दिशाओं की समालोचना इस पुस्तक का विषय है। 'इंदु' (१६०६) में प्रकाशित प्रसाद की आरंभिक रचनाओं से लेकर 'कामायिनी' (१६३६) तक के सारे सप्तकों को इन पृष्ठों में परखा गया है। 'कामायिनी' और 'आँसू' की विशद व्याख्या इस पुस्तक की नई विशेषता है। 'आँसू' के पहले संस्करण की टीका भी दे दी गई है, जिससे सुधी पाठकों के लिए उसमें अस्पष्टता न रहे।

आशा है, यह पुस्तक 'प्रसाद' के काव्य को सुबोध और सरल बनायेगी। छायावाद-काव्य के एक प्रधान स्तंभ की रचनाओं की समीक्षा आपके हाथ में है।

गांधीजयन्ती, १६४६ | रामरतन भटनागर

तालिका

१

भूमिका : 'छायावाद'

भारतेन्दु (१८५०—८५) के साथ हिंदी कविता के विषयों और उनके प्रकाशन की शैली में क्रांति हो गई। इतिहास की दृष्टि से वर्तमान काल कुछ पहले, लगभग प्लासी युद्ध (१७५७ से) आरंभ हो जाता है, परन्तु हिंदी कविता पर नवीन प्रभाव गदर (१८५७) के बाद से ही पड़ने आरम्भ हुए। इन्होंने ही कालांतर में उसका रूप बदल दिया। अतः भारतेन्दु को ही वर्तमान हिंदी कविता का 'आदि कवि' होने का श्रेय मिलता है।

प्राचीन हिंदी कविता के विषय धर्म और शृङ्गार थे, नवीन हिंदी काव्य में धर्म को गौण स्थान मिला। प्राचीन कवि रस-पुष्टि पर अधिक बल देते, नवीन कवि भाव-प्रकाशन और भाव-पुष्टि को ध्यान में रखते थे। देश की नवीन परिस्थितियों ने स्वतंत्रता की भावना, देश-प्रेम, समाज-सुधार की भावना को जन्म दिया। कविता के लिए नए विषय मिले। उसका रूप ही नया हो गया।

भारतेन्दु के समय से वर्तमान हिंदी काव्य की जो धारा बही है, उसमें प्राचीन काव्य-धारा की कई प्रवृत्तियाँ भी सम्मिलित हैं—वैष्ण (राम-कृष्ण) भक्ति, निर्गुण (संतभावना), रीति शृङ्गार भाव। परन्तु साथ ही जिन नई प्रवृत्तियों का समावेश हुआ है उन्होंने इन भावनाओं को शिथिल कर रखा है। इनमें सबसे प्रधान राष्ट्रीयता, देश-प्रेम अथवा स्वतन्त्रता की भावना है। राष्ट्रीय वीरों का गुणगान, राष्ट्रपतन के लिए दुःख-प्रकाश, समाज को

अवनति के प्रति क्षोभ, कुरीतियों के परिहास के लिए अधीरता और तत्परता तथा हिंदू-हितैपियता (जातीयता) ये भारतेन्दु-काल के काव्य के प्रमुख विपय हैं—

कहाँ गये विक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठिर
चंद्रगुप्त चाणक्य कहाँ नासे करि कै थिर
कहाँ क्षत्र सब मरे जरे सब गए कितै गिर
कहाँ राज को तौन साज जेहि जानत है चिर
कहँ दुर्ग सेन धन बल गयो धूरहिं धूर दिखाय जग
जागो अब तो खल-बल दलन रक्खहु अपनो आर्य मग

(भारतेन्दु)

स्त्रीगण को शिक्षा देवैं कर. पतिव्रता यश लेवैं
झूठी यह गुलाल की लाली धोवत ही मिटि जाय
बाल ब्याह की रीति मिटाओ रहे लाली मुख लाय
विधवा विलपैं नित धेनु कटैं कोउ लागत हाय गोहार नहीं

(प्रतापनारायण मिश्र)

यह समय भारतवर्ष के लिए अत्यंत संकट का समय था। देश ने हथियार डाल दिये थे। एक नई संस्कृति और सभ्यता से उसका संघर्ष चल रहा था। देश में अंग्रेजी शिक्षाप्राप्त एक जन-समुदाय धीरे-धीरे खड़ा हो गया था। भारतीय धर्म, कर्म और संस्कृति सभ्यता की बात को भूल कर यह नया शिक्षित वर्ग 'साहब' बना जा रहा था। ऐसे समय में भारतीयता के लुप्त हो जाने का डर था। हमारे कवियों ने जहाँ समाज को उदार बनने के लिए ललकारा—

पित पति सुत करतल कमल लालिक ललना लोग
पढ़ैं गुनैं सीखैं सुनैं नासैं सब जग सोग
वीर प्रसविनी बुध बधू होइ दीनता खोय

नारी नर अरधंग की साँचहि स्वामिनि होय
(भारतेन्दु)

वहाँ हिंदुओं की मानसिक दासता पर क्षोभ भी प्रगट किया—

अंग्रेजी हम पढ़ी तऊ अंगरेज न बनिहैं
पहिरि कोट-पतलून चुरुट के गर्व न हनिहैं
भारत ही में जन्म लियो भारत ही रहिहैं
भारत ही के धर्म-कर्म पर विद्या जहिहैं
(अंबिकादत्त व्यास)

सबै विदेसी वस्तु नर गति रति रीति लखात
भारतीयता कछु न अब भारत में दरसात
हिन्दुस्तानी नाम सुनि अब ये सकुचि लजात
भारतीय सब वस्तु ही सो ये हाय घिनात
(प्रेमघन)

यद्यपि कवि अंग्रेजी शासन को अच्छा समझते थे, परन्तु उन्होंने अपने समय की राजनैतिक जागृति को भी पहचाना और ब्रिटिश शासन की बड़ाई करते हुए भी दयनीय दशा के करुण चित्र रखे—

अंग्रेज़ राज सुख साज सजे सब भारी
पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी
ताहू पै मँहगी काल रोग विस्तारी
दिन दिन दूने दुख ही देत हाहा री
सब के ऊपर टिक्कस की आफत आई
हा हा भारत दुर्दशा न देखी जाई
(भारतेन्दु)

कांग्रेस की स्थापना (१८८५) हो जाने से देश में आशा का संचार हुआ और कवियों ने नवजागरण का शंखनाद किया—

हुआ प्रबुद्ध वृद्ध भारत निज आरत दशा निशा का
समझ अंत अतिशय प्रमुदित हो तनिक तब उसने ताका
उन्नति पथ अति स्वच्छ दूर तक पड़ने लगा दिखाई
खग वंदेमातरम् मधुर ध्वनि पड़ने लगी सुनाई
उठो आर्य संतान सँभल मिल बस न विलंब लगाओ

(प्रेमघन)

एक अन्य महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कवियों का प्रकृति के प्रति दृष्टि-कोण था। आधुनिक काव्य में प्रकृति को जैसा स्थान मिला है, वैसा पहले कभी नहीं मिला था। पं० श्रीधर पाठक की 'ऊजड़ ग्राम', 'काश्मीर सुषमा' आदि कविताओं ने कवियों के लिये एक अभिनव क्षेत्र उपस्थित किया।

भारतेन्दु-काल (१८७०-१६००) से चलकर ये प्रवृत्तियाँ निरंतर विकसित, परिमार्जित एवं अन्य अनेक अन्तर्प्रवृत्तियों से प्रभावित होती हुई अब तक चली आ रही हैं। पहले १०-१५ वर्ष तक तो कोई नवीन परिवर्तन दिखाई ही नहीं देता। पं० रामचरित उपाध्याय, हरिऔध, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पं० रूपनारायण पांडेय, बाबू मैथिलीशरण गुप्त प्रभृति कवियों ने भारतीयता, हिंदू जातीयता, राष्ट्रीयता जैसे विषयों पर उसी तरह लिखा है जिस तरह भारतेन्दु-काल के कवियों ने लिखा। अंतर यह है कि स्वाव-लंबन का भाव अधिक है, अंग्रेजी राज का गुणगान कुछ कम हो गया है, काव्य में कला का अधिक प्रवेश हो पाया है। परन्तु इतिवृत्तात्मकता बनी है। प्रकृति की ओर कवियों की अभिरुचि अधिक संलग्न दिखाई पड़ती है। यद्यपि अधिकांश कवि प्राकृतिक वस्तुओं की तालिका बाँध कर ही रह जाते हैं, परन्तु पं० रामचंद्र शुक्ल जैसे सहृदय कुछ कवि प्रकृति के अनेक रूपों से प्रभावित होकर उसमें रम जाते हैं और कवियों को प्रकृति के रूप-रंग देखने

का एक नया ढंग सुझाते हैं। राम और कृष्ण काव्य में मानवता का अधिक समावेश हो गया है।

बीसवीं शताब्दी के दशाब्द बीतने पर इन प्रवृत्तियों के साथ कुछ नितांत नवीन प्रवृत्तियाँ भी हमारे सामने आती हैं। ये हैं—करुणा की प्रधानता, नैराश्य और नैराश्यमूलक उत्साह, रहस्यवाद, शृङ्गारिकता को आवरण में छिपा कर प्रगट करने की चेष्टा (प्रच्छन्न नारीप्रेम), असंयत कल्पना, मानवीय सहानुभूति का विस्तार। इन प्रवृत्तियों के मूल में कई प्रकार की प्रेरणाएँ हैं। राजनैतिक परिस्थितियों, विशेषकर राष्ट्रीय आन्दोलनों की असफलता ने युवकों को हताश कर दिया था। जीविका की समस्या प्रबल थी। महायुद्ध के बाद संसार के आर्थिक संतुलन में एक ऐसी उथल-पुथल हो गई जिसका प्रभाव सभी देशों पर पड़ा। हमारे देश में जहाँ राष्ट्रीय और सामाजिक अनेक समस्याएँ उठ रही थीं, वहाँ अर्थ की विषम समस्या भी उठ खड़ी हुई। इसका प्रभाव काव्य पर भी पड़ा। पहले कुछ कवियों ने चारों तरफ की स्थिति से एकदम आँख मूँद ली और अपनी कल्पनानुभूति द्वारा बनाये हुए सौन्दर्य, प्रेम और करुणा के लोक में जैसे खो गये। छाया, लहर, स्वप्न, आँसू, अनंग, नक्षत्र जैसे विषयों पर बहुत कुछ लिखा गया, परन्तु मनुष्य, उसके सुख-दुःख, आशाकांक्षा की उपेक्षा की गई। कवि सौन्दर्य के रूपों में खो गये थे। सौन्दर्य की अनुभूति के साथ करुणा की अनुभूति भी हुई क्योंकि उन्होंने अनुभव किया कि वे उस सौन्दर्य का उपभोग नहीं कर सकते। उन्हें सामाजिक और आर्थिक बंधनों का सामना करना पड़ता था। परन्तु उन्होंने इन क्षेत्रों में अपना क्षोभ एवं विद्रोह प्रगट न कर आध्यात्मिकता का आवरण देकर हमारे सामने प्रगट किया। प्रसाद के आँसू, पंत के उच्छ्वास, रामकुमार और महादेवी के करुणा के गीतों के पीछे यही मनःस्थिति काम कर

रही है। नारी के प्रति इनका दृष्टिकोण विचित्र था। आचार्य शुक्ल जी ने 'छायावाद' को "कायावृत्तियों का प्रच्छन्न पोषण" कहा है। कवि अपनी कविता में लता-विटप अथवा शैफाली और पवन का संयोग-विलास तो अत्यंत सूक्ष्मता से विस्तार-पूर्वक लिखता था। परन्तु स्त्री के प्रति मोह और आसक्ति होते हुए भी उदासीन था। उसे एकदम अतीन्द्रिय बना रहा था। आत्मा-परमात्मा के मिलन या आध्यात्मिक वियोग की भावना को ही अनेक कविताओं और गीतों में बद्ध किया गया, परन्तु उनके पीछे कवि की कल्पना है, परंपरा का पालन है, कवि की साधना और अनुभूति नहीं।

१६१३ ई० के लगभग 'प्रसाद' की 'काननकुसुम' और 'इंदु' (मासिक पत्र, काशी, १६०६-१६) की खड़ी बोली कविताओं से जो एक नई धारा चली उसे छायावाद के नाम से पुकारा गया। १६२५ तक 'पल्लव' और 'आँसू' के प्रकाशन के साथ यह धारा स्थायित्व प्राप्त कर चुकी थी। साधारण जनता में यह नाम सामयिक कविता के लिए १६३७ तक चलता रहा। 'प्रगतिवादी' काव्य का जन्म इसके बाद की कथा है। जिस किसी ने इस नाम का सूत्रपात किया, उसका उद्देश्य सामयिक काव्य की हँसी उड़ाना था। उसे एक नई श्रेणी की कविता से परिचय प्राप्त हुआ जिसमें उसने बंगाल के श्री रविन्द्रनाथ ठाकुर की "गीतांजली" और अंग्रेजी रोमांटिक कवियों विशेष वर्डस्वर्थ आदि के रहस्यवादी (Mystic) कही जाने वाली कविताओं की छाया देखी। बंगाल में जिस अर्थ में 'रहस्यवाद' शब्द का प्रयोग हो रहा था ठीक उसी अर्थ में, परन्तु निश्चय ही व्यंग में, क्योंकि हिंदी की कविता बंगाली की नकल समझी जाती थी, छायावाद का प्रयोग हुआ। धीरे-धीरे 'छायावाद' ने बंगाली भावुकता और रहस्यवादी आध्यात्मिक कविता के सिवा अनेक अंगों का विकास कर लिया। परन्तु नाम चलता रहा। अंत में व्यंग का भाव भी दूर हो गया, परन्तु इसके

लिए बहुत समय लगा। अभी हाल तक लंबे वाक्य, अस्पष्ट भावना, कठिन शब्दावली का प्रयोग, सतर्कतारहित उच्छृङ्खल व्यवहार, अव्यवहारिता—ये छायावादी कवि के लक्षण समझे जाते थे। उसे कल्पनाजीवी समझा जाता था।

सच तो यह है कि अब छायावाद की महत्ता कम होती जा रही है। छायावाद के कहे जाने वाले कवि नए-नए दलों में भरती हो रहे हैं। परन्तु छायावाद और उसके काव्य का ठीक-ठीक विश्लेषण अभी नहीं हो सका है। श्री रामचन्द्र शुक्ल इसे काया-वृत्तियों का प्रच्छन्न पोषण कहते हैं या अभिव्यंजना की एक शैली मानते हैं जिसकी विशेषता उसकी लाक्षणिकता है। श्री नंददुलारे वाजपेई कहते हैं—"इसमें एक नूतन सांस्कृतिक भावना का उद्‌गम है और एक स्वतंत्र दर्शन की आयोजना भी। पूर्ववर्त्ती काव्य से इसका स्पष्टतः प्रथम अस्तित्व और गहराई है।" 'प्रसाद' जी छायावाद को "अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्य अभिव्यंजना" मानते हैं जो "साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। इसमें अपरोक्ष की अनुभूति, समरसता, तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा 'अहम्' का 'इदम्' से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है।"

जैसा हम कह चुके हैं, 'छायावाद' शब्द का प्रयोग वर्तमान युग की, महायुद्ध और बाद की बहुमुखी हिंदी कविता के लिए हुआ है और उसमें अनेक प्रवृत्तियों के साथ आध्यात्मिक रहस्यवाद, सौन्दर्य-निष्ठा, लाक्षणिकता एवं मनुष्य जीवन एवं प्रकृति के प्रति नवीन दृष्टिकोण को प्रमुख स्थान मिला है। अनेक प्रवृत्तियों में अस्पष्ट राष्ट्रीय भावनाएँ और सामाजिक उद्‌गार भी आ जाते हैं। परन्तु यह शब्द का व्यापक अर्थ है। संकीर्ण अर्थ में लेने पर भी शब्द के ठीक-ठीक अर्थ करने की सुविधा नहीं

होती। हाँ, उसकी विशेषताओं की ओर ही इस प्रकार इंगित किया जा सकता है—

(१) छायावाद काव्य में आत्माभिव्यक्ति की ओर ही अधिक ध्यान दिया गया है। इसीसे उसमें भाव की प्रगाढ़ता और पद की गेयता सहज ही प्रतिष्ठित हो जाती है। परात्मबोधक कविताएँ और खंड-काव्य में लिखे गये, परन्तु उनमें भी तीव्रानुभूति के स्वर ऊपर हो उठे हैं और कवि आत्मविमुख होकर नहीं बैठ सका है।

(२) परमात्मा-आत्मा के संबंध में छायावाद काव्य अद्वैतावस्था को मान कर चलता है। प्रेम, विरह और करुणा की भावना की प्रधानता इसी लिये है कि इनके द्वारा ही इस अवस्था पर पहुँचा जा सकता है। महादेवी, रामकुमार वर्मा और निराला की कितनी कविताएँ इसी प्रेममूलक अद्वैत पर खड़ी हैं।

(३) छायावाद के कवियों का आग्रह उत्तमोत्तम आदर्श सौंदर्य-सृष्टि की ओर है। वे सुन्दर शब्दों, सुन्दर भावों और सुन्दर रूपों में खो गये हैं जैसे संसार में असुन्दर का स्थान ही नहीं हो। इस प्रकार वे 'रोमांटिक' और 'पलायनवादी' कहे जाने लगे। उन्होंने जिस जीवन की कल्पनात्मक अनुभूति उत्पन्न की, वह हमारे साधारण प्रतिदिन के परिचित जीवन से एकदम भिन्न। पंत और रामकुमार अपने काव्य में इसी सौंदर्यानुवेषण के कारण सौंदर्य-निष्ठ कवि बन गये हैं। उन्होंने लौकिक शृङ्गार में भी इतनी अतीन्द्रियता भर दी है कि उन पर "अशरीर भावनाओं" की भक्ति का दोपारोपण किया जाता है। वास्तव में, सौंदर्य के प्रति उनका दृष्टिकोण आश्चर्य, भक्ति और अतीन्द्रिय आसक्ति का ही अधिक है। इस तरह उनकी कविता रीति-काल की शृङ्गारिक कविता के एकदम विरोध में जा पड़ती है जहाँ स्थूल शृङ्गार, अभिसार, चुबंन और परिरंभण के सिवा और कुछ है

ही नहीं । छायावाद की कविता ने इसी परंपरागत शृङ्गार भावना के प्रति विद्रोह किया है ।

(४) छायावाद की कविता में लाक्षणिकता की प्रधानता है। इसे शैली की विशिष्टता कहना ही ठीक होगा, इसके रूप कई हैं। कहीं तो अन्योक्ति और वक्रोक्ति का आश्रय लिया गया है, कहीं अलंकारों के वक्र, लाक्षणिक और अंग्रेजी ढंग के प्रयोग मिलते हैं, कहीं प्रतीकों का प्रयोग है। इन सबने एक स्थान पर मिल कर नए पाठक के लिये कितने ही स्थानों पर जैसे कूट-काव्य की सृष्टि कर दी है। इनमें सबसे अधिक कठिनता प्रतीकों के संबंध में है। 'प्रसाद' ने कहा—"आलंबन के प्रतीक उन्हीं के लिये अस्पष्ट होंगे जिन्होंने यह नहीं समझा है कि रहस्यमयी अनुभूति युग के अनुसार अपने लिये विभिन्न आधार चुनती है।" परंतु ये प्रतीक इतनी अस्पष्टता, शीघ्रता और अनिश्चतता के साथ पाठक के सामने आये कि वह उसे पकड़ ही नहीं सका।

(५) छायावाद काव्य में "विश्व-सुंदरी प्रकृति में चेतनता का आरोप प्रचुरता से उपलब्ध होता है। यह प्रकृति अथवा शक्ति का रहस्यवाद है।" इसके अतिरिक्त प्रकृति और मनुष्य में रागात्मक संबंध इसी प्रकार के काव्य में पहली बार सामने आता है।

(६) जीवन के प्रति दृष्टिकोण दुःख और निराशापूर्ण है। सारा छायावाद काव्य ही ('प्रसाद' और 'निराला' के कुछ काव्य को छोड़ कर) दुःख-प्रधान है। यह दुःख कहीं आध्यात्मिक है, कहीं लौकिक। अधिकांश में इसका संबंध व्यक्तिगत असफलताओं से है जिन्होंने धीरे-धीरे दुःख का एक दर्शन ही दे दिया है जिसका आधार अद्वैत दर्शन पर ही रक्खा गया है। कितने ही कवियों ने दुःख की साधना को ही काव्य की श्रेष्ठतम कला मान लिया है।

(७) हम यह मान लेने के लिये तैयार हैं कि छायावाद

काव्य की ये विशेषताएँ सम्पूर्णः मौलिक नहीं हैं। इनमें से कुछ के लिये उसे कबीर, रवीन्द्र या शेली का मुँह जोहना पड़ा है, परंतु धीरे धीरे इस काव्य में अपना व्यक्तित्व विकसित कर लिया था जिसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि हिंदी काव्य में कितने ही वर्षों से उसकी अपनी रूढ़ियाँ चल रही हैं। कवियों ने धीरे-धीरे कवि-कर्म में कुशलता प्राप्त कर ली है और उन्होंने जनता में प्रतिष्ठा प्राप्त की है। सारे हिंदी साहित्य में किसी भी युग के कवियों को जनता तक पहुँचने के लिये इतना कठिन प्रयत्न कभी नहीं करना पड़ा, न उन्हें इतना समय लगा। स्पष्ट है कि जनता इस लगभग सौ प्रतिशत परिवर्तन के लिये तैयार नहीं थी। हमारी काव्य-परंपरा इतनी पीछे छूट गई थी कि इस काव्य को समझने के लिये उससे सहारा नहीं लिया जा सकता था। नए मूल्यों का सृजन करना पड़ा। आलोचना के नए मापदंड बने। तब कहीं यह काव्य जनता तक पहुँच सका।

कोई भी काव्य अपने युग से बहुत ऊँचा नहीं उठ सकता। छायावाद काव्य पर अस्पष्टता, अमौलिकता, अव्यवहारिकता, अनैतिकता, ईमानदारी की कमी और अशरीरीपन ये कितने ही दोष लगाए जाते हैं, परन्तु यदि सच पूछा जाय तो यह अपने युग का श्रेष्ठ प्रतिबिंब है। मध्य देश का मध्य वर्ग जिस बौद्धिकता के ह्रास, भावुकता के प्राबल्य और मन-वाणी के सामाजिक और राजनैतिक नियन्त्रणों में से गुजर रहा था, उसी के दर्शन इस काव्य में भी मिलेंगे। गाँधीवाद में दुःख, कष्ट-सहन और पराजय को राष्ट्रीय साधना के रूप में स्वीकार कर लिया गया था। समाज में प्रेम कहना पाप था। मध्य वर्ग में साकार उपासना पर से विश्वास उठ रहा था, परन्तु वैष्णव भावना को बिल्कुल अस्वीकार करना असंभव था। आर्थिक और राजनैतिक संकटों ने कमर तोड़ दी थी। महायुद्ध के आरंभ के प्रभात के

स्वप्न युद्ध समाप्ति पर कुहरे के धरोहर बन गये। ऐसे समय काव्य का रूप ही और क्या होता ? रवीन्द्र के काव्य ने इस प्रदेश की मनोवृत्ति के अनुकूल होना उसकी काव्य-चिंता को यह विशिष्ट रूप दे दिया। 'चित्रांगदा' और 'काननकुसुम' की कितनी ही कविताओं और 'साधना' के गद्य गीतों पर रवीन्द्र का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित है, परन्तु वाद के काव्य के विकास का अपना अलग इतिहास है।

आज समाज और राष्ट्र की परिस्थितियाँ बदल गई हैं। हृदय का स्थान बुद्धि ने ले लिया है। छायावाद का आध्यात्मिक आधार—अद्वैतवाद—ही ढह-सा रहा है, कम से कम नए कवियों का उसकी ओर विशेप आग्रह नहीं है। जो कवि दो दशाब्द पहले छंद, भापा और अभिव्यंजना के नए प्रयोग करता हुआ लड़खड़ा रहा था, आज इनका कुशल अधिकारी है। जीवन के प्रति दृष्टिकोण ही बदल गया है या तेजी से बदल रहा है। ऐसे समय में जो कवि पहले कहता था—

अब न अगोचर रहो सुजान
निशानाथ के प्रियवर सहचर
अंधकार, स्वप्नों के मान
किसके पद की छाया हो तुम ?
किसका करते हो अभिमान ?
तुम अदृश्य हो, दृग अगम्य हो
किसे छिपाये हो, छविमान ?
मेरे स्वागत भरे हृदय में
प्रियतम आओ, पाओ स्थान

वह अब कहता है—

मानव के पशु के प्रति
हो उदार नव संस्कृति

युग-युग से रच शत-शत नैतिक बंधन,
बाँध दिया मानव ने पीड़ित पशु-तन
विद्रोही हो उठा आज पशु दर्पित,
वह न रहेगा अब नवयुग में गर्हित

अथवा—

आज सत्य, शिव, सुन्दर करता नहीं हृदय आकर्पित,
सभ्य, शिष्ट औ' संस्कृत लगते मन को केवल कुत्सित
संस्कृत कला, सदाचारों से भव-मानवता पीड़ित
स्वर्ण पिंजरों में वंदी है मानव-आत्मा निश्चित
आज असुन्दर लगते सुन्दर प्रिय पीड़ित शोपित जन,
जीवन के दैन्यों से जर्जर हटाता मानव-मुख मन

स्पष्ट है कवि अध्यात्म की ऊँचाइयों से उतरकर दैनिक जीवन की तलैटियों में आ गया है। उसने सुन्दरता के लिए नए मूल्य ढूँढ़ने का प्रयत्न शुरू कर दिया है। छायावाद काव्य के मूल्य उसे आज अति भावुकता से ग्रसित जान पड़ते हैं। जो कवि पहले सौन्दर्य को इस रूप में देखता था—

प्रथम रश्मि का आना, रंगिणी, कैसे तूने पहचाना
वहाँ कहाँ हे बाल विहंगिनि, पाया तूने यह गाना ?
शशि-किरणों से उतर-उतर कर भू पर कामरूप नभचर
चूम नवल कलियों का मृदु मुख सिखा रहे थे मुसकाना
तूने ही पहले, बहुदर्शिकि, गाया जाग्रति का गाना,
श्री-सुख-सौरभ का, नभचारिणि, गूँथ दिया ताना-बाना

वह अब उसे इस रूप में ग्रहण करता है—

सर् सर् मर् मर्
रेशम के से स्वर भर,

बने नीम दल
लंबे, पतले, चंचल,
श्वसन स्पर्श से
रोमहर्ष से
हिल हिल उठते प्रतिपल

या—

उस निर्जन टीले पर
दोनों चिल विल
एक दूसरे से मिल,
मित्रों से हैं खड़े,—
मौन, मनोद
दोनों पादप
सह वर्षातप
हुए साथ ही बड़े.
दीर्घ, सुदृढ़तर !
पतझर में सब पत्र गए झर
नग्न, धवल शाखों पर
पतली, टेढ़ी, टहनी अगणित
शिरा जाल सी फैली अविकल
भू पर कर छायांकित !
नील निरभ्र गगन पर
चित्रित दोनों तरुवर
आँखों को लगते हैं सुन्दर,
मन को सुख कर !

जिस जीवन से दूर भाग कर या जिससे ऊपर उठकर कवि अपनी ही कल्पना के संसार और अपनी ही संवेदना के

व्यापारों में खो जाता था। उसी जीवन ने आज उसके नक्षत्र-भवन पर धावा बोल दिया है। आज कवि जीवन की वास्तविकता के साथ फौजी कदम रखता हुआ आगे बढ़ रहा है। इस अग्र-भूमि से देखने पर हम छायावाद के महत्त्व को अधिक अच्छी तरह ग्रहण कर सकेंगे।

२

प्रारंभिक रचनाएँ : 'इन्दु'

(१६०६—१६१६)

'इंदु' आधुनिक कविता के इतिहास की महत्त्वपूर्ण सम्पत्ति है। जयशंकर प्रसाद से इसका अत्यंत निकट का संबन्ध रहा है। पत्र उन्हीं के आग्रह से निकाला गया। संपादक और प्रकाशक उनके भांजे अंबिकाप्रसाद गुप्त थे। पहली संख्या (कला १, किरण १) शुक्ल श्रावण संवत् १६६६ (१६०६) में प्रकाशित हुई। मुखपृष्ठ पर मङ्गल-वाक्य था—

ॐ इन्दुशेखराय नमः

भीतर मोटो (आदेश-वाक्य) इस प्रकार छपता था—

सज्जन चित्त चकोरन को हुलसावन भावन पूरो अनिन्दु है
मोहन काव्य के प्रेमिन के हित साँचि सुधारस को बलिबिंदु है
ज्ञान प्रकाश प्रसारि हिये बिच, ऐसो जो मूरखता तमभिन्दु है
काव्य-महोदधि ते प्रकट्यो, रसरीति कलायुत पूरण 'इन्दु' है

पहली संख्या में ही स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) का बिगुल इन शब्दों में सुनाई पड़ता है—

"साहित्य का कोई लक्ष्य विशेष नहीं होता है और उसके लिए कोई विधि का निर्बंधन नहीं है, क्योंकि साहित्य स्वतंत्र प्रकृति सर्वतोगामी प्रतिभा के प्रकाशन का परिणाम है, वह किसी के परतंत्रता को सहन नहीं कर सकता, संसार में जो कुछ सत्य और सुन्दर है वही साहित्य का विषय है। साहित्य केवल सत्य

और सौंदर्य की चर्चा करके सत्य को प्रतिष्ठित और सौन्दर्य को पूर्ण रूप से विकशित करता है, आनन्दमय हृदय के अनुशीलन में और स्वतंत्र आलोचना में उसकी सत्ता देखी जाती है।" (इन्दु, कला १, किरण १, 'प्रस्तावना') ।

इस अंक की मङ्गलाचरण की कविता 'प्रसाद' की ही है। यह कविता ब्रजभाषा में इस प्रकार है—

वन्दे मुकुलित नवल नील अरविंद नभनिवर
वरदे नवशशि लांछित अनुपम मुखे सुधाधर
धरति कमलकर वीणा वाजत जगतानन्दे
आनन्दामृत वरपति जय जय शारद वन्दे !
नन्दन वाल वकुलतरस्थित जय रस की मूरति
उघटत ताल रसाल वीणा वाजत रस पूरति
शुभ्र कमल दल भाल विभूपित स्वेतवरणि जय !
जयति देवि शारदे लसत आभूपण मणिमय !
इत्यादि

('शारदाष्टक' कला १, किरण १)

इस कविता पर जहाँ भावना में भक्तिकाव्य का प्रभाव है, वहाँ शैली गीतगोविन्दम् (जयदेव) से उधार ली गई। इस तरह की रचनाएँ परम्परा-पोपित होने के कारण कोई महत्त्व नहीं रखतीं।

परन्तु इसी संख्या में हमारा ध्यान एक वस्तु की ओर आकर्षित होता है। वह है 'प्रसाद' का पहला गद्यलेख 'प्रकृति-सौंदर्य'। प्रसाद की पहली प्रकृति-विषयक कविता किरण ३ में प्रकाशित हुई, परन्तु प्रकृति-प्रेम उनकी स्थायी वृत्ति थी, यह इस लेख से सिद्ध हो जाता है। दूसरी किरण में 'प्रेमपथिक' प्रकाशित

हुआ। यह ब्रजभाषा छंद में है। बड़ा हो जाने पर यह स्वतंत्र रूप से पुस्तकाकार में प्रकाशित हुआ और फिर 'प्रसाद' ने इसे परिवर्तित और परिवर्द्धित कर खड़ी बोली में १६१३ ई० में प्रकाशित कराया। तब इसने क्रांतिकारी रूप ग्रहण कर लिया था। १६०५ के लगभग मूल रूप में ब्रजभाषा में लिखा जाकर यह इतना महत्त्वपूर्ण नहीं था। समसामयिक काव्य में इसने एक युगपरिवर्तन की सूचना दी। यह कथात्मक काव्य था, शायद गोल्डस्मिथ के Hermit से प्रभावित था, परन्तु विषय और उसकी निबंधता treatment दोनों मौलिक होने के कारण जनता का ध्यान उसकी ओर गया।

'प्रसाद' के प्रारंभिक काव्य की प्रगति प्रकृति की ओर थी, यह कला १, किरण ३ में प्रकाशित उनकी शारदीय शोभा कविता से प्रगट होता है। एक अन्य प्रवृत्ति थी मनोवैज्ञानिक एवं मानसिक वृत्तियों की विवेचना की ओर। किरण ३ की 'मानस' शीर्षक कविता में 'कामायिनी' का बीज निहित था, यह कौन अस्वीकार करेगा? इसी वर्ष (१६०६) हम प्रसाद को 'प्रेमराज्य' और 'उर्वशी' (चंपू) लिखते पाते हैं। प्रेम और छंदों की नवीनता की ओर 'प्रसाद' पहले से ही उन्मुक्त थे।

नए काव्य में कल्पना का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। १६०६ के लगभग ही प्रसाद ने कल्पना देवी की अभ्यर्थना इस प्रकार कर ली थी—

(१) हे कल्पना सुखदान
तुम मनुज जीवन-प्रान
तुम विशद व्योम समान
तव अति नरनहिं जान
(२) प्रत्यक्ष भावी भूत
यह रँगे त्रिविध सुसूत

और सौंदर्य की चर्चा करके सत्य को प्रतिष्ठित और सौन्दर्य को पूर्ण रूप से विकसित करता है, आनन्दमय हृदय के अनुशीलन में और स्वतंत्र आलोचना में उसकी सत्ता देखी जाती है।" (इन्दु, कला १, किरण १, 'प्रस्तावना')।

इस अंक की मङ्गलाचरण की कविता 'प्रसाद' की ही है। यह कविता व्रजभाषा में इस प्रकार है—

वन्दे मुकुलित नवल नील अरबिंद नभनिवर
वरदे नवशशि लांछित अनुपम मुखे सुधाधर
धरति कमलकर वीणा वाजत जगतानन्दे
आनन्दामृत वरपति जय जय शारद वन्दे !
नन्दन बाल वकुलतरस्थित जय रस की मूरति
उघटत ताल रसाल वीणा बाजत रस पूरति
शुभ्र कमल दल भाल विभूषित स्वेतवरणि जय !
जयति देवि शारदे लसत आभूषण मणिमय !

इत्यादि

('शारदाष्टक' कला १, किरण १)

इस कविता पर जहाँ भावना में भक्तिकाव्य का प्रभाव है, वहाँ शैली गीतगोविन्दम् (जयदेव) से उधार ली गई। इस तरह की रचनाएँ परम्परा-पोषित होने के कारण कोई महत्त्व नहीं रखतीं।

परन्तु इसी संख्या में हमारा ध्यान एक वस्तु की ओर आकर्षित होता है। वह है 'प्रसाद' का पहला गद्यलेख 'प्रकृति-सौंदर्य'। प्रसाद की पहली प्रकृति-विषयक कविता किरण ३ में प्रकाशित हुई, परन्तु प्रकृति-प्रेम उनकी स्थायी वृत्ति थी, यह इस लेख से सिद्ध हो जाता है। दूसरी किरण में 'प्रेमपथिक' प्रकाशित

हुआ। यह व्रजभाषा छंद में है। बड़ा हो जाने पर यह स्वतंत्र रूप से पुस्तकाकार में प्रकाशित हुआ और फिर 'प्रसाद' ने इसे परिवर्तित और परिवर्द्धित कर खड़ी बोली में १६१३ ई० में प्रकाशित कराया। तब इसने क्रांतिकारी रूप ग्रहण कर लिया था। १६०५ के लगभग मूल रूप में व्रजभाषा में लिखा जाकर यह इतना महत्त्वपूर्ण नहीं था। समसामयिक काव्य में इसने एक युगपरिवर्तन की सूचना दी। यह कथात्मक काव्य था, शायद गोल्डस्मिथ के Hermit से प्रभावित था, परन्तु विषय और उसकी निबंधता treatment दोनों मौलिक होने के कारण जनता का ध्यान उसकी ओर गया।

'प्रसाद' के प्रारंभिक काव्य की प्रगति प्रकृति की ओर थी, यह कला १, किरण ३ में प्रकाशित उनकी शारदीय शोभा कविता से प्रगट होता है। एक अन्य प्रवृत्ति थी मनोवैज्ञानिक एवं मानसिक वृत्तियों की विवेचना की ओर। किरण ३ की 'मानस' शीर्षक कविता में 'कामायिनी' का बीज निहित था, यह कौन अस्वीकार करेगा ? इसी वर्ष (१६०६) हम प्रसाद को 'प्रेमराज्य' और 'उर्वशी' (चंपू) लिखते पाते हैं। प्रेम और छंदों की नवीनता की ओर ,प्रसाद' पहले से ही उन्मुक्त थे।

नए काव्य में कल्पना का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। १६०६ के लगभग ही प्रसाद ने कल्पना देवी की अभ्यर्थना इस प्रकार कर ली थी—

(१) हे कल्पना सुखदान
तुम मनुज जीवन-प्रान
तुम विशद व्योम समान
तव अति नरनहिं जान
(२) प्रत्यक्ष भावी भूत
यह रँगे त्रिविध प्रसूत

तव तानि प्रकृति सुतार
पट विनत सुचि संसार
(३) येहि विश्व को विश्राम
अरु कछुक जो है काम
सब को अहौं तुम ठाम
तव मधुर ध्यान ललाम
(४) तव मधुर मूर्ति अतीत
है करत हीतल चीत
व्याकुल नरन को भीत
तुम करहुँ अबहुँ अभीत
(५) शैशव मनोहर चित्र
तुम रचहु कबहुँ विचित्र
मनु धूल धूसर बाल
पितु गोद खेलत हाल
(६) तव सुखद भावी मूर्ति
जेहि कहत आशा स्फूर्ति
मनुजहिं रखै बिलमाय
जासों रहै सुख पाय
(७) नवजात शिशु को ध्यान
हुलसावही पितु-प्रान
वह कमल कोमल गात
जनु खेलिहै कहि तात
(८) कहुँ प्रेममय संसार
नव प्रेमिका का प्यार
कंपित सुदामा चित्र
बहु रचहु तुम जगमित्र

(९) तव शक्ति कहि अनमोल
कवि करत अद्भुत खेल
कहि दृग-स्वविन्दु तुषार
गुहि देत मुक्ताहार इत्यादि

(१०) तुम दान करि आनंद
हिय को करहुँ सानंद
नहिं यह विषम संसार
तहँ कहाँ शांति बयार

(कला १, किरण ५)

अंग्रेजी स्वच्छन्दवादी कवि 'कीट्स' ने भी इसी तरह प्रारंभ में 'tres to fancy' कविता लिखी थी। कल्पना का रोमांस से गहरा साथ है। इसी से हम देखते हैं कि प्रसाद का ध्यान शीघ्र ही शकुन्तला की ओर गया और उन्होंने ब्रजभाषा में 'वनवासिनी बाला' नाम से उसकी कथा लिखी (क० १, कि० ६)। इन कविताओं के अतिरिक्त अयोद्ध्योधार (कि० १०), समाधिसुधा (कि० १२) और सन्ध्यातारा (क० २, कि० १) इसी वर्ष प्रकाशित हुई। प्रसाद की पहली कहानी 'ब्रह्मर्षि' कला १, किरण ७ में प्रकाशित हुई। सन्ध्यातारा कविता में प्रसाद ने पयार छंद (बंगला) का प्रयोग किया। भारतेन्दु भी एक खड़ी बोली कविता के लिए इसका प्रयोग कर चुके थे। यह दूसरा प्रयोग था।

'कवि और कवित्त' कला २, किरण १ में 'प्रसाद' ने सामयिक काव्य-स्थिति के संबंध में लिखा है— "अधिकांश महाशय × × × कविता-मर्म समझने की बात तो दूर है, उस पर ध्यान भी नहीं देते। यह क्यों, छन्द विषयक अरुचि है ? इसका कारण यह है कि सामयिक पाश्चात्य शिक्षा का अनुकरण करके जो समाज के भाव बदल रहे हैं उनके अनुकूल

कविता नहीं मिलती और पुरानी कविता को पढ़ना तो मानों महाद्वेष-सा प्रतीत होता है, क्योंकि इस ढङ्ग की कविता बहुतायत से हो गई है। ××××

"शृङ्गार रस की मधुरता पान करते-करते आपकी मनोवृत्तियाँ शिथिल हो गई हैं इस कारण अब आपको भावमयी, उत्तेजनामयी, अपने को भुला देने वाली कविताओं की आवश्यकता है। अस्तु, धीरे-धीरे जातीय संगीतमयी वृत्ति स्फुरण-कारिणी, आलस्य को भंग करने वाली, आनंद बरसाने वाली धीर-गम्भीर पद-विक्षेप-कारिणी, शांतिमयी कविता की ओर हम लोगों को अग्रसर होना चाहिये। अब दूर नहीं है; सरस्वती अपनी मलिनता को त्याग कर रही हैं, और प्रबल रूप धारण करके प्राभातिक ऊषा को भी लजावेगी, एक बार वीणा-धारिणी अपनी वीणा को पंचम स्वर में ललकारेगी, भारत की भारती फिर भी भारत ही की होगी।"

इसके बाद शीघ्र ही प्रसाद का स्वर बदला। वर्षा में नदीकूल (क० २, कि० १) के बाद उनकी पहली खड़ी बोली कविता 'चित्र' (किरण २) प्रकाशित हुई और फिर वे बराबर खड़ी बोली में लिखते गये। १६०६-१६१६ तक का 'इन्दु' का सारा जीवन-काल प्रसाद का कविता-विषयक परीक्षा-काल है। उनकी पहली सुन्दर खड़ी बोली कविता जिसमें वे खंडकाव्य के पूरे उल्लेख के साथ हमारे सामने आते हैं 'सत्यव्रत' है जिसमें चित्रकूट में राम-लक्ष्मण-सीता का चित्रण किया गया है। इसी संख्या (कला ४, खंड १, किरण १) में 'भरत' शीर्षक कविता भी प्रकाशित हुई है। उस समय रामकाव्य की ओर जनता का ध्यान जा रहा था। नवीनजी की 'उर्मिला' और गुप्तजी की 'साकेत' की नींव भी इसी समय के लगभग रक्खी गई थी।

'प्रसाद' के प्रयोगी रूप को आ

चकाचौंध में भूल गये हैं, परन्तु यदि हम 'इंदु' के पुराने परचे उठा कर देखें तो हमें उनकी महान् साधना का ज्ञान होता है। प्रसाद ने गजल-छंद तक को अपनाया। इन्दु क० ४०, खं० १, कि० ५ में उनकी एक गज़ल 'भूल' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी—

सरासर भूल करते हैं उन्हें जो प्यार करते हैं
बुराई कर रहे हैं और अस्वीकार करते हैं
उन्हें अवकाश ही रहता कहाँ है मुझसे मिलने का
किसी से पूछ लेते हैं यही उपकार करते हैं
जो ऊँचे चढ़ के चलते हैं वो नीचे देखते हरदम
प्रफुल्लित वृक्ष ही यह भूमि कुसुमागार करते हैं
न इतना फूलिये तरुवर, सुफल कोरी कली लेकर
बिना मकरन्द के मधुकर नहीं गुंजार करते हैं
'प्रसाद' उनको न भूलो तुम तुम्हारा जो कि प्रेमी है
न सज्जन छोड़ते उसको जिसे स्वीकार करते हैं

१९१२ के लगभग प्रसाद के काव्य पर गीतांजलि (प्र०१९११) का प्रभाव पड़ने लगता है। इस प्रभाव का प्रथम लक्ष्य 'नमस्कार' शीर्षक कविताओं में होता है—

जिस मंदिर का द्वार सदा उन्मुक्त रहा है
जिस मंदिर में रङ्क नरेश समान रहा है
जिसका है आराम प्रकृति कानन ही सारा
जिस मंदिर के दीप, इन्दु दिनकर औ' तारा

उस मदिर के नाथ को
निरुपम निरमम स्वस्थ को
नमस्कार मेरा सदा
पूरे विश्व गृहस्थ को

(जुलाई, १९१३)

तप्त हृदय को जिस उशीरगृह का मलयानिल
शीतल करता शीघ्र दान कर शांति को अखिल
जिसका हृदय पुजारी है रखता न लोभ को
स्वयं प्रकाशानुभव मूर्ति देती न क्षोभ जो
प्रकृति सुप्रांगण में सदा
मधुक्रीड़ा कूटस्थ को
नमस्कार मेरा सदा
पूरे विश्व गृहस्थ को

(अगस्त, १६१३)

'प्रसाद' बार-बार नये छंदों के प्रयोग भी कर रहे हैं। 'पतित पावन' शीर्षक कविता में देखिए—

पतित हो जन्म से या कर्म ही से क्यों नहीं होवे
पिता सब का वही है एक, उसकी गोद में रोवे
पतित पदपद्म से होवे
तो पावन हो ही जाता है

(जनवरी, १६१४)

उन्होंने 'सॉनेट' भी लिखी—

सिन्धु कभी क्या बाड़वाग्नि को यों सह लेता
कभी शीत लहरों में शीतल ही कर देता
रमणी हृदय अथाह जो न दिखलाई पड़ता
तो क्या ज़ल होकर ज्वाला से यों फिर लड़ता
कौन जानता है, नीचे में क्या बहता है
बालू में भी स्नेह कहो कैसे रहता है
फल्गू की है धार हृदय वामा का जैसे
सूखा ऊपर, भीतर स्नेह सरोवर जैसे
ढकी बर्फ की शीतल ऊँची चोटी जिनकी
भीतर है क्या बात न जानी जाती उनकी

ज्वालामुखी समान कभी जब खुल जाते हैं
भस्म किया उनको जिनको वे पा जाते हैं
स्वच्छ स्नेह अंतर्हित फल्गू सदृश किसी समय
कभी सिन्धु ज्वालामुखी धन्य धन्य रमणी-हृदय
(क० ५, ख० १, कि० १)

बंगला 'त्रिपदी' छंद का भी प्रयोग किया गया है—

सघन सुन्दर मेघ मनहर
गगन सोहत हेरि
धरा पुलकित अति अनन्दित
रूप धरयो चहुँ फेरि
लता पल्लवित राजै कुसुमित
मधुकर सों गुञ्जित
सुखमय शोभा लहि मन लोभा
कामन नवरञ्जित
बिज्जुलि मालिनि नव कादम्बिनि
सुन्दर रूप सुधारि
अमल धारा नव जल धारा
सुधा देत मनु ढारि

परन्तु इन कविताओं का महत्त्व प्रयोगात्मक और ऐतिहासिक मात्र है। परन्तु फिर भी ब्रजभाषा की कुछ कविताएँ बड़ी सुन्दर बन पड़ी हैं और हमें सहसा आकर्षित कर लेती हैं—

पवन चलत सुरभित अति जो
मदमत्त करत सब ही को
मनहुँ मनोहर कामिनि कर
परसत किम शीतल जी को

झुकी सुमन के भार ते
डारन ये परसत नीको
ललित विमलता अति लोनो
तरुन तरुन के ही को
(पावस, कला २, किरण २)

विशेषत: जब इस प्रकार की कविताएँ द्विवेदीयुग की संस्कृतगर्भित नीरस कविताओं के समकक्ष रखी जाती हैं—

सुसान्ध्य रागोत्थित ताम्र सीमा
मनो धरे अंबुज अञ्जुली या
निशा नवेली शशि को मनावै
विथा हिये की सिगरी सुनावै
कपूर-सों वासित वायु सीरो
मरन्द के गन्ध सन्यों उसी से
वियोगियों के मन को विमोहै
सँयोगियों को सब भाँति छोहै
(गिरि-वर्षा—चौधरी लक्ष्मीनारायण सिंह, कला २०, किरण २)

इस कविता के सम्मुख प्रसाद के 'इन्द्रधनुष' की प्रतिभा रखिये तो चमत्कार का पता लगेगा—

नंदनकानन विहरणशील अप्सरागन को
सूखत पट बहुरंग हरत है जे मुनि मन को
किधौं गगन। तरकस तानि बहुरंग तार को
फेरत तिन पर संग सुघर अनसिमित वार को
(कला ३, कि० २)

या खड़ी बोली की उनकी पहली कविता 'चित्र'—

आशातटनी का कूल नहीं मिलता है
स्वच्छंद पवन बिन कुसुम नहीं खिलता है

कमलाकर में अति चतुर भूल जाता है
फूले फूलों पर फिरता टकराता है
मन को अथाह, गम्भीर समुद्र बनावो
चंचल तरङ्ग को चित से वेग हटावो
शैवाल तरङ्गों में ऊपर बहता है
मुक्ता-समूह थिर जल भीतर रहता है
(कला २, कि० २)

यद्यपि प्रसाद ने व्रजभाषा की कविता खड़ी बोली के साथ-साथ बराबर लिखी, इस प्रारंभिक काल में द्विवेदी-युग के कवियों का उन पर प्रभाव नहीं पड़ता, यह भी असंभव था। 'प्रभातिक कुसुम' और 'शरत्पूर्णिमा' (कला २०, कि० ४) जैसे नवीन विषयों पर उन्होंने व्रजभाषा में रचनाएँ कीं, परन्तु सामयिक काव्य का प्रभाव पड़ने के कारण वे कुछ समय तक द्विवेदी-युग से ऊपर नहीं उठ सके—

चंद्रिका दिखला रही है क्या अनुपम सी छटा
खिल रही है कुसुम की कलियाँ सुगंधों की अटा
सब दिगंतों में जहाँ तक दृष्टि पथ की दौड़ है
सुधा का सुन्दर सरोवर दीखता बेजोड़ है
(जलविहारिणी, कला २, किरण ५)

परन्तु उन्होंने शीघ्र ही अपने लिए नया क्षेत्र निकाल लिया। यह क्षेत्र था अतुकांत कविता का। १६२३ ई० के लगभग प्रसाद क्रान्तिकारी रूप में हमारे सामने आते हैं। इसी से 'सत्यव्रत' (कला ४, कि० १) में हमें उनके खड़ी बोली के प्रौढ़ काव्य के दर्शन होते हैं। इसी हेतु उन्होंने अतुकांत के प्रयोग शुरू किये—

हिमगिरि का उत्तुङ्ग शृंग के सामने
खड़ा बताता है भारत के गर्व को

पड़ती इस पर जब माला रवि-रश्मि की
मणिमय हो जाता है नवल प्रभात में
बनती हैं हिमलता कुसुममणि के खिले
पारिजात का ही पराग शुचि धूलि है
सांसारिक सब ताप नहीं इस भूमि में
सूर्यताप भी सदा सुखद होता यहाँ
हिमसर में भी खिले विमल अरविंद हैं
कहीं नहीं है शोच, कहाँ संकोच है
चंद्रप्रभा में भी गलकर बनते नहीं
चंद्रकांत से ये हिमखंड मनोज्ञ हैं

(भरत, कला ४, खं० १, कि० १, १९१३)

१९१३ में ही प्रसाद को मानसिक संकट उठाना पड़े। एक कविता में उन्होंने इसका संकेत किया है—

ये मानसिक विप्लव प्रभो जो रहे दिन रात हैं

(करुण क्रन्दन, अप्रैल १९१३)

और अगली ही संख्या में हम उन्हें वेदनात्मक काव्य की ओर झुका पाते हैं जैसे 'दलित कुमुदिनी'। कुछ वर्षों तक उनका यह दुःखभाव चलता रहता है। जुलाई-अगस्त १९१३ में 'नमस्कार' शीर्षक कविताओं के प्रकाशन से हम उन्हें गीतांजलि (प्र० १९११) के प्रभाव-क्षेत्र में भी आया पाते हैं। इसी समय कदाचित् उनकी वे कविताएँ प्रकाशित होती हैं जो राय कृष्णदास के संस्करण के आधार पर गद्यगीत के रूप में रविठाकुर के प्रभाव से लिखी गई जैसे—

जब प्रलय का हो समय ज्वालामुखी निज मुख खोल दे
सागर उमड़ता आ रहा हो, शक्ति साहस बोल दे
ग्रहगण सभी हों केंद्रच्युत लड़कर परस्पर भग्न हों
उस समय भी हम हे प्रभो! तव पद्मपद में लग्न हों

जब शैल के सब शृङ्ग विद्युतवृन्द के आघात से
हों गिर रहे भीषण मचाते विश्व में व्याघात से
जब घिर रहे हों प्रलय घन अवकाशगत आकाश में
तब भी प्रभो ! यह मन खिँचे तव प्रेमधारा-पाश में

(फरवरी, १९१४)

इसी समय उनकी एक दूसरी महत्त्वपूर्ण रचना 'महाराणा का महत्त्व' (कला ५, खं० १) प्रकाशित हुई। कविता अतुकांत थी। इसमें प्रसाद प्रौढ़ हो गए हैं—

तारा हीरक हार पहनकर, चहुँमुख
दिखलाती चढ़ती जाती थी चाँदनी
(शाही महलों के ऊँचे मीनार पर)
जैसे कोई पूर्ण सुन्दरी प्रेम से
चढ़े अटारी पर मिलने को नाथ से
अकबर के साम्राज्य भवन के द्वार से
निकल रही थी लपट सुगंध सनी हुई
'बसरा के मुश्क' से वासित हो रहा
भारत को सुख शीत पवन, जैसे कहीं
मिले विकास नवीन विवेकी हृदय से
राजभवन में मणिमय दीपाधार सब
स्वयं प्रकाशित होते थे, आलोक भी
फैल रहा था स्वच्छ सुविस्तृत भवन में
कृत्रिम मणिमय लता-भित्ति पर जो बनी
नव वसंत सा उन्हें विमल आलोक ही
मुक्ताफल शालिनी बनाता था अहो,
कुसुमकली की मालाएँ थीं झूमतीं
तोरन वन्दनवार हरे द्रुमपत्र के

सुरभि पवन से कलियाँ सब खिलने लगीं
कृश मालाएं 'गजरे' सी वह हो गईं

(क० ५०, कि० ६)

परन्तु 'गीतांजलि' का प्रभाव अधिक गहराई और बाद की कविताओं में दूर तक चलता है—

नये नये कौतुक दिखला कर
जितना दूर किया चाहो
उतना ही दौड़ दौड़ कर
चंचल हृदय निकट होता

(जनवरी, १६१५)

देर तुम्हारे आने में थी, इसलिये
कलियों की माला विरचित की थी कि हाँ
जब तुम आओगे, ये खिल जायँगी
सुखद शीत मारुत ने हमें सुला दिया
ये सब खिलने लगीं, न हमको ज्ञात था
मधुर स्वप्न तेरा हम तो ये देखते
किंतु कली थी एक हृदय के पास ही
माला में वह गड़ने लगी न खिल सकी
आँख खुली तो देखा चन्द्रालोक से
रंजित कोमल बादल नभ में छा गए
जिस पर बैठे पवन सहारे तुम चले
हम व्याकुल हो उठे कि तुमको अंक में
ले लूँ, तुमने झोरी सुरभित सुमन की
फेंकी, मस्त हुई आँखें फिर नींद में

(सुख की नींद : सितम्बर १६१६)

जो हो, इन प्रभावों और प्रयोगों के द्वारा प्रसाद के हिन्दी काव्य में एक युगांतकारी परिवर्तन कर दिया। यह सच है कि

इनके साथ अन्य शक्तियाँ भी आईं। पंत और निराला ने भी नए काव्य की भेरि बजाई। परन्तु 'प्रसाद' प्राचीन काव्य के गढ़ में रहते हुए इस जागरण के अग्रदूत हुए, यह उनके लिए श्रेय की बात थी। शताब्दी के प्रारंभ में खड़ी बोली बहिष्कृत थी। काव्य क्षेत्र में उसका कोई स्थान नहीं था—

जात खड़ी बोली पै कोऊ भयो दिवानो
कोउ तुकांत बिन गद्य लिखन में है अरुझानो
अनुप्रास प्रतिबन्ध कठिन जिनके उर माहीं
तथापि पद्य-प्रतिबंधहु लिखत गद्य क्यों नाहीं
अनुप्रास कबहूँ न सुकवि करि शक्ति घटावै
सच पूछौ तो नव सूदन हिये उपजावै

(सरस्वती, १६०१, पृ० ६)

जहाँ परिस्थिति यह थी, वहाँ एक दशक के बाद ही हमें खड़ी बोली में ऐसे प्रामाणिक काव्य मिले जैसे प्रियप्रवास, रंग में भंग, जयद्रथवध, पद्यस्कंध, भारत-भारती, मौर्यविजय, चारण, हिन्दी में मेघदूत, प्रवासी, नीति कविता, मेवाड़गाथा, माधव-मंजरी। 'प्रसाद' इस दिशा में और आगे बढ़े। तुकान्तहीन काव्य के क्षेत्र में उन्होंने विशेष योग दिया। प्रेमपथिक (१६१३) उनका पहला प्रयास था। उनसे पहले रामचरित उपाध्याय, ब्रजनन्दन-सहाय, कृष्णाराम, रूपनारायण पांडे थे और मैथिलीशरण गुप्त तुकान्तहीन काव्य की रचना कर चुके थे, परन्तु प्रसाद के 'प्रेम पथिक' (१६१३), 'करुणालय' (इन्दु, माघ संवत् १६६६) और महाराणा का महत्त्व इनसे कहीं आगे थे। यह हर्ष का विषय है कि तुकांत काव्य का महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस प्रारंभिक काल में पसंद कर उसे अपना बल दिया था। (द्विवेदीजी का पत्र लोचनप्रसाद पांडेय के नाम, ता०१४-६-१६०७ : इन्दु : क० ६०, खं० २०, किरण १, १६१५)

यद्यपि बाद में 'सुकवि किंकर' के नाम से उन्होंने छायावाद के विरोध में अपनी पूरी शक्ति लगा दी थी (सरस्वती, मई १६२७ और भारतेन्दु सं १, अं०, १६२८)

१६२७ ई० में लगभग १० वर्ष अंतर्द्धान रहने के बाद जब 'इन्दु' फिर प्रकाशित हुआ, तो प्रसाद द्वारा संस्थापित नई काव्य-बेलि लहलहा उठी थी। १६०६-१६ तक यह नया काव्य 'इन्दु' के पृष्ठों में ही जन्म एवं विकास को प्राप्त हुआ था, अतः हमें प्रसन्नता होती है जब संपादक लिखता है :

"गद्य के साथ आधुनिक हिन्दी कविता ने भी करवट ली है। अभी उसका लड़कपन दूर नहीं हुआ है, पर नींद की इस नई करवट ने उसे मधुर अवश्य बना दिया है। पहले वह सेवा की चीज़ थी, अब प्रेम की वस्तु हो गई है। पुराने अभिभावकों को शिकायत है कि अस्पष्टता और उच्छृङ्खलता बढ़ रही है पर वह भूल जाते हैं कि ये दोनों बातें जीवन के वसंत और यौवन के संधिकाल के दो बहुत ही आवश्यक उपकरण हैं। हिन्दी के नये मधुकर, बड़े-बूढ़ों की इस शिकायत का शायद यह जवाब दें कि प्रौढ़ता मुबारिक हो उनको जिनकी यात्रा का वही संबल है। अल्हड़पन ही तो जीवन का विकास है। हम भी यह कहें तो अनुचित न होगा कि सौन्दर्य सदैव एक रहस्य है, अतएव जहाँ जितनी ही सुन्दरता होगी, वहाँ उतनी ही अस्पष्टता भी रहेगी। सौन्दर्य की भाषा में जो अस्पष्टता, संकोच और (सिर झुकाकर कभी-कभी ऊपर देख लेने वाली) लज्जा की सहेली है वही साहित्य के प्रगति-विज्ञान में प्रतियोगिता के चिन्ह हैं। परिवर्तन की इस अवस्था पर रोने वाले रोयें, पर वह रोने की नहीं, मुस्कुराने की चीज़ है। हँसने की चाहे भले ही न हो।

हमारा तो विश्वास है कि साहित्य के दृष्टिकोण में सबसे यह महत्त्वपूर्ण जो परिवर्तन हुआ है वह कविता से ही संबंध

रखता है। 'इन्दु' को गर्व है कि अपने जीवन के आरंभिक दिनों में जो बीज उसने बोये थे, वे आज रूप बदल कर लहलहा रहे हैं।"

(कला ८, कि० १, जनवरी १९२७)

इन पंक्तियों में प्रसाद की आत्मा ही नहीं प्रसाद के ही शब्द ध्वनित हैं! कौन जानता है, 'इंदु' के लिए प्रसाद ने कितना परिश्रम किया, कितनी संपादकीय टिप्पणियाँ उन्होंने लिखीं? परन्तु जो जानते हैं, उन्हें ऊपर की पंक्तियाँ गर्वोक्ति नहीं लगेंगी, यह साधक द्वारा उसकी साधना की स्वीकारोक्ति मात्र है। 'इंदु' के माध्यम से प्रसाद ने दो दशकों में हिंदी काव्य को रीतिकालीन बुझौवल और द्विवेदीयुगीन जड़ता-चक्र से निकाल कर प्रेम, सौन्दर्य और चिंतन की प्रशस्त भूमि पर ला खड़ा किया।

३

"काननकुसुम"

'प्रसाद' की प्रारंभिक रचनाएँ इस छोटे से संग्रह में संग्रहीत हैं। अधिकांश कविताएँ वही हैं जो 'इंदु' (१९०९-१९१९ ई०) में प्रकाशित हो चुकी थीं। प्रसाद की प्रौढ़तम रचनाओं की ऐतिहासिक प्रगति के अध्ययन के लिए ये कविताएँ उपादेय हैं।

इन प्रारंभिक कविताओं को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

१—ब्रजभाषा कविताएँ,

२—द्विवेदी-युग के अनुरूप खड़ी बोली की कविताएँ,

३—नई प्रवृत्ति लिए छायावादी काव्य की भूमिका में रक्खी जाने योग्य खड़ी बोली की कविताएँ।

पहले हम ब्रजभाषा काव्य को लेंगे।

'प्रसाद' ने कविता लिखना आरम्भ किया तो अपने युग के अन्य कवियों की भाँति उनकी दृष्टि ब्रजभाषा की ओर गई। उस समय विशेषकर भारतेन्दु का काव्य उनका पथप्रदर्शन कर रहा था। स्वयं 'भारतेन्दु प्रकाश' कविता में उन्होंने भारतेन्दु को अपनी प्रारम्भिक सुन्दर अनुभूतियाँ अर्पण की हैं—

सज्जन चकोर भये प्रफुल्लित मानि मन में मोद को
सहृदय हृदय शुचि कुमुद विकसे विसद बन्धु विनोद को
छिटकी सुहिछी चंद्रिका आनन्द अतिहिं विधायिनी
यह भारतेन्दु भयो उदय धरि कांति जो सुख दामिनी

और कुछ कविताओं में भारतेन्दु की व्रजभाषा कविताओं की शैली का मार्मिक अनुकरण किया गया है—

सोयो सोयो जागिके, करि आगम पहिचान
काहि पुकारयो वेग सों, अहो पपीहा प्रान
हौं नहिं जानौ कहाँते आय परे तुम मीत
अवहीं जो तुम जात हौ करत महा अनरीत
प्रकृति सुमन वरसत रही, भली रही अधरात
का मिलिवे के समय में, तेहि जनि करहुँ प्रभात
नव वसंत सों अतिथि तुम, आवहु हिय हरपाय
छोड़ि जात ग्रीपम तपन जासों जिय जरि जाय
आवत वरसत नेहरस, अहो प्रेमघन मीत
करि लकीर दुरि जाहुगे, धरि चंपला की रीत

(विदाई)

परन्तु अधिकांश व्रजभापा कविताओं में उन्होंने नवीन विपय और नवीन भाव भरने की चेष्टा की है जैसे

धरि हिय माँहिं असीम अनन्द
सने शुचि सौरभ सों मकरन्द
समीरन में सुखमा भरि देत
प्रभातिक फूलहियो हरि लेत
मनो रमनी निज पीय प्रवास
फिरो लखि के निज वैठि निवास
निरखत अश्रु भरे निज नैन
अहो इमि राजत फूल सचैन

(प्रभातिक कुसुम)

और

लखहु नील सित असित पीत आरक्तिम शोभा
मिलि एकहि सङ्ग अद्भुत प्राची में मन लोभा

छितिज छोर लों कोर छबि धनुषाकृति सोहै
सन्ध्या को आलिंगित वह सब को मन मोहै
काञ्चनीय निज करन डारि भूमण्डल ऊपर
पश्चिम दिशि को जात लखहु यह भानु मनोहर
इत प्राची में धनुष लखायो रंग अनुपम री
भेंटि देत जनु भानुहिं रतनन गगन-जौहरी
(इन्द्रधनुष)

इन कविताओं में द्विवेदी युग की जड़ता के प्रति विरोध-स्वरूप कल्पना का स्वच्छन्द विलास स्पष्ट है जैसे

गहन विपिन सम गगन तासु वरवीर केशरी भारी
केशर कर बिखराह चन्द घूमत है बनि वनचारी
तम आखेट करत ही डोलत सों कहिके भय भाजै
मनु श्रमयुद्ध करन ते उपज्यों सो तारागन राजै
देव गोपजन मह्यो महीसम छीर सिन्धु चितलाई
नव नवनीत अंश उड़ि लाग्यो कै अंबर छवि छाई
प्रकृति देवि निज लीला कन्दुक किधौ किये कलकेली
दियो उछाल गगन मह राजत सो करिके रँगरेली
नील गगन वर कुञ्जर को यह सोहै घंटा भारी
ध्वनि ताकी नलिनी विकास लहि मधुकर को गुंजारी
उज्ज्वल नवघन नील गगन मँह
प्रकाशी
राजै जि
त्यादि

व्रजभाषा का
अभिनंदनीय है,

सकी। एक अन्य कविता 'सन्ध्यातारा' में भी यही कल्पनाजन्य विलास उपस्थित है—

कामिनी चिकुर भार अति घन नील
तामें मणिसम तारा सोहत सलील
अनंत तरंग तुङ्ग माला विराजित
फेनिल गम्भीर सिन्धु निनाद वोहित
हरि कूहू में नाविक जिमि भयभीत
पीय - पथ दर्शकहिं लखत सप्रीत
संसार तरंग लखि भीत तिमि जन
निराशहृदय धारि सन्तापित मन
शांति निशा महिषी को राजचिन्ह रूप
तुमहि लखत संध्यातारा शुभ रूप

(संध्यातारा)

परन्तु छन्द 'पयार' (बँगला छन्द) का व्रजभाषान्तर्गत अनुकरण है। स्पष्ट है, 'प्रसाद' का असंतोष तीन प्रकार का है।

१—विषयजन्य
२—शैलीजन्य
३—छंदजन्य

उन्होंने काव्य को व्रजभाषा में लिखते हुए भी तीनों दिशाओं में नए प्रयत्न किये हैं। विषय नवीन, शैली कल्पनाप्रसूत आलंकारिक और छंद 'पयार'।

परन्तु जब वे द्विवेदी युग के कवियों के अनुकरण में लिखने लगे तो कल्पना का यह विलास उनकी सीमा में रहते हुए आना असंभव था। परन्तु समसामयिक काव्य को आँख की ओट कर लेना असंभव था। प्रसाद ने प्रचलित छंदों में लिखा—

विमल इन्दु की विशाल किरणें प्रकाश तेरा बता रही हैं

अनादि तेरी अनंत माया जगत् को लीला दिखा रही हैं
('प्रभो' उर्दू छंद)

जब मानते है व्यापी जल भूमि में अनिल में
तारा शशांक में भी आकाश में अतल में
फिर क्यों ये हठ है प्यारे मंदिर में वह नहीं है
यह शब्द जो नहीं है उनके लिए नहीं है
('मंदिर')

'रवि बाबू की एक कविता का विरोध द्रष्टव्य है। गीताजंलि की एक कविता इस प्रकार है :—

Leave this chanting and singing and telling of heads ! Whom dost thou worship in this lonely corner of a temple with doors all shut ? Open thine eyes and see thy God is not before thee !

He is there where the tiller is toilling the hard ground and where the path-maker is breaking stones. He is with them in sun and in shower. (Gitanjali, 11.)

परन्तु यहाँ भी कहीं-कहीं प्रसाद स्वतंत्रता से काम लेते हैं जैसे—

अरुण अभ्युदय से हो मुदित मन प्रशांत सरसी में खिल रहा है
प्रथम पत्र का प्रसार करके सरोज आलिंगन में मिल रहा है
गगन में संध्या की लालिमा से किया संकुचित वदन था जिसने
दिया न मकरन्द प्रेमियों को गले उन्हीं के वो मिल रहा है
('सरोज', नया छंद)

बैठी वसन मलीना पहिन इक बाला
नलिनी पत्रों के बीच कमल की माला

× × ×

पर हाय चन्द को घन ने क्यों है घेरा
उज्ज्वल प्रकाश के पास अजीब अँधेरा
उस रस-सरवर में क्यों चिंता की लहरी
चंचल चलती है भावभरी है गहरी
कल कमल कोश पर हाय! पड़ा क्यों पाला
कैसी हाला ने किया उसे मतवाला
किस धीवर ने यह जाल निराला डाला
सीपी से निकली है मोती की माला

('मलीना' : दुखवाद, कलपना विलास)

कवि के इस प्रथम काव्य में भी हमें कल्पना का विशेष उद्रेक दिखाई देता है जो आगे आकर छायावादी काव्य की एक बड़ी ऊहात्मक रूढ़ि बन गया।

छायावाद की एक दूसरी पद्धति है वेदना का स्वतः अनुभव एवं प्रकाशन। इन प्रारंभिक कविताओं में इस ओर भी स्फुरण मिलता है। जैसे—

(१) करुणानिधे, यह करुण क्रन्दन भी ज़रा सुन लीजिये

(करुण क्रन्दन, आध्यात्मिक वेदना)

(२) क्लांत हुआ सब अङ्ग शिथिल क्यों वेष है
मुख पर श्रमसीकर का भी उन्मेष है
भारी बोझा लाद लिया न सँभार है
छल छालों से पैर छिले न उबार है
चले जा रहे वेग भरे किस ओर को
मृगमरीचिका तुम्हें दिखाती छोर को
किंतु नहीं हे पथिक! वहाँ जल है नहीं
बालू के मैदान सिवा कुछ है नहीं

(करुणापुञ्ज, आध्यात्मिक वेदना)

(३) त्रस्त पथिक देखो करुणा विश्वेश की

(करुणावाद)

छायावाद कविता का एक विषय प्रेम की रहस्यमय व्यंजना है और इस क्षेत्र में 'प्रसाद' सबसे पहले आते हैं। एक कविता 'नीरव प्रेम' है। कविता ब्रजभाषा में है। कवि कहता है, प्रेम अपने सुन्दरतम रूप में मौन ही है। एक अन्य कविता 'विस्मृत प्रेम' में कवि कहता है, जब हृदयाकांश में अंधकार हो जाता है, तब प्रेम-प्रकाश दिखलाता है—

घन तमावृत शून्य आकाश सों
हिम भयो यह हाय निरास सों
तबहुँ रश्मि लखाय विभावरी
ध्रुव समान सुकौन प्रभाधरी

प्रेमी को प्रेम की पीड़ा भी प्रिय है, यह छायावादी काव्य का प्रिय विषय है। कवि कहता है—

मैं तो तुमको भूल गया हूँ
पाकर प्रेममयी पीड़ा

(हृदय वेदना)

'निशीथमयी' 'दलित कुसुम' 'एकांत में' आदि कविताएँ इस प्रेम की वीथिका में दुःखवाद को लेकर आगे आती हैं।

वस्तुतः इन कविताओं में हम प्रसाद के कवि-जीवन का 'प्रथम प्रभात' पाते हैं। 'प्रथम प्रभात' शीर्षक उनकी कविता उनके व्यक्तित्व के प्रथम प्रकाशन के रूप में सामने आती है—

मनोवृत्तियाँ खगकुल-सी थीं सो रहीं
अन्तःकरण नवीन मनोहर नीड़ में
नील गगन-सा शांत हृदय भी हो रहा
वाह्य आन्तरिक प्रकृति सभी सोती रहीं

स्पंदनहीन नवीन मुकुल मन तुष्ट था
अपने ही प्रच्छन्न विमल मकरन्द से
कहा अचानक किस मलयानिल ने तभी
(फूलों के सौरभ से पूरा लदा हुआ)
आते ही कर स्पर्श गुदगुदाया हमें
खुली आँख, आनन्द दृश्य दिखला गया
मनोवेग मधुकर-सा फिर तो गूंज के
मधुर-मधुर स्वर्गीय गान गाने लगा
वर्षा होने लगी कुसुम मकरन्द की
प्राण-पपीहा बोल उठा आनन्द में
कैसी छवि ने बाल अरुण की प्रकट हो
शून्य हृदय को नवल राग रंजित किया
सद्यःस्नात हुआ फिर सुतीर्थ में—
मन पवित्र उत्साहपूर्ण भी हो गया
विश्व, विमल आनंद भवन-सा हो गया
मेरे जीवन का वह प्रथम प्रभात था

इस प्रथम प्रभात में हम कवि को अनेक नई दिशाओं में बढ़ते पाते हैं :

१—कल्पना का उद्रेक
२—नवीन छंद
३—नवीन विषय
४—प्रेम की रहस्यमयता
५—पीड़ा का महत्त्वगान
६—आध्यात्मिक प्रेम की तितीक्षा
७—कथाकाव्य के प्रति प्रेम
८—नाटकीयता : काव्य में
९—प्रकृति-प्रेम

अभी तक कवि का काव्य मुख्यतः प्रासादिक है। उसमें कोई छलछंद नहीं। कवि लक्षणा-व्यंजना के दाँव-पेंच में नहीं पड़ता। इस दृष्टि से नवीन होते हुए भी यह काव्य प्रसाद की एक महत्त्वपूर्ण भंगिमा से वंचित हैं। जो हो, यही काव्य है जिसने छायावाद (नए काव्य का स्वच्छन्दतावाद) की नींव डाली, अतः ऐतिहासिक दृष्टि से इसका अध्ययन महत्त्वपूर्ण है।

४

"झरना"

'झरना' का पहला संस्करण १९२८ में प्रकाशित हुआ। दूसरा १९२९ में। इस संग्रह में 'प्रसाद' की १९१४-१९१७ के बीच की खड़ी बोली की कविताएँ हैं। 'प्रथम प्रभात' इसमें भी है। वास्तव में कवि ने प्रभात का विगुल सुन लिया है और सब अपने महत्त्व को समझ गया है, अतः 'काननकुसुम' की इसी कविता से संग्रह का आरम्भ हुआ है। संग्रह की सारी कविताएँ खड़ी बोली हैं, यह महत्त्वपूर्ण है। इससे यहाँ पर प्रसाद का द्वैधरूप समाप्त हो जाता है। इस काव्य-संग्रह में भी हम कवि की अनेक प्रवृत्तियों को आगे बढ़ता देखते हैं।

'झरना' प्रकृति का प्रतीक है, परन्तु इस संग्रह में प्रकृति संबन्धी कविताएँ एक दो ही हैं। कवि प्रेम, विरह, दुख, सुख की व्याख्या में लगा है। प्रकृति संबन्धी एक सुन्दर कविता है 'पावस प्रभात'।

क्लांत तारकागण की मधपमण्डली
नेत्र निमीलन करती है फिर खोलती
रिक्त चषक-सा चंद्र लुढ़क कर है गिरा
रजनी के आपानक का अब अंत है
रजनी के रञ्जक उपकरण बिखर गये
घूँघट खोल उषा ने झाँका और फिर
अरुण अपांगों से देखा, कुछ हँस पड़ी
लगी टहलने प्राची प्रांगण में तभी

इस कविता में कवि ने 'मद्यपमंडली' का रूपक बाँध कर प्रभात में चंद्रतारा की अस्तव्यस्तता का वर्णन किया है, पर यहाँ उर्दू-फारसी काव्य का प्रभाव खुल पड़ा है। दूसरे पद में कवि ने उषा प्रसंग का सुन्दर युवती के रूप में मूर्त्तिमान किया है जो रजनी के निखरे उपकरण देख कर प्रसन्नता और ईर्ष्या से गर्वीले हैं। यह मूर्त्तिमत्ता (personification) नए काव्य का प्राण है।

अधिकांश कविताओं का संबन्ध अध्यात्म से है। बहुत-सी कविताएँ 'इन्दु' की ये ही कविताएँ हैं जिन पर रवि बाबू का प्रभाव लक्षित है। भावदृत्त पर यह प्रभाव १९१३ के लगभग पड़ता है। वैसे छन्द 'सॉनेट' है या हिंदी का ही कोई चलता छंद।

प्रार्थना और तपस्या क्यों ?
    पुजारी किसकी है यह भक्ति ?
डरा है तू निज पापों से,
    इसी से करता निज अपमान !
दुखी पर करुणा क्षण भर हो,
    प्रार्थना पहरों के बदले,
हमें विश्वास है कि वह सत्य
    करेगा आकर तव सम्मान

(आदेश)

रवि बाबू की कविता इस प्रकार है—

"Deliverance? Where is this deliverance to be found? Our master himself has joyfully taken upon him the bonds of creation; he is bound with us all for ever. Come out of thy meditations and leave aside thy flowers & incense! What harm is there if

thy clothes become tattered & stained? Meet him and stand by him in toil and in sweet of thy brow.

(*Gitanjali, 11*).

एक दूसरी कविता में कवि कहता है—

हँसी आती है मुझको तभी
जब कि यह कहता कोई कहीं
अरे सच, यह तो हैं कंगाल
अमुक धन उसके पास नहीं

× × ×

शांत रत्नाकर का नाविक
गुप्त निधियों का रक्षक यक्ष
कर रहा वह देखो मृदुहास
और तुम कहते हो कुछ नहीं

(कुछ नहीं)

इसे रवि बाबू की इस कविता की वीथिका में पढ़िये—

On many an idle day have I grieved over lost him. But it is never lost, My Lord. Thou hast taken every moment of my life in thine own hands, Hidden in the heart of things thou art nourishing seeds into spruots, buds into blossoms, and ripening flowers into fruitfulness. (*Gitanjali, 81*)

कुछ कविताओं में कवि एक भीषण अशांति का अनुभव करता है। पद कहता है—

जब करता हूँ कभी प्रार्थना
कर संकलित विचार
तभी कामना के नूपुर की
हो जाती झंकार

चमत्कृत होता हूँ मन में

(अव्यवस्थित)

एक दूसरी कविता 'रत्न' में वह रवि ठाकुर की तरह कहता है कि 'रत्न' की रक्षा में पड़कर उसने उसका उपभोग भी नहीं किया। यों ही दिखलाने में रहा। रवि बाबू भी कहते हैं—

The child who is decked with Prince's robes and who has jewelled chains around his neck loses all pleasure in his play; his dress hampers him at every step.

In fear that it may be frayed, or stained with dust he keeps himself from the world, and is afraid even to more. (*Gitanjali* 8)

पिछले संग्रह में हमने प्रसाद को प्रेमी के रूप में भी देखा था। इस संग्रह से पता चलता है कि प्रेमी उपेक्षित रहा और उसने प्रेमी की तीव्र मर्माहत वेदना का अनुभव किया। प्रेम पात्र ने उसे ठुकरा दिया। सुधा में गरल मिला दिया—

सुधा में मिलादिया क्यों गरल
पिलाया तुमने कैसा तरल
माँगा होकर दीन
कंठ सींचने के लिए
गर्म झील का मीन
निर्दय तुमने कर दिया
सुना था तुम हो सुन्दर ! सरल

(सुधा में गरल)

उसने अनुभव किया कि प्रेम नाहर है—

हृदय गुफा थी शून्य
रहा घोर सूना

इसे बसाऊँ शीघ्र
बड़ा मन दूना
अतिथि आ गया एक
नहीं पहचाना
हुए नहीं पद-शब्द
न मैंने जाना
हुआ बड़ा आनन्द
बसा घर मेरा
मन को मिला विनोद
कर लिया घेरा
उसको कहते "प्रेम"
अरे, अब जाना
लगे कठिन नखरेख
तभी पहचाना
अतिथि रहा वह किंतु
न घर बाहर था
लगा खेलने खेल
अरे, नाहर था

इस प्रकार प्रसाद उपेक्षित प्रेम, विरह और करुणा मे अपने काव्य-जीवन को आरंभ करते हैं। एक कविता में कवि कहता है—

रे मन !
न कर तू कभी दूर का प्रेम
निष्ठुर ही रहना अच्छा है, यहीं करेगा क्षेम
(बिन्दु)

वह अपनी प्रेम की सच्चाई की बात पुका-रपुकार कर कहता है—

तपा चुके हो विरह-वह्नि में
काम जँचाने काम हमें,
शुद्ध सुवर्ण हृदय है प्रियतम !
तुमको शंका केवल है

(कसौटी)

कहीं संयोग स्मृति के गीत गाता है—

नियत था—पर हम दोनों थे
वृत्तियाँ रह न सकीं फिर दान्त
कहा जब व्याकुल हो उनसे
"मिलेगा कब ऐसा एकान्त ?"
हाथ में हाथ लिया मैंने
हुए वे सहसा शिथिल नितान्त
मलय ताड़ित किसलय कोमल
हिल उठी उँगली, देखा, भ्रांत

(झील में)

'होली की रात' में उपेक्षा के ये तार प्रकृति की भूमिका में बजते हैं—

चांदनी धुली हुई है आज
बिछलते हैं तितली के पंख
सम्हल कर मिलकर बजते साज
मधुर उठती है तान असंख
तरल हीरक लहराता शांत
सरल आशा-सा पूरित ताल
सिताबी छोड़ रहा विधु कांत
बिछा है सेज कमलिनी जाल

× × ×

उड़ा दो मत गुलाल-सी हाय
अरे अभिलाषाओं की धूल
और ही रंग नहीं लग जाय
मधुर मंजरियाँ जावें भूल—
विश्व में ऐसा शीतल खेल
हृदय में जलन रहे क्या बात !
स्नेह से जलती होली खेल
बना ली हाँ, होली की रात

(होली की रात)

परन्तु इसी संग्रह से प्रसाद की शैली में परिवर्तन होता है। वह लौकिक प्रेम को आध्यात्मिक रूप देने की प्रवंचना में पड़ जाते हैं। अतः दो पक्षों में घटाने के प्रयत्न के कारण कविताएँ अस्पष्ट हो जाती हैं। यहीं से 'रहस्यवाद' का आरंभ होता है। प्रसाद ने अपने विषयों में रहस्यवाद को भंगिमा की एक शैली माना है, इन कविताओं के अध्ययन से उनका दृष्टि-कोण स्पष्ट हो जाता है। वे मूलतः 'रहस्य' 'आत्मा-परमात्मा' के कवि नहीं थे। परन्तु जब इस रूप में उनकी प्रसिद्धि हो गई तो वह चुप-चाप इसे निभाते गये। प्रसाद मूलतः प्रेम, विलास और सौन्दर्य के कवि हैं। उन्होंने आनन्द के आधार पर मानव जीवन के सुखों-दुखों की व्याख्या की है। वे कलाकार कवि हैं। परन्तु वे उस अर्थ में रहस्यवादी कवि नहीं जिस अर्थ में हम कबीर, मीरा या महादेवी को रहस्यवादी कहेंगे। इस संग्रह में हम देखते हैं कि कवि धीरे-धीरे इस पार्थिव प्रेम को आध्यात्मिक प्रेम में बदल देता है—

मिल गये प्रियतम हमारे मिल गये
यह अलस जीवन सफल सब हो गया

कौन कहता है जगत है दुःखमय
यह सरस संसार सुख का सिंधु है
इस हमारे और प्रिय के मिलन से
स्वर्ग आकर मेदिनी से मिल रहा;
कोकिलों का स्वर विपञ्ची नाद भी
चंद्रिका, मलयज पवन, मकरंद औ
मधुप माधविका कुसुम से कुंज में
मिल रहे, सब साज मिल कर बज रहे
आज इस हृदयब्दि में, बस क्या कहूँ
तुङ्ग तरल तरंग कैसी उठ रही

(मिलन)

प्रकृति और आध्यात्मिक कविताओं के अतिरिक्त प्रसाद गीतों की ओर भी बढ़ते हैं। इस संग्रह में कुछ सुन्दर गीत हैं। कुछ गीत प्रचीन पद के ढंग के हैं। जैसे

अया को करिये सुंदर राका
फैले नव प्रकाश जीवनधन ! तव मुखचंद्र पिया का
मेरे अतर में छिपकर भी प्रकटे मुख सुखमा का
प्रबल प्रभंजन मलय मारुत हो, फहरे प्रेम पताका

या—

आया देखो विमल बसंत

(बिंदु)

कभी असम मात्रिक छन्दों का कटा-छटा शृङ्गार करते हैं—

तुम्हारी करुणा ने प्राणेश (१६)
बनाकर के मन मोहन केश (१६)
दीनता को अपनाया (१२)
उसीसे स्नेह बढ़ाया (१२)

लता अलता बढ़ चली साथ (१६)
मिला था करुणा का शुभ हाथ (१६)

कभी "चौपाई" (१६ मात्रा) के आधार पर निश्चित ढंग चलता है—

तू आता है, फिर जाता है
जीवन में पुलकित प्रणय सदृश
यौवन की पहली कांति अकृश
जैसी हो, वह तू पाता है
हे वसंत तू क्यों आता है

कभी-कभी विषम-मात्रिक छन्दों के प्रयोग से परिस्थिति सुन्दर भी हो जाती है। जैसे—

मधुर है स्रोत, मधुर है लहरी
न है उत्पात, छटा है छहरी
मनोहर झरना
कठिन गिरि कहाँ विदारित करना
बात कुछ छिपी हुई है गहरी
मधुर०

इस प्रकार हम 'प्रसाद' को आधुनिक गीतिकाव्य के उन्नायक के रूप में भी देखते हैं। यह सच है कि इस दिशा में उन्होंने पंत या निराला जैसा वृहद् साहित्य हमें नहीं दिया, परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि वे आधुनिक गीतिकाव्य के पिता हैं।

अंत में 'झरना' संग्रह में हम 'प्रसाद' को प्रधानतम प्रेम और सौंदर्य के कवि के रूप में पाते हैं। इस प्रेम-काव्य पर उर्दू का प्रभाव लक्षित है, 'आँसू' (१९२५) में कवि के कलाकार हाथों ने उसे छिपा दिया है—

किसी पर मरना यही तो दुख है

'उपेक्षा करना' मुझे भी सुख है

(उपेक्षा करना)

सुखद थी पीड़ा, हृदय की क्रीड़ा
प्राण में मेरी भयानक शक्ति
मनोहर सुख था, न मुझको दुख था
रही विप्रयोग में न विरक्ति

(वेदने, ठहरो)

ऐसी न जाने कितनी पंक्तियाँ इस प्रभाव को ही लक्षित करती हैं।

५

"आँसू"

(१६२५, १६३८)

'आँसू' प्रसाद का सबसे प्रसिद्ध काव्य है और कदाचित् छायावाद काव्य को एक विशेष रूप एवं व्यक्तित्व देने का जितना श्रेय इसे है उतना किसी अन्य काव्य को नहीं। प्रथमावृत्ति केवल पुस्तकाकार में, १६२५ ई० में प्रकाशित हुई। दूसरे तीसरे संस्करण में प्रसाद ने अनेक परिवर्तन भी कर दिये। उन परिवर्तनों का अपना इतिहास है और उनसे प्रसाद की कला और रुचि के विकास पर विशेष प्रकाश पड़ सकता है।

'आँसू' वास्तव में एक छोटा-सा सुन्दर प्रेम-विरह-काव्य है, यद्यपि अध्यात्मपक्ष की ओर उसके अर्थ खींच लिए गए हैं और इसी रूप में उसकी विशेष प्रसिद्धि है।

कोई कहानी नहीं। केवल कहानी का आभास मिलता है। इसलिए अर्थ अस्पष्ट ही रह जाते हैं। जहाँ काव्य की वीथिका और लेखक की मनोभूमि के संबंध में भी अटकल लगानी पड़ती है, वहाँ यही दशा होती है। कवि ने किसी से प्रेम किया है। यह प्रेम-व्यापार अनेक परिस्थितियों में अनेक दिनों तक चलता रहता है। परन्तु सहसा यह समाप्त हो जाता है। कदाचित् किसी कारण से प्रेमपात्र ने प्रेमी को अपनाना छोड़ दिया। जहाँ मिलन सुख की तरंगें थीं, वहाँ विरह की तप्त झंझा चलने लगी। आँसू' काव्य इसी विरह-कथा का आधुनिक रूप है।

कविता का ढाँचा यों है—

(१) कवि अपनी दुःखपूर्ण परिवर्तित अवस्था पर आश्चर्य करता है। ऐसा कैसे हो गया (छंद १-५)

(२) अपनी परिस्थिति का विश्लेषण करता है (६-१२)
(३) तब और अब तुलना (१३-३६)
(४) मिलन-स्मृति (३७-५७)

नखशिख (४८-५७)
उस मिलन के बाद (५८-६८)
उस मिलन की याद (६९-७५)

(५) अब ? वियोगदशा (७६-८६)
(६) उपालंभ (८७-९०)
(७) जीवन-मृत्यु (दर्शन) (९१-१२६)

वास्तव में, कथावस्तु की वीथिका न होने और अनेक नूतन प्रयोगों के कारण काव्य अस्पष्ट हो जाता है, परन्तु नई परंपरा के पीछे कुछ पुराना भी है। नखशिख प्राचीन प्रेम-काव्य का एक अंग है। 'प्रसाद' द्वारा उपस्थित नया नखशिख देखिए—

बाँधा है विधु को किसने
इन काली जंजीरों से
मणिवाले फणियों का मुख (मुख, अलकें)
क्यों भरा हुआ हीरों से
काली आँखों में कैसी
यौवन के मद की लाली, (आँखें)
मानिक-मदिरा से भर दी
किसने नीलम की प्याली

'आँसू'

गिर रही अंतृप्ति जलधि में
नीलम की नाव निराली
काला पानी वेला सी
है अंजनरेखा काली

अंकित कर क्षितिज पटी को
तूलिका वरौनी तेरी (पलकें)
कितने घायल हृदयों की
बन जाती चतुर चितेरी

कोमल कपोल पाली में (स्मिति)
सीधी-सादी स्मित रेखा
जानेगा वही कुटिलता
जिसने भौं में बल देखा (भ्रू भंगिमा)

विद्रुम सीपी संपुट में
मोती के दाने कैसे
है हंस, न शुक, यह, फिर क्यों (नासिका)
चुगने की मुद्रा ऐसे

विकसित सरसिज वन वैभव
मधुऊषा के अंचल में
उपहास करावे अपना (हँसी)
जो हँसी देख ले पल में

मुख कमल समीप सजे थे
दो किसलय से पुरइन के
जलविन्दु सदृश ठहरे कब (कर्ण)
इन कानों में दुन-किनके

थी किस अनंग के धनु की
 वह शिथिल शिंजिनी दुहरी (बाहु)
अलबेली बाहुलता या
 तन-छवि-सर की नवलहरी

चञ्चला स्नान कर आवे
 चंद्रिका पर्व में जैसी, (तनद्युति)
उस पावन तन की शोभा
 आलोक मधुर थी ऐसी

स्पष्ट है कि रीतिकाल के ही प्रचलित उपमानों का प्रयोग है। इसमें रीतिकाल की ही आत्मा बोलती है, अंतर है 'टेकनीक' का, शैली का, कला की क़लम का। जहाँ अस्पष्टता या नयापन है, वह नये प्रयोगों के कारण। कवि प्राचीन चलती हुई उपमाओं को नए ढंग से रखता है। यदि कविता अस्पष्ट हो जाती है तो उसके कारण हैं :

(१) मिश्रित उपमानों का प्रयोग।

एक ही उपमेय के लिए कई उपमानों के एक साथ सब ही पद में उलझ जाने से अस्पष्टता आ जाती है जैसे पलकों के वर्णन में कवि बाण और तूलिका को उपमान बनाता है और एक ही साँस में दोनों को मिला देता है। "तेरी पलकों ने कितने हृदय घायल कर दिये। अब यही बरौनी तूलिका बन गई है और उसने उन घायल हृदयों के चित्र क्षितिजपटी पर खेंच दिये हैं।" यहाँ कवि प्रसिद्ध उपमानों को ही लेता है।

अर्थ है, तेरी पलकों को देखते ही उनसे घायल हृदयों का चित्र सामने खिंच जाता है। यहाँ 'क्षितिज' शब्द ने भाव को और उलझा दिया है। इस संदर्भ में उसका कोई अर्थ नहीं। अर्थ

यही हो सकता है, कि तेरे घायल एक-दो नहीं, लाखों हैं, इसीसे चित्रपटी वड़ी है। परन्तु इससे भाव सुन्दर नहीं हो जाता।

(२) नए शब्दों के प्रयोग जैसे

पाली=तालाव का बाँध या उठा हुआ किनारा=
उभरे कपोल=स्वस्थ कपोल (२८)

'पुरइन 'किनके' जैसे अनेक जन-भाषा के शब्द संस्कृत शब्दों से लगा कर आगे बढ़ते हैं, जो काव्य को कुछ असंयत और अटपटा बना देते हैं।

(३) कहीं-कहीं नवीनता के लिये पुराने उपमानों को वाग्वैदग्धता के सहारे उपस्थित किया गया है। जैसे ४३वें छंद में

होंठ=विद्रुम-सीपी-संपुट
मोती के दाने=दाँत
चुगने की मुद्रा=दंतपंक्ति
नासिका=शुक

(कवि कहता है, यह नासिका तो शुक है, फिर इसे चुगने के लिए मोती क्यों रखे गए हैं। यह तो हंस नहीं है।)

(४) उर्दू काव्य का प्रभाव।

जो यह नहीं जानते कि 'आँसू' पर प्रेम और वियोग दोनों पक्षों में वही उर्दू का प्रभाव है जिसके लिए विहारी लांछित हैं, वह उसे भली भाँति समझ ही नहीं पाते। 'प्रसाद' की प्रेमिका उर्दू कवि की माशूका की भाँति निष्ठुर है, कठोर है; घायल करना, फिर मुँह फेर लेना, यह उसका क्रोध है, पैर से मल-मल कर हृदय के छाले फोड़ देगी। वह निष्ठुरा भला प्रेमी का दुःख क्यों सुनने लगी? उसके कान तो कमल के पत्ते हैं, उनमें दुखःकथा के अश्रुकण ठहरेंगे ही नहीं (५५)।

उर्दू काव्य के प्रभाव ने काव्य को रहस्यात्मक रूप दने में बड़ा भाग लिया है। कवि पुलिंग में प्रेमिका को संबोधित करता है जैसे

पर एक वार आए थे
निःसीम हृदय में मेरे (६३)

रो-रोकर सिसक-सिसक कर
कहता मैं विरह कहानी
वे सुमन नोचते सुनते
करते जाते मनमानी (६१)

जीवन की गोधूली में
कौतूहल से तुम आये

परन्तु इस विदेशी पद्धति के प्रभाव से गड़बड़ी भी हो सकती है, जैसे

शशि मुख पर घूँघट डाले
अंचल में दीप छिपाए

जिसे दूसरे संस्करण में 'प्रसाद' को 'अंतर में' करना पड़ा। अंचल नारी-शृङ्गार है, पुरुष नहीं, इससे ठीक नहीं बैठता। यह प्रभाव अंत तक बना है जैसे लहर की एक कविता है 'निधरक तूने ठुकराया'। यह फारसी काव्य का उल्था-मात्र है। कवि कहता है—"तूने निधड़क होकर पैरों से मेरी जीवन प्याली ठुकरा दी। उसे अब भी तेरा प्रहार प्रिय है। वह फिर चाहती है, तुम बार-बार ठुकराओ। जीवन में जो रस बचा था, वह आँसू बन गया। प्रकृति ने उसे अपनाया। पृथ्वी पर मेघ बन कर मेरे आँसू बरसे और पृथ्वी को हरियाली का दान मिला (भाव, मेरे दुःख थे संसार का कल्याण हुआ। स्वच्छंद काव्य में कवि 'शहादत' के लिये

बराबर तैयार रहता है) अब क्यों यह करुणा ? क्या निष्ठुर हृदय में हूक उठी ? क्या पहली भूल जान पड़ी ? क्या कसक बोल उठी ? क्या सूखी डाली पल्लवित मुखरित हो गई ? ओ प्राणों के प्यारे ! ओ मतवाले ! ओ अंधड़ की तरह आने वाले ! और भूल और भूल जा ! मेरा क्या सोच ? मैं तो मिट जाने वाला ही हूँ एक दिन।"

यह प्रभाव भाव-भंगिमा तक ही सीमित नहीं, भाषा भी इससे लांछित है। अधिकांश नए प्रयोगों के पीछे यही रहस्य है। 'शीतल ज्वाला' उर्दू का 'आतिशे नम' है। 'छिल-छिल कर छाले फोड़े', 'मल-मल कर मृदुल चरण से', हिन्दी-काव्य-संपदा से बाहर की चीज़ है। 'जुलफों' के उलझने-सुलझने की बात हम सुनते हैं। 'प्रसाद' भी कहते हैं—

मेरे जीवन की उलझन
बिखरी थी तेरी अलकें (८३)

भाग्य-चक्र को देखिये—

नचती है नियति नटी-सी
कन्दुक क्रीड़ा-सी करती (१२२)

'आसमान' कैसे जुल्म ढाता है—

आकाश छीनता सुख को (८६)

इस प्रकार फारसी या उर्दू काव्य के व्यापक प्रभाव के कारण 'आँसू' के संस्कार हिन्दीवालों के संस्कार नहीं बन सके और लोग उसे रहस्यमयी कविता समझने लगे।

(५) नये प्रयोग हिन्दी के नये शब्दों और मुहावरों के गुम्फन के रूप में—

जैसे पुरइन, किनके, पाली, आँसू से गीली, आँख बचा कर

(मुख मोड़ कर) पलकों का लगना (नींद का आ जाना), लूटी (लुटी हुई), तने हुए (निर्मम बने हुए), इत्यादि ।

(६) अंग्रेजी का प्रभाव

अंग्रेजी का प्रभाव भी कम नहीं है जैसे कोरी आँख निरखना Vacant eyes है; सुनहली संध्या को Golden seve समझिये । छूछा बादल Empty cloud का अनुवाद-मात्र है ।

(७) प्रतीकों का प्रयोग—प्रसाद ने लिखा है, युग की प्रतिभा युग के अनुसार अपने प्रतीक आप चुनती है । उन्होंने पहली बार नए प्रतीक चुनने का प्रयत्न यहाँ किया है । इसीलिये उनका काव्य सहज ग्राह्य नहीं हो पाता । कहीं-कहीं तो एकदम शत-प्रतिशत प्रतीकों की भाषा में ही बात कही गई है । जैसे कवि कहता है—

मेरे जीवन की उलझन
बिखरी थीं तेरी अलकें
पीली मधुमदिरा तुमने
थीं बंद हमारी पलकें

लहरों में प्यास भरी थी
थे भँवरमात्र भी खाली
मानस का सब रस पीकर
लुढ़का दी तुमने प्याली (६३, ६४)

यहाँ प्रेमिका प्रेमी के मन की सारी मदिरा (मादकता) पी लेती है । जब पात्र खाली हो जाता है, तो उसकी (जीवन) प्याली व्यर्थ बना कर लुढ़का देती है । अब प्रेमी के सामने एक महान सौन्दर्य प्रेम का समुद्र कल्लोलें करता है, परन्तु उसका रस उसके लिये नहीं है । उसे तो भँवर-भँवर ही दिखलाई पड़ते हैं । ये भँवर खाली पात्र

की तरह् लगते हैं। ये तो उसके जीवन के सूनेपन के ही प्रतीक हैं। इस प्रकार एक नई कृत्रिम प्रतीक भाषाका बराबर प्रयोग 'आँसू' को साधारण ज्ञान के धरातल से ऊँचा उठा देता है। संत-काव्य के बाद सबसे अधिक प्रतीक छायावाद प्रयोग में लाया, परन्तु फिर भी 'प्रसाद' में पुरानापन अधिक है। वही उपमाएँ, वही उत्प्रेक्षाएँ, वही अभिसार, मिलन, विरह। 'इन्दु' (१९१४) में प्रकाशित एक कविता 'खोलो द्वार' में अभिसारिका कहती है—

शिशिर कणों से लदी हुई कमली के भीगे हैं सब तार
चलता है पश्चिम का मारुत लेकर भी बरफों का भार
भीग रहा है रजनी का भी सुन्दर कोमल कबरी भार
गरम किरण सम कर से छू लो, खोलो प्रियतम खोलो द्वार
धूल लगी है काँटे जैसी पग-पग पर था दुःख अपार
किसी तरह से भूला भटका आ पहुँचा हूँ तेरे द्वार
डरो न प्रियतम धूल धूसरित होना नहीं तुम्हारा द्वार
धो डाले हैं इनको प्रियवर इन आँखो के आँसू-धार

यह रीति काव्य के 'अभिसार' को आध्यात्मिक गलियों में ले जाना हुआ। निर्गुण संतों ने भी इसी तरह अभिसार, प्रेम और विरह के आध्यात्मिक गीत गाये थे। छायावादी काव्य में प्रसाद, निराला और पंत के काव्य में यह परंपरा फिर विकसित हो गई। इस नई प्रवृत्ति ने द्विवेदीयुग के प्रसादात्मक सीधे-साधे काव्य के समकक्ष वाजिदअली शाह के रंग-महल की वह भूलभुलैयाँ खड़ी कर दी कि पाठक और समालोचक दोनों अवाक् रह गये। फल यह हुआ कि या तो इस प्रकार के नए काव्य की खिल्ली उड़ाई गई, या उसमें जीव ईश्वर-माया-प्रकृति के ऐसे ताने-बाने बुने गये कि यह काव्य इस धरातल से उठकर अमानवों के रहस्यमय क्रीड़ा-विनोद की वस्तु हो गया।

(२) वास्तव में प्रसाद ने 'आँसू' में एक ऐसी शैली विकसित कर ली है, जिसकी व्याख्या उन्होंने अपने प्रौढ़ निबंधों में की है। इस शैली में बात को वक्रता का बड़ा महत्त्व है। इसीसे 'प्रसाद' का काव्य साधारण मेधा को अग्राह्य हो जाता है। प्रसाद का कहना है—"अब प्रेमी को विश्राम कहाँ। उसका विश्राम हो गया? हैं केवल उच्छ्वास और आँसू। अब यही उसके विश्राम हैं। आँख से अविरल अश्रुधारा बहती है, निद्रा भी सपना हो गई है," परन्तु वह बात को घुमा कर कहते हैं—

उच्छ्वास और आँसू में
　　विश्राम थका सोता है
रोई आँखों में निद्रा
　　बनकर सपना होता है

इसी अटपटी भाव-भंगिमा से काव्य रहस्यगीत हो जाता है। अनेक अस्पष्ट और उच्छृङ्खल शब्दों के प्रयोग से भाषा और भी जटिल हो जाती है जैसे—

विभ्रम मदिरा से उठकर
　　आओ तममय अंतर में
पाओगे कुछ न टटोले
　　अपने बिन सूने घर में　　　(१०८)

यहाँ 'विभ्रम मदिरा' का अर्थ है—तुम सौन्दर्य हो, तुम्हें सौन्दर्य की मदिरा ने विमूर्च्छित कर दिया है। तुम क्या जानो, दूसरे के सुख-दुःख। 'अपने बिन' का अर्थ है सिवा अपने इस हृदय में किसी को नहीं पाओगे। यहाँ तो तुम्हीं हो। इस तरह बाद के छंद में—तुम तने हुए आओगे का अर्थ है कि तुम फिर भी रूठे होगे। कहीं-कहीं यह वाग्भंगिमा सांकेतिक ही छोड़ दी जाती है जैसे—

निष्ठुर जाते हो जाओ
मेरा भी कोई होगा ;
प्रत्याशा विरह निशा की
हम होंगे औ' दुख होगा (१२०)

कहना यही है कि मुझे तुम्हारी अपेक्षा नहीं। मेरा भी एक साथी है, वह है विरह-दुख। क्या तुम समझते हो, मेरा कोई साथी नहीं। यह पीड़ा में आनन्द पाने वाले प्रेमी की गर्वोक्ति है, यहाँ बात शीघ्र न खुल काव्यानंद में बाधक होती है।

(६) इस काव्य में 'प्रसाद' ने कल्पना के उच्चतम हिमालय शिखर तक पहुँचने का प्रयास किया है। कल्पनातिरेक से काव्य बोझिल हो उठा है। वह कहते हैं—

चमकूँगा धूल कणों में
सौरभ में उड़ जाऊँगा
पाऊँगा कहीं तुम्हें तो
ग्रहपथ में टकराऊँगा (११०)

'ग्रहपथ' में टकराने की बात साधारण कल्पना के परे है। इसी कल्पनातिरेक के कारण कहीं-कहीं अमूर्तभावों और मानसिक परिस्थितियों को उपमान बना लिया जाता है, जैसे—

मादकता से आये वे
संज्ञा से चले गये वे
हम व्याकुल पड़े बिलखते
थे उतरे हुए नशे वे

इसमें 'मादकता', 'संज्ञा', 'नशे का उतार' जैसी मानसिक परिस्थितियों को उपमान बनाया है जैसे तुलसी कहते हैं—

छविगृह दीपशिखा जनु बरई।

यहाँ सीता के मूर्त सौन्दर्य को अमूर्त छवि के प्रासाद में जलती

दीपशिखा से उपमा दी गई है। परन्तु प्राचीन काव्य में इस प्रकार के उदाहरण कम मिलेंगे। छायावाद काव्य में कवि की दौड़ मूर्त से अमूर्त की ओर है। प्राकृत काव्य में कवि अमूर्त से मूर्त की ओर बढ़ता है। इस पर वह अपने सूक्ष्म भावों को भी स्थूल के सहारे समझा सकता है। परन्तु इस दूसरी पद्धति से काव्य कठिन और प्रयासपूर्ण हो जाता है।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि 'आँसू' दोषपूर्ण ही है। एक नए युग की नींव डालने के कारण उसकी ऐतिहासिक महत्ता तो है ही, परन्तु इसमें भी संदेह नहीं कि वह अपने गुणों के लिये ही लोकप्रिय हुआ और ऐसे गुण द्विवेदीयुग के काव्य में मिलना कठिन था। स्वयं 'प्रसाद' ने कहाँ से आरम्भ किया, यह देखिये—

सावन आये वियोगिन के तन
आली अनंग लगे अते तावन
तावन हीय लगी अबला
तड़पै जब विज्जु छटा छवि छावन
छावन कैसे कहूँ मैं निवेदन
लगे जुगनू हिय आग लगावन
गावन लागे मयूर 'कलाधर'
झांपि कै मेघ लगे बरसावन

(भारतेन्दु, जुलाई १६०६)

यह कविता जिसमें ४ रोला और १ सवैया है, 'सावन-पंचक' के नाम से उस समय प्रकाशित हुई थी, जब प्रसाद 'कलाधर' नाम से लिखते थे। परन्तु काव्य में नवीन प्रभाव तभी आने लगे थे। 'भारतेन्दु' की इसी संख्या में कालीशंकर व्यास ने लांगफैलो (अमेरीकन कवि) की 'द लेडर ऑफ सेंट ऑगस्टिन (The Ladder of St. Augustine) कविता का अनुवाद छपा है।

बीस वर्ष बाद ही 'प्रसाद' पूर्व और पश्चिम के सारे काव्य को आत्मसात कर 'आँसू' जैसी मौलिक चीज दे सके, इसका कितना बड़ा श्रेय उनकी प्रतिभा को मिलना चाहिये यह कहना कठिन है। जहाँ आरम्भ यह है, वहाँ परिस्थिति देखिये। 'निद्रा' का संबोधन कर 'प्रसाद' कहते हैं—

तुम स्पर्शहीन अनुभव-सी
नंदनतमाल के तल से
जग छा दो श्याम लता सी
तंद्रा पल्लव विह्वल से

यहाँ निद्रा स्वर्ग की बेलि है। नंदनतमाल के नीचे उगी है। तमाल कृष्णवर्ण है। अतः वह भी काली है 'तंद्रा' उसके पल्लव हैं। निद्रा स्वर्गीय है। पृथ्वी की वस्तु नहीं। यही मंतव्य है। इसे किस खूबी से प्रसाद व्यक्त करते हैं। परन्तु साथ ही साथ प्रसाद उसके सुख की इंद्रियातीतता की ओर भी इंगित करते हैं। निद्रा का सुख 'स्पर्शहीन अनुभव' मात्र है। सौन्दर्य के चित्र के साथ मनःस्तत्त्व का कितना सुन्दर गठबन्धन। मूर्तिमत्ता के प्रयोग तो अद्भुत हैं। प्रसाद की कल्पना की आँख अनुभूति के तल से उठ कर अमूर्त्त भावों और अवस्थाओं को भी साकार कर लेती है। 'वेदना' के लिए—

वेदना विकल फिर आई
मेरी चौदहों भुवन में

विरह दुःख की तीव्रता और व्यापकता का चित्र है—

यह पारावार तरल हो
फेनिल हो गरल उगलता
मथ डाला किस तृष्णा से
तल में वड़वानल जलता (७६)

यहाँ वही चित्र उपस्थित हो जाता है जिसे पंत ने

शत शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर

में प्रगट किया है।

जहाँ अत्यन्त सीधी-सादी, स्निग्ध, प्रसादपूर्ण पंक्तियाँ हैं, जैसे

शीतल समीर आता है
कर पावन परस तुम्हारा
मैं सिहर उठा करता हूँ
बरसा कर आँसू-धारा (६८)

वहाँ कल्पना ऐश्वर्य से अतिरंजित चित्र भी हैं जो काव्य को एक विशेष वर्गगत संस्कार में बाँध देते हैं—

मुरली मुखरित होती थी
मुकुलों के अधर विहँसते
मकरंद भार से दब कर
श्रवणों में स्वर जा बसते (७२)

जो हो, 'प्रसाद' की सारी दुर्बलता और उनकी सारी शक्ति 'आँसू' में स्पष्ट हैं। 'कामायिनी' के रहते हुए भी 'आँसू' ही प्रसाद के व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करता है।

'आँसू' के आलोचकों ने प्रसाद के मनःस्तत्त्व को न समझते हुए उसकी कई प्रकार की व्याख्याएँ की हैं :

(१) "आँसू ऐश्वर्यमय अतीत का क्रन्दन है।"

(२) "आँसू प्रेम-विरह-मूलक सांकेतिक काव्य है।"

(३) "आँसू जीवात्मा-परमात्मा के संबन्ध का व्यंजक अध्यात्म काव्य है।"

(४) "आँसू विशेष वाग्भंगिमा-प्रधान काव्य है।"

इस प्रकार की चार स्थापनाएँ इस संबन्ध में चल रही हैं। वास्तव में प्रसाद ने काव्य के रूप-रंग में इतना परिवर्तन कर दिया है कि नए संस्करण (१९३३) में उसका पुराना (१९२५ के संस्करण) वाला

रूप छिप गया है। इसमें तो संदेह नहीं कि आँसू की प्रेरणा लौकिक प्रेम और विरह है। अध्यात्म से उसका संबन्ध पहले संस्करण में नहीं जुड़ पाया था। कवि ने किसी से प्रेम किया था, और उस सौन्दर्य पुत्तलिका के नख-शिख के वर्णन भी मिलते हैं। ऐसी अवस्था में उसे किसी भी प्रकार आध्यात्मिक या रहस्यवादी काव्य नहीं कहा जा सकता। यह भी संभव है कि 'आँसू' में प्रसाद की ऐश्वर्यप्रधान मूर्त्तिमत्ता ऐश्वर्यमय अतीत का क्रंदन हो। प्रसाद उस समय तक उतार-चढ़ाव देख रहे थे। उनके लिये प्रेम की असफलता ऐश्वर्य के नाश का प्रतीक बन गई हो, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। परन्तु जो बात 'आँसू' में विशेष आकर्षक है, वह है उसकी वाग्भंगिमा। 'झरना' में ही प्रसाद ने एक विशिष्ट काव्य-शैली ग्रहण कर ली थी। 'आँसू' इसी विशिष्ट शैली का विकास मात्र है। "छायावाद" शीर्षक एक निबंध में उन्होंने इस शैली की विशेष व्याख्या उपस्थित की है। कदाचित् 'आँसू' को ही ध्यान में रख कर वे कहते हैं:

"बाह्य उपाधि से हटकर अन्तरहेतु की ओर कविकर्म प्रेरित हुआ। इस नये प्रकार की अभिव्यक्ति के लिये जिन शब्दों की योजना हुई, हिन्दी में वे पहले कम समझे जाते थे; किन्तु शब्दों में भिन्न प्रयोग से एक स्वतंत्र अर्थ उत्पन्न करने की शक्ति है। समीप के शब्द भी उस शब्द विशेष का नवीन अर्थ द्योतन करने में सहायक होते हैं। भाषा के निर्माण में शब्दों के इस व्यवहार का बड़ा हाथ होता है। अर्थबोध व्यवहार पर निर्भर करता है, शब्दशास्त्र में पर्यायवाची तथा अनेकार्थवाची शब्द इसके प्रमाण हैं। इसी अर्थ-चमत्कार का महात्म्य है कि कवि की वाणी में अविद्या से विलक्षण अर्थ साहित्य में मान्य हुए। ध्वनिकार ने इसी पर कहा है—

प्रतीममानं पुनरन्यदेववस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।

अभिव्यक्ति का यह निराला ढंग अपना स्वतंत्र लावण्य रखता है। इसके लिये प्राचीनों ने कहा है—

> मुक्ताफलेषुच्छायायास्तरलत्वमिवान्तरा
> प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते।

मोती के भीतर छाया की जैसी तरलता होती है वैसे ही कान्ति की तरलता अंग में लावण्य कही जाती है। इस लावण्य को संस्कृत साहित्य में छाया और विच्छित्ति के द्वारा कुछ लोगों निरूपित किया था। कुन्तक ने वक्रोक्तिजीवित में कहा है—

> प्रतिभाप्रथमोद्भेद समये यत्र वक्रता
> शब्दाभिधेययोरन्तः स्फुरतीव विभाव्यते।

शब्द और अर्थ की यह स्वाभाविक वक्रता विच्छित्ति, छाया और कांति का सृजन करती है। इसके वैचित्र्य का सृजन करना विदग्ध कवि का ही काम है।"

'प्रसाद' ऐसे ही विदग्ध कवि हैं। 'आँसू' में हम उन्हें सहज कवि के रूप में नहीं देखते। अतः 'आँसू' की परख सहज काव्य के आधार पर नहीं होनी चाहिये। छायावाद काव्य में प्रसाद ने कई उपकरण माने हैं :

(१) शब्दों के नवीन सार्थक प्रयोग,

(२) (छायामयी वक्रता के लिये) सर्वनामों का सुन्दर प्रयोग, जैसे 'वे आँखें कुछ कहती हैं' 'ये' 'वे'।

(३) वैदग्ध्यभंगी (शब्द और अर्थ की वक्रता) जिसके द्वारा अर्थवैचित्र्य और चमत्कार की सृष्टि हो।

(४) आन्तरसारूप्य-प्रधान उपमाओं का प्रयोग। अलंकार के भीतर आने पर भी ये उपमायें उनसे कुछ अधिक हैं।

इस प्रका [illegible] ू' एक नितान्त नया काव्य है। ध्वनि, लक्षणा-व्यंजना [illegible] प्रतीक विधान, उपचार-वक्रता और स्वानु-

भूति से पूर्ण यह काव्य अपने ढंग का अनोखा है। 'प्रसाद' ने प्राचीनों का सहारा लेकर इस नई काव्यशैली को प्राचीन मान्यता देने का प्रयत्न किया है। वह ऐसा नहीं करते, तो भी कोई हानि नहीं थी। प्राचीनों का सहारा न पाकर कोई काव्य छोटा नहीं हो जाता।

आधुनिक काव्य के संबंध में 'प्रसाद' कहते हैं: "प्राचीन साहित्य में यह छायावाद अपना स्थान बना चुका है। हिन्दी में जब इस तरह के प्रयोग आरम्भ हुए तो कुछ लोग चौंके सही, परन्तु विरोध करने पर भी अभिव्यक्ति के इस ढंग को ग्रहण करना पड़ा। कहना न होगा कि ये अनुभूतिमय आत्मस्पर्श काव्य-जगत् के लिये अत्यंत आवश्यक थे। काकु या श्लेष की तरह यह सीधी वक्रोक्ति न थी। बाह्य से हट कर काव्य की प्रवृत्ति आन्तर की ओर चल पड़ी थी।"

यही नवीन अभिव्यक्ति आज भी पाठक और कवि के बीच में एक बड़ी बाधा के रूप में खड़ी हो जाती है। इसीसे 'आँसू' पर अस्पष्टता का लांछन लगाया जाता है। वास्तव में, 'आँसू' की अस्पष्टता इसी लिये है कि पाठक नई काव्य-कला से परिचित नहीं हो सका है।

इसी से नीचे हमने 'आँसू' के छन्दों की सहज टीका उपस्थित की है। इससे 'प्रसाद' की वाग्भंगिमा का पता चलेगा और उनके काव्य रस को सरलता से ग्रहण किया जा सकेगा, ऐसी आशा है। आधार १९२५ वाला संस्करण है। यहाँ हमें 'प्रसाद' के प्रकृत रूप के दर्शन होते हैं। इस संस्करण का ऐतिहासिक महत्त्व भी कम नहीं है।

अभिव्यक्ति का यह निराला ढंग अपना स्वतंत्र लावण्य रखता है। इसके लिये प्राचीनों ने कहा है—

मुक्ताफलेषुच्छायायास्तरलत्वमिवान्तरा
प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते।

मोती के भीतर छाया की जैसी तरलता होती है वैसे ही कान्ति की तरलता अंग में लावण्य कही जाती है। इस लावण्य को संस्कृत साहित्य में छाया और विच्छित्ति के द्वारा कुछ लोगों ने निरूपित किया था। कुन्तक ने वक्रोक्तिजीवित में कहा है—

प्रतिभाप्रथमोद्भेद समये यत्र वक्रता
शब्दाभिधेययोरन्तः स्फुरतीव विभाव्यते।

शब्द और अर्थ की यह स्वाभाविक वक्रता विच्छित्ति, छाया और क्रांति का सृजन करती है। इसके वैचित्र्य का सृजन करना विदग्ध कवि का ही काम है।"

'प्रसाद' ऐसे ही विदग्ध कवि हैं। 'आँसू' में हम उन्हें सहज कवि के रूप में नहीं देखते। अतः 'आँसू' की परख सहज काव्य के आधार पर नहीं होनी चाहिये। छायावाद काव्य में प्रसाद ने कई उपकरण माने हैं :

(१) शब्दों के नवीन सार्थक प्रयोग,

(२) (छायामयी वक्रता के लिये) सर्वनामों का सुन्दर प्रयोग, जैसे 'वे आँखें कुछ कहती हैं' 'ये' 'वे'।

(३) वैदग्ध्यभंगी (शब्द और अर्थ की वक्रता) जिसके द्वारा अर्थवैचित्र्य और चमत्कार की सृष्टि हो।

(४) आन्तरसारूप्य-प्रधान उपमाओं का प्रयोग। अलंकार के भीतर आने पर भी ये उपमायें उनसे कुछ अधिक हैं।

इस प्रकार 'आँसू' एक नितान्त नया काव्य है। ध्वनि, लक्षणा-व्यंजना, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान, उपचार-वक्रता और स्वानु-

भूति से पूर्ण यह काव्य अपने ढंग का अनोखा है। 'प्रसाद' ने प्राचीनों का सहारा लेकर इस नई काव्यशैली को प्राचीन मान्यता देने का प्रयत्न किया है। वह ऐसा नहीं करते, तो भी कोई हानि नहीं थी। प्राचीनों का सहारा न पाकर कोई काव्य छोटा नहीं हो जाता।

आधुनिक काव्य के संबंध में 'प्रसाद' कहते हैं: "प्राचीन साहित्य में यह छायावाद अपना स्थान बना चुका है। हिन्दी में जब इस तरह के प्रयोग आरम्भ हुए तो कुछ लोग चौंके सही, परन्तु विरोध करने पर भी अभिव्यक्ति के इस ढंग को ग्रहण करना पड़ा। कहना न होगा कि ये अनुभूतिमय आत्मस्पर्श काव्य-जगत् के लिये अत्यंत आवश्यक थे। काकु या श्लेष की तरह यह सीधी वक्रोक्ति न थी। बाह्य से हट कर काव्य की प्रवृत्ति आन्तर की ओर चल पड़ी थी।"

यही नवीन अभिव्यक्ति आज भी पाठक और कवि के बीच में एक बड़ी बाधा के रूप में खड़ी हो जाती है। इसीसे 'आँसू' पर अस्पष्टता का लांछन लगाया जाता है। वास्तव में, 'आँसू' की अस्पष्टता इसी लिये है कि पाठक नई काव्य-कला से परिचित नहीं हो सका है।

इसी से नीचे हमने 'आँसू' के छन्दों की सहज टीका उपस्थित की है। इससे 'प्रसाद' की वाग्भंगिमा का पता चलेगा और उनके काव्य रस को सरलता से ग्रहण किया जा सकेगा, ऐसी आशा है। आधार १९२५ वाला संस्करण है। यहाँ हमें 'प्रसाद' के प्रकृत रूप के दर्शन होते हैं। इस संस्करण का ऐतिहासिक महत्त्व भी कम नहीं है।

१९२५ के पहले संस्करण के आधार पर 'आँसू' के छंदों की सहज टीका

१

अपने दुःख की तीव्रता और अगाधता से कवि चकित है

करुणा से भरे हुए (सुन्दर) इस हृदय में वेदना का उद्रेक कैसा ? कैसी करुण रागिनी बज रही है। जान पड़ता है, हृदय असीम समुद्र हो गया है और वेदना की झंझा उसमें हाहाकार उठा रही है।

२

परन्तु आश्चर्य इस भयंकर दुख में भी पुरानी बातों की स्मृति सुख भर देती है।

फिर भी मन-रूपी समुद्र में सुन्दर लहरें कभी-कभी उठ आती हैं! वे पिछले दिनों की मीठी बातें सुनाती हैं चुपके-चुपके ? ऐसा क्यों है ?

३

इस बीते सुख के लिए क्रन्दन व्यर्थ है।

(परन्तु उन बीते दिनों को मैं लौटा नहीं सकता)। मैं चिल्ला उठता हूँ। मेरी प्रतिध्वनि सूने क्षितिज से टकरा कर (व्यर्थ) लौट आती है। वह भी मेरी तरह विशृङ्खल और पागल हो जाती है।

४

प्रकृति में दुखों का आक्षेप

(कवि को अस्तित्व ही दुखमय जान पड़ता है)। मेरे अस्तित्व में दुःख

(साथ ही पुरातन स्मृतियों की मिठास) की तुमुल क्रीड़ा होती है (लहरें उठती हैं) । यह आकाशगंगा जैसी असीम है, वैसी ही मेरी अस्तित्व की नदी है, वैसी ही निष्फल, व्यथित सी ।

५

(प्राकृतिक व्यापार भी उसे प्राकृतिक नहीं लगते) । जान पड़ता है, उषा मेरे दुख में रोती है। संध्या मेरे स्वर्ण सुखों पर ढकती आती है निराशा की अलकें । (मेरे प्रात:सायं प्रकृतिरस से हीन, दुखी पल मात्र हैं ।

६

जान पड़ता है, पिछले सुख के छूटने की पीड़ा जो मन में वर्षों से एकत्रित हो रही है, आज सघन होकर आँसू के रूप में बस रही है ।

सुख स्मृति से ही दु:ख है ।

७

हृदय में आग जलती है, परन्तु यह आग प्रगट नहीं होती, इसलिए अधिक दु:ख देती है । आँसू इसे और उत्तेजित करते हैं। मेरा जीता रहना इसे और भी भड़का देता है (इस आग को और तीव्रता दे देता है ।)

इसने मेरा जीवन यों ही असार्थक बना दिया है ।

८

बेकार साँसों का बोझ ढो रहा हूँ। मेरा सुख आहत है। उमंगें शांत हैं। यह हृदय समाधि बन गया। स्वयं करुणा इस समाधि पर रोती है।

अब जीवन का व्यर्थ भार ढोता हूँ।

९

इसी हृदय में स्मृतियों की एक बस्ती बस गई है। जैसे इस नीले (अंधकार-पूर्ण) आकाश में असंख्य तारे हों।

ये सुख स्मृतियाँ इतनी अधिक हैं जितने आकाश के तारे।

१०

ये तारे नहीं, मेरे जलने से जो चिनगारियाँ निकलती हैं, वे हैं। इस अग्नि में तपना ही तुम्हारा मिलना था। इसके शेष चिह्न ये जलते स्फुलिंग रह गए हैं।

११

चातक की पुकार पर मुझे आश्चर्य होता है। श्यामा की ध्वनि मीठी लगती है। परन्तु इनमें तो दुःख और आँसू भरी मेरी कथा का अंशमात्र ही प्रकाशित हुआ है।

प्रसिद्ध उपमानों के द्वारा कवि बताता है कि श्यामा और चातक से उसका दुःख कहीं अधिक है।

१२

कौन सुनेगा, मेरी दुःख-गाथा ? किसे है फुरसत ? वे जो सुख में विभोर हैं ? वे जिनकी कथाओं ने धीरे-धीरे उन्हें असंवेदनाशील बना दिया है।

उसका दुःख उसके अपने सहने की चीज है।

१३

जो शाम को अपनी गुलाबी मदिरा में मस्त हैं, वे दूसरों के कठोर जीवन की दुःख-पूर्ण घड़ियों की बात क्या सुनना चाहेंगे ?

१४

(एक हमारी संध्या है) । जब शाम होती है, कंज बंद हो जाते हैं। संध्या हमारे लिए सुनहली (रंगीन) नहीं हो पाती । धुँधली रहती है । फिर भी आशा बनी ही रहती है । ऐसे समय हम एक-एक घड़ी (सुखस्मृति) को याद करके रोते हैं ।

कमल संकुचित हो गया, अलि बाहर ही रह गया, यह उसकी निठुरता थी । प्रेमिका ने प्रेमी के प्रेम का बदला नहीं दिया ।

१५

अब हृदय को सूना पाकर संसार का सारा दुःख आकर यहाँ भर गया है । बादल उमड़ आये हैं। बिजली कड़क रही है। आँधी चल रही है। घन-गर्जन है ।

दुखद प्राकृतिक उपादानों को संधन ।

१६

अभिलाषाएँ अब भी करवटें बदलती हैं (विरक्ति नहीं है) । सोती हुई व्यथा जाग जाती है । सुख सपना है । रोते-रोते सो जाता हूँ ।

अब यह दशा है

१७

यह हृदय अलकों के जाल में फँस जाता है (उसकी याद करता है)। आँसू झरने लगते हैं। वे निःश्वास में मिल जाते हैं।

१८

उनकी वह सुख-स्मृति

यह स्मृति भी क्या मादक थी, क्या मोहमयी। क्षण भर मन अवश्य बहल जाता था। परन्तु हृदय दुःख से (मधुर पीड़ा से) हिल जाता था।

१९

कुछ कहा नहीं जाता। जैसे योगी की जटा बराबर बढ़ती जाय, वैसे जीवन की समस्या बढ़ती जा रही है। यह किसकी प्रेम की विभूति है जो हृदय सूना हो गया है, एकदम बीहड़।

२०

मेरा हृदय कोमल नवनीत था। (स्नेह बनकर) वह तो जल गया। अब धूम्र-रेखा (कज्जल) शेष है। अंधकार ही अंधकार है।

२१

प्रेमभाव के नष्ट होने पर कवि आश्चर्य करता है।

अब तो किंजल्क बिखर गया। पराग सूख गया। मन में प्रेम का कमल जो विकसित था, वह कैसे सूख गया, बड़ा आश्चर्य है।

२२

अब तो वे कृपा नहीं करते ! क्यों फिर गई है उनकी कृपाकटाक्ष ? वे ही तो थीं मलय की हिलोरें। क्षण भर हमें छूकर कहाँ छिप गईं।

२३

इस प्रेम-सिंधु से तृप्ति कब हुई है ? रूप देखता रहा, परन्तु मन कहाँ भरा (जैसे प्रेमसागर में भीतर-भीतर वाड़वा-नल दहक रहा हो और पानी में रहकर भी मछली अतृप्त रह जाय।

प्रेमी की अतृप्तता

२४

मुरली चुप है। कलरव चुप। अलि मौन। हृदय अंधकार में था। प्रेम की यमुना चुपचाप अवश्य बहे जाती थी।

प्रेम में अब वह बात नहीं रही

२५

मैं तो उस शिरीष कुसुम-सा हो गया जो वसंत रजनी के पिछले पहरों में खिले और प्रभात होते ही धूल में मिल जाये।

२६

उस (झरे शिरीष) के व्यापक दुःख के प्रति मलय पवन भी (विरह रूपी नदी के तीर) सहवेदना की साँस छोड़ जाता है।

२७

स्मृति की पीड़ा

उस मृदुल चरणों का ध्यान भी दुखद है। हृदय के छाले फूट जाते हैं। आँसू बह-बहकर रह जाते हैं।

२८

ये आँसू सिंधु के बुलबुले हैं। टूटे हुए तारे। अब तो आकाश बाल बिखेरे हुए स्त्री की तरह दुखी है। पृथ्वी का सौन्दर्य जैसे लुटा हुआ।

२९

यह तो हमारी अबोधता थी। अकिंचनता थी, विसुधपन था, कि हम अपने इस दुःख को लेकर, पीड़ा को लेकर, दूसरे के दुःख को ललकारने चले।

३०

कभी ऐसा था

तब मन में मिलन (सुख) और संभाव्य वियोग (दुःख) दोनों ऐसे मिले सो रहे थे जैसे मालती कुंज में चंद्रिका ऊँघती हो।

३१

तब असीम आकाश में इन्द्रधनुष की लहरें थीं। तारे हँसते थे।

३२

अब है नीचे धरती जो दुःख का भार ढोती है और रो-राकर करुणा के समुद्र को भरती है।

३३

तब मैं स्वयम् को भूल गया था। मन में मादकता भरी थी। बेसुधी की। कल्पना थी। सपना था। जैसे निर्जन में मुरली बजती हो।

तब और अब

३४

तब मैं मुग्ध था, अल्हड़ था, तुम पर बलि होता था, इठलाता था। हृदय-वीणा के तार खिंचे थे। ऊँची झंकार उठती थी।

३५

अब प्रभात में उषा की लाली प्रिय के मिलन का संदेश नहीं लाती। लाती है पीलापन (वेदना)। शून्य दृष्टि से ताकता रहता हूँ तुम्हारा पथ रात भर। प्रातः होते सो जाता हूँ थका हुआ।

३६

मैं तो अब खाली जलशून्य बीच हूँ। धरती का अंचल आँसू मोती भरता हूँ, परन्तु मोती कितने हैं।

३७

तब जब हम संध्या के समय मिलते थे, पूर्णिमा की हेय किरणें उसे आलोकित करती थीं। तब यह संभाव्य वियोग की बात क्या हम जानते थे ?

३८

अब संध्या आती है, तो तुम्हारी प्रतीक्षा लिये न जाने क्या मनमानी सोचता हूँ। उषा आती है तो यह आशा निराशा में बदल जाती है। कहानी का अंत हो जाता है।

३९

कितनी एकांत रातें तुम्हारी प्रतीक्षा में तारे गिनते बीती हैं। तुम्हें उपहार के रूप में तारों के दीप जला-जला कर स्वर्गंजा की धारा के भेंट करता रहा हूँ।

४०

तब तुम शशिमुख को घूँघट में छिपाए, हृदय में प्रेम लिए, जब मेरा जीवन विरस होने लगा था, सहसा आ गई। तुम्हारे इस अप्रत्याशित आगमन पर मुझे आश्चर्य हुआ।

४१

अब तुम्हारी वह मूर्त्ति अभिलाषा बन गई है। (तुम्हारे मिलन की आशा

मात्र है अब)। अब वह मूर्त्ति कामना-कला का सबसे सुन्दर विलास-मात्र है ।

४२

अब उसी (काल्पनिक) मूर्त्ति से मन बहलाता हूँ। प्रतिभा अपने भण्डार से उस छवि को सजाने के लिए सुन्दरतम मुक्ता दान करती है ।

४३-४४

आँखों में अब तक यह सुछवि बस गई है। वह तो सजीव प्रतिमा है। बादल में जैसे बिजली। बिजली में जैसे तड़प। वह अब मेरे अत्यंत निकट रहती है जैसे आँखों में पुतली और पुतली में श्यामलता । तुम्हारी छवि की रेखा अनोखी थी। हृदय पर इसका अब भी अधिकार है ।

४५

तब हृदय में पतझार था। फुलवारी सूख गई थी। तुम आए। मेरा हृदय नंदित नंदित हो गया। क्यारियाँ हँसने लगीं ।

४६

माधवी-कुंजों में प्रेम का अमृत-निर्झर झरने लगा। तुम्हारी मोहिनी

छवि की माया में मंत्र से जैसे मुग्ध हो,
मेरी चेतना बेसुध बहने लगी।

४७

सौन्दर्य की अपार राशि थीं तुम। लावण्य-शैल भी तुम्हारे ऊपर राई की भाँति छोटा होकर न्यौछावर था। कैसी कला थी? क्या प्यारी छवि थी?

४८

यह अलकों में घिरा हुआ मुख। इन काली शृंखलाओं में चन्द्रमा को किसने बाँध रखा था। तुम्हारी वेणी में रत्न गुँथे थे मुझे आश्चर्य हुआ कि जिन सर्पों के पास मणि है, वह हीरों को क्यों मुँह में भरे हैं।

४६

नखशिख

तुम्हारी आँखों में जीवन के मद की लाली थी। जैसे नीलम की प्याली में किसी ने लाल मदिरा भर दी हो।

५०

या समुद्र में नीलम की नाव तैरती हो। अञ्जन-रेखा जैसे समुद्र तट है। पुतली नीलम की नाव।

५१

तुम्हारे पलकों ने न जाने कितने हृदयों को घायल कर दिया। तुम्हारी

इन्हीं। सुन्दर पलकों ने तूलिका बनकर न जाने कितने घायलों के चित्र बना दिये।

५२

तुम्हारे स्वस्थ कपोलों पर मुस्कान की हलकी भोली रेखा। तुम्हारी भौं के संकोच में छिपी थी कुटिलता।

५३

होंठ तुम्हारे विद्रुम। सीपी-संपुट। दाँत मोती की पाँत। तुम्हारी नासिका शुक। यह हंस नहीं है, मोती के दाने ऐसे क्यों रखे गये हैं जैसे उन्हें चुगने के लिए रखा हो।

५४

तुम्हारी हँसी इतनी मोहक है कि प्रभात-कालीन खिला हुआ कमल वन भी लज्जित हो जाये।

५५

तुम्हारे कान किसलय-पत्र। दूसरे के दुःख की बात तुम सुनते हो। वह तो जलबिन्दु की तरह आप ढुलक जाती है।

५६

तुम्हारी बाहुलाएँ अनंत के धनु-की दो-दो (दुहरी) शिंजिनी (प्रत्यंचा) हैं या तन रूपी सरोवर की दो लहरें।

६८

अब तुम दूर हो। तुम्हारा पावन स्पर्श कर शीतल समीर आता है। मैं आँसू की धारा बहा कर सिरह जाता हूँ।

६९

कैसे थे वे दिन मिलन के! अब मैं आलिंगन (-कुंभ) की मदिरा पीता था। तुम्हारी निःश्वासों के झोंके जैसे मलय क्रीड़ा कर रहे हों। सुबह जाग कर तुम्हें ही देखता था मित्र।

७०

रात बीत जाती थी। तुम्हारा मुख मेरी गोदी में रहता। तब आकाश में तारे छिटके होते जैसे अंबरपट पर मिलन- रोमांच के स्वेदकण।

७१

प्रिय-मिलन के अवसर पर वसंत का वर्णन

पत्तों में छिपे किसलय प्रेम से रोमांचित हो कंपित हो जाते। डालियाँ आलिंगन में बँधी होतीं। वे प्रसन्न हो फूलों को चूमतीं। भौंरे तान छेड़ते।

७२

तब (मिलन-) मुरली बज उठती। मुकुल खिल जाते। मकरन्द भार से पवन मन्थर हो जाती। उस भार से दब

कर (कोकिला के) स्वर कर्णगुहर में प्रवेश करते ।

७३

जब तुम्हें पहले-पहल देखा था, तब वसंत की पूर्णिमा थी। लगा, तुम न जाने कब से परिचित हो।

७४

तुमसे परिचय हो क्यों ! जैसे चंद्रमा और समुद्र का परिचय ! कहाँ आकाशचारी किरणें, कहाँ पृथ्वी पर समुद्र, परन्तु किरणें ऊपर से आ लहरों के गले लग जाती हैं। इसी तरह अप्रत्याशित था हमारा-तुम्हारा मिलन।

७५

तब हृदय में कामना का समुद्र तुम्हारी छवि की पूर्णिमा में लहराता था। तुम्हारी परछाईं जैसे रत्नराशि हो, अमूल्य निधि !

७६

अब यह समुद्र फेनिल है, आग उगल रहा है। किस तृष्णा ने इसे मथ डाला ? कौन-सा वाड़व इसके तल में जल रहा है।

७७

अरे नहीं, समुद्र तो सूख गया। मेरे मन की नौका सूखी सिकता में पड़ी रह

गई। प्रेम ने जो आँसू की धारा बहाई तो बिना रज्जु की यह नौका अकूल, अदेश बह चली।

७८

देखा मैंने, नाविक (प्रिय!) (निराशा का) अंधकारपूर्ण समुद्र है। उसमें मेरी (गुण-हीन) नाव (निर्बंध) तिर रही है। लगता है, अब किनारा लगा, अब तट लगा। तुम्हारी मुख छवि का आकर्षण उसे बराबर (आशा) तट की ओर खींचता।

७९

परन्तु हम परतंत्र (सौन्दर्य के सहारे ही सही) जीवन में क्या रखा है? केवल ममता जागती थी। तुम्हारी प्रेमज्योति हृदय में जलती थी।

८०

तुम जैसे मेरे हृदय के चंद्रमा हो। तुम्हारी शीतल किरणें भर पाता हूँ (स्मृति के सहारे) परन्तु अंगारे (विरह) चुगता हूँ चकोर की तरह। देखी यह सौन्दर्य-प्रेम की माया। बलिहारी मैं।

८१

आश्चर्य है मुझे! मेरे कठोर हृदय को भी (जो हीरे जैसा कठोर था)

शिरीष-जैसे कोमल तुम्हारे सौन्दर्य ने कुचल डाला। आश्चर्य है, प्रेम को तो हिमवत् शीतल कहते हैं। तुम्हारे प्रेम ने विरह से मुझे जला डाला, जैसे अग्नि ने।

८२

मैं तो पतंग हो गया। जलना ही मेरा संबल रह गया है। उसे ही लेकर (दीपक जैसे) तुमसे मिलता हूँ। जल जाता हूँ, तो प्रसन्न हो जाता हूँ, फूल-समान खिल जाता हूँ।

८३

अनंत आकाश के समान मेरे हृदय में चंचल बिजली की तरह आकर अब चले गये, रह गई इन्द्रधनुष की झाँई भर।

८४

परन्तु वह तुम्हारा (विद्युत-प्रेम) रंग तो अब छुटता नहीं। ऐसा रँग गया है यह हृदय! अनोखा रंग है। आँसू से और निखरता है।

८५

इस संसार को मुझ जैसे व्यथित की क्या गणना? यहाँ सुख है, दुःख है। सुख-दुःख के उत्थान-पतन को झेल कर

गई। प्रेम ने जो आँसू की धारा वहाई तो बिना रज्जु की यह नौका अकूल, अदेश वह चली।

७८

देखा मैंने, नाविक (प्रिय!) (निराशा का) अंधकारपूर्ण समुद्र है। उसमें मेरी (गुण-हीन) नाव (निर्बंध) तिर रही है। लगता है, अब किनारा लगा, अब तट लगा। तुम्हारी मुख छवि का आकर्षण उसे बराबर (आशा) तट की ओर खींचता।

७९

परन्तु हम परतंत्र (सौन्दर्य के सहारे ही सही) जीवन में क्या रखा है? केवल ममता जागती थी। तुम्हारी प्रेमज्योति हृदय में जलती थी।

८०

तुम जैसे मेरे हृदय के चंद्रमा हो। तुम्हारी शीतल किरणें भर पाता हूँ (स्मृति के सहारे) परन्तु अंगारे (विरह) चुगता हूँ चकोर की तरह। देखी यह सौन्दर्य-प्रेम की माया। बलिहारी मैं।

८१

आश्चर्य है मुझे! मेरे कठोर हृदय को भी (जो हीरे जैसा कठोर था)

शिरीष-जैसे कोमल तुम्हारे सौन्दर्य ने कुचल डाला। आश्चर्य है, प्रेम को तो हिमवत् शीतल कहते हैं। तुम्हारे प्रेम ने विरह से मुझे जला डाला, जैसे अग्नि ने।

८२

मैं तो पतंग हो गया। जलना ही मेरा संबल रह गया है। उसे ही लेकर (दीपक जैसे) तुमसे मिलता हूँ। जल जाता हूँ, तो प्रसन्न हो जाता हूँ, फूल-समान खिल जाता हूँ।

८३

अनंत आकाश के समान मेरे हृदय में चंचल बिजली की तरह आकर अब चले गये, रह गई इन्द्रधनुष की झाँई भर।

८४

परन्तु वह तुम्हारा (विद्युत - प्रेम) रंग तो अब छुटता नहीं। ऐसा रँग गया है यह हृदय! अनोखा रंग है। आँसू से और निखरता है।

८५

इस संसार को मुझ जैसे व्यथित की क्या गणना? यहाँ सुख है, दुःख है। सुख-दुःख के उत्थान-पतन को झेल कर

यह नष्ट भी हो जायगा। वह क्यों मुड़कर देखे, किसका हित-अनहित होता है।

८६

यहाँ तो पृथ्वी में दुःख ही दुःख है। (पृथ्वी माँगती है दुःख, और दुःख !) मनुष्य का जो सुख है, वह दैव (आकाश) छीन लेता है। मैंने तो अपने को ही पृथ्वी-आकाश को दे डाला (मैं मूर्त्तिमान दुःख हूँ)। अब तुम्हारा सुख देख रहा हूँ कि तुम क्या कहते हो ?

८७

इतना बहुत था सुख ! कैसे समाता इस पृथ्वी-आकाश के बीच, इस जल-थल में। तुमने आश्वासन दिया। छल से उसे मुट्ठी में बन्द कर लिया।

८८

तुम्हें मेरे सुख में कम दुःख था जो मुझे छला। मुट्ठी में भर कर यों भाग गये। जैसे नींद में कोई चुंबन ले ले। अभी सुख मिला भी कितना था—जैसे सोता हुआ चुंबन के सुख से सिहर भर जाये।

८९

क्षण भर में इतना सुख लेकर तुम मेरे जीवन के बीच से चले गये। अब ये प्राण विकल हो रोते हैं।

६०

तुम्हारे रहते तो मैं मृत्यु को सुख मान लेता। तुम्हारे रहते मृत्यु भी नहीं आई, इसका दुःख था। वही मृत्यु अब वेदना भरी तड़पाती है, जैसे बादलों में बार-बार बिजली कौंधती हो।

६१

यह मायावी छल सौन्दर्य के परदे पर आकर बीन बजाता है। हम मुग्ध हो जाते हैं। यह आश्चर्य-भरी संध्या के अंचल में अपना छल (माया=कौतुक) भर जाता है।

जीवन-मृत्यु - मय रहस्य दर्शन

६२

काल (समय) के काले पट पर अस्पष्ट कुछ निष्ठुर (कठोर) रेखाएं पड़ी रह जाती हैं। सुख-दुःख की जीवन-रेखा यहीं निःसार पड़ी रहती है।

६३

तुम्हारी अलकों के सौन्दर्य में मेरा जीवन फँस गया। जब मैं विसुध, असतर्क, अपलक था, तब किसने मेरी जीवन-मदिरा पी ली।

६४

अब कामना की प्यासी लहर मन में उठ रही है। (जीवन के आवर्त्त-विवर्त्त)

जीवन के आवर्त्त-विवर्त्त

भँवर नहीं हैं, खाली पात्र हैं, सूने प्याले! ये तो उलटी थालियाँ हैं, जो तुमने मेरे जीवन (मन) का मधु पीकर लुढ़का दी हैं।

९५

वसंत की मालती कोमल पत्रों के उपधान के सहारे सोती है। मैं व्यर्थ की प्रतीक्षा में तारे गिनता हूँ।

९६

तारे मुझे आकाश में ऐसे लगते हैं जैसे चमकीले, जूही के फूल हों। जैसे चंद्रमा कमल को खिला दे, वैसे ही यह सुन्दर हैं, कमल जैसे तारे! क्या तुमने यह तारे खिलाए हैं?

९७

मत कहो कि कलियों के जीवन की सार्थकता यही है कि जब मकरंद से भर जायें, तो बेमन कोई तोड़ ले (इसी तरह न तुमने मेरा जीवन नष्ट किया!)

९८

क्या हानि थी, इस छोटे जीवन में वृत (डंठल) पर ही वह बिता देती? चुपचाप एक दिन झर जाती। (इस जीवन में तुम क्यों आये? क्यों उसे असमय कुचल दिया?)

९९

(अब मेरे लिए प्रलय शेष ही है!) मेरा विश्वास मलय में उड़ता फिरेगा, दूर-दूर ग्रहों-तारों से टकराता हुआ, विशृंखल, पागल! अंतिम किरणें बिखेर कर चंद्रमा भी छिप जायेगा।

१००

अब उस मिलनकुञ्ज में क्या वैसी चाँदनी होगी, जब वह मिलन सुख था? जब हम तुम अलसाए-अलसाए रहते थे। चाँदनी भी अलसाई रहती थी तब!

१०१

तब (प्रेम की) उलझन में आनन्द था, विश्राम था, शांति थी। वह बंधन था। परन्तु सुख उस बंधन में बँध गया था। करुणा का नाम भी नहीं था।

१०२

अब उन मतवाले दिनों की स्मृति आती है। जैसे पराग के मेघ उमड़ आते हों, उससे रस की बूँदे पाकर इस हृदय वन की कलियाँ अब भी मुस्कुरा उठती हैं।

१०३

तब एक दिन तुमने कहा था—समझ नहीं पाया। फिर बात क्या थी? क्या

वे दिन सपना थे ? उन्होंने आश्चर्य से पूछा, मैं काँप उठा। मुग्ध हो उठा।

१०४

मुझे दुःख था। उन्हें इसी में सुख। मेरे आँसू, मेरे दुःखों से तो उनका सौन्दर्य बढ़ता ही है।

१०५

तुम रूठ गये। मेरी करुणा की बीन और भी झंकृत हो उठी। अब मुझे अपनी दीनता में ही गर्व है। मेरी पीड़ा ने साहस जान लिया है।

१०६

तुमने मेरी प्रेम की मदिरा का पान किया। प्रिय थी। बड़ा आनन्द आया। अब क्रोध भरे नाटक के साथ प्याला देकर मुझसे आँखें फेर लीं।

१०७

मेरे रोने में क्या आनंद है, जो तुम मेरा क्रन्दन सुनते हो ? यह आँसू तुम्हें अच्छे लगते हैं ? इन ताने-बाने से तो तुम अपनी सुन्दरता का शृङ्गार करुणा-पट बुनते हो।

१०८

वह मेरे प्रेम की मदिरा से जो भ्रम उत्पन्न हो गया है, उसे छोड़ दो। मेरे

हृदय में आओ। तुम्हारे विना यह हृदय सूना है, अब यहाँ ढूँढने पर भी कुछ नहीं मिलेगा।

१०६

मेरी आहें तुम्हें खींच लायेंगी, तुम्हें जो आज तने हुए बैठे हो। तुम मेरी बढ़ी हुई व्यथा को देख कर रोओगे। तब मुझे अपनाओगे।

११०

तुमने मुझे धूल में बिखेर दिया। परन्तु यह प्रेमी हृदय वहाँ भी चमकेगा। मेरे प्रेम का सौरभ दिग्दिगंत उड़ेगा। ग्रह-ग्रह उड़ता हुआ मैं तुम्हें ही खोजूँगा। कहीं भी मिलूँ, तुम्हें ही आत्मसमर्पण करूँगा।

१११

मनोरथ के धूल की अंजलि तुम्हारे ही चरणों पर मैंने बिखेरी है। कीट की भाँति अपवित्र समझ कर इन फूलों को कुचलो मत। देखो, इनमें कुछ मकरन्द-कण (मूल्यवान) भी है।

११२

जब मैंने प्रेमपथ पर पैर रखा था तो तुम प्रेम का शीतल मणिदीप लेकर मार्ग दिखलाने आये थे। अब यह हृदय

(विरहाग्नि से) जल उठा है। पावकपुंज जल गया। ज्वाला की लपटें (लटें) उठ रही हैं।

११३

उपालंभ

हे नाविक (प्रिय, प्रेम) ! यह तट तो सूना है। यहाँ कहाँ ले आया। यह तो बीहड़ है। क्या अब तक यहाँ कोई आया था ?

११४

सब क्या लौटा जा सकता है उस पार ? उस पार है कहाँ! वे बातें भी अब विस्मृत-विस्मृत, धुँधली-धुँधली रह गई हैं। अंधकार (निराशा) ने उन्हें ढक लिया है। होता तो इधर पैर ही नहीं रखता। यह तो प्रेम की पीड़ा है, छल की भर्त्सना है, जो दुःख देती है।

११५

लौटने का सहारा भी अब कहाँ ? लौटने के पथ में चरण-चिन्ह भी नहीं रहे। सब विस्मृत हो गया। इतने आँसू उमड़े हैं कि मरुभूमि भी डूब जाये। अब पद चिन्ह कहाँ कि उनका अनुसरण करता हुआ लौट जाऊँ।

११६

अब चाहे अनंत शून्य हो सामने, पीछे लौटना असंभव है। किनारा चाहे

मिल भी जाये, पर तिरूँगा कैसे ? अब शक्ति नहीं रही। सहारा नहीं रहा ! मैं तो अपदार्थ हो रहा हूँ आज।

११७

वेदनापूर्ण मन चारों ओर घूम आया। कहीं सुख दिखाई न दिया। जोवन में विश्राम कहीं नहीं मिला।

११८

अब विश्राम है केवल उच्छ्वास और आँसू में। अब विश्राम है रो-रोकर सो जाने में।

११९

वह आये, जैसे पल भर मादकता आ जाये। कैसा सुख था, कैसी विस्मृति थी। चले गये, तो कितना दुःख है जैसे संज्ञा अचेतन हो उठी हो। जैसे नशा उतर गया हो, अब व्याकुल पड़ा रोता हूँ।

१२०

निष्ठुर, ऐसा छल गया, यह छिपना क्या। क्या मेरा अपना कोई भी नहीं रहेगा ? अब तो विरह-रात होगी। हम होंगे। दुःख होगा। (यही संगी-साथी हैं)

१२१

यह तो मानव जोवन है। यहाँ सुख-दुःख की समरस्या तो विरह-मिलन का परिणय चलता है। में संतुलन की खोज

(विरहाग्नि से) जल उठा है। पावकपुंज जल गया। ज्वाला की लपटें (लटें) उठ रही हैं।

११३

उपालंभ

हे नाविक (प्रिय, प्रेम) ! यह तट तो सूना है। यहाँ कहाँ ले आया। यह तो बीहड़ है। क्या अब तक यहाँ कोई आया था ?

११४

सब क्या लौटा जा सकता है उस पार ? उस पार है कहाँ। वे बातें भी अब विस्मृत-विस्मृत, धुँधली-धुँधली रह गई हैं। अंधकार (निराशा) ने उन्हें ढक लिया है। होता तो इधर पैर ही नहीं रखता। यह तो प्रेम की पीड़ा है, छल की भर्त्सना है, जो दुःख देती है।

११५

लौटने का सहारा भी अब कहाँ ? लौटने के पथ में चरण-चिन्ह भी नहीं रहे। सब विस्मृत हो गया। इतने आँसू उमड़े हैं कि मरुभूमि भी डूब जाये। अब पद चिन्ह कहाँ कि उनका अनुसरण करता हुआ लौट जाऊँ।

११६

अब चाहे अनंत शून्य हो सामने, पीछे लौटना असंभव है। किनारा चाहे

मिल भी जाये, पर तिरूँगा कैसे ? अब शक्ति नहीं रही। सहारा नहीं रहा ! मैं तो अपदार्थ हो रहा हूँ आज।

११७

वेदनापूर्ण मन चारों ओर घूम आया। कहीं सुख दिखाई न दिया। जीवन में विश्राम कहीं नहीं मिला।

११८

अब विश्राम है केवल उच्छ्वास और आँसू में। अब विश्राम है रो-रोकर सो जाने में।

११९

वह आये, जैसे पल भर मादकता आ जाये। कैसा सुख था, कैसी विस्मृति थी। चले गये, तो कितना दुःख है जैसे संज्ञा अचेतन हो उठी हो। जैसे नशा उतर गया हो, अब व्याकुल पड़ा रोता हूँ।

१२०

निष्ठुर, ऐसा छल गया, यह छिपना क्या। क्या मेरा अपना कोई भी नहीं रहेगा ? अब तो विरह-रात होगी। हम होंगे। दुःख होगा। (यही संगी-साथी हैं)

१२१

यह तो मानव जीवन है। यहाँ सुख-दुःख की समस्या तो विरह-मिलन का परिणय चलता है। में संतुलन की खोज

सुख-दुःख तो नाचते हैं दोनों। खुला मन हो, तो देखो। यह तो मन-आँख का खेल है।

१२२

यह नियति (भाग्य) नटी की तरह नाचती है। मनुष्य को लेकर कन्दुक-क्रीड़ा करती है। इस तरह दुःख से भरे संसार (के आँगन) में अपना मन बहलाया करती है। (दैव मनुष्य को लेकर खेल करता है।)

१२३

चाहिये तो हमें कि निःसंग, निर्लिप्त होकर रहें। सुख-दुःख में उदासीन होकर सुख-दुख को एक बना दें। अहंकार का त्याग कर इन (सुख-दुःख) दो रूठे हुओं को मिला दें।

१२४

दुःख के साथ हैं वेदना के मेघ। यहाँ न सुख के चंद्रमा का ही चिरशीतल प्रकाश हो, न दुःख के रवि का चिरताप।

१२५

समय आयगा, जब दुःख भी भुला दिया जायेगा। विस्मृति (की समाधि) पर कल्याण (-रूपी मेघ) की वर्षा होगी।

तब दुःख की चिंता छूट जायेगी। सुख थका हुआ सो सकेगा।

१२६

तब यह दग्ध करने वाली स्मृति, यह चेतना (-लहर) नहीं रहेगी। जीवन (-समुद्र) में शांति आ जायेगी। प्रलय (-वेदना की झंझा) की संध्या (अंतिम अध्याय) हो जायेगी। यही विच्छेद तब अनंत मिलन में बदल जायेगा।

'आँसू' के इस 'उलथा' से 'प्रसाद' के भावों के संघात का अध्ययन सरलता से किया जा सकता है। अधिकांश काव्य में उपालंभ-मात्र है। प्रेम-प्रेमिका के वे मिलन दिन कितने सुख के थे! विरह के दिनों में उनकी स्मृति उमड़ती है और प्रेमी कवि आकुल हो उठता था। वे प्रभात, वे सायं, वे चंद्रिका से धोई हुई रातें। अब तो एकाकी जीवन बिताना है, अकेले तारे गिनना है। अंत में उपालंभ देते-देते कवि थक जाता है। इस विचार से उसे शांति मिलती है कि 'समय आयेगा, जब दुःख भी भुला दिया जायगा।' वह सोचता है—यह तो मानव जीवन है, इसमें विरह-मिलन का परिणाम चलता ही रहता है। सुख-दुःख विरह-मिलन ये दोनों तो मन के खेल हैं। अतः हताश होना कैसा। समय का प्रवाह दुःख-सुख के आवर्त्तों-विवर्त्तों के ऊपर एक महान शांतिचक्र की भाँति बहता रहता है। यह दार्शनिक निस्पृहता उसे शक्ति देती है। वे निश्चेतन रह कर उस दिन की प्रतीक्षा करने लगता है जब,

चेतना लहर की न रहेगी
जीवन समुद्र थिर होगा
संध्या हो सर्ग प्रलय की
विच्छेद मिलन फिर होगा

जिस समय मन निःस्पृह भाव से सुख-दुःख से ऊपर उठ जायगा, उस समय प्रेमी के मन को शांति प्राप्ति होगी, वेदना की झंझा रुक जायगी और तब यही विच्छेद अनंत मिलन में बदल जायगा।

'आँसू' के दूसरे संस्करण (१९३३) में छंदों का क्रम बदल दिया गया है और कुछ नये छंद भी जोड़ दिये गये हैं। इन छन्दों में वह आत्मीयता नहीं है जो पहले संस्करण के छन्दों में हैं, और इन्होंने काव्य के साथ कितना उपकार किया है, यह चिंत्य विषय। फिर भी कुछ नवीन उद्भावनाएँ सुन्दर हैं। कवि रात से प्रार्थना करता है—

निशि, जो सोये जब उर में
ये हृदय व्यथा आभारी
उनका उन्माद सुनहला
सहला देना सुखकारी

(हे रजनी, जब मेरे हृदय में ये मेरी व्यथाएँ थक कर सो जायें, तो धीरे-धीरे उनका मस्तक सहला देना, जिससे उनका उन्माद दूर हो जाये। वे तेरी आभारी होंगी)

तुम स्पर्शहीन अनुभव-सी
नन्दन तमाल के तल से
जग छा दो श्यामलता-सी
तन्द्रा पल्लव विह्वल से
सपनों की सोनजुही सब
बिखरें, ये बन कर तारा

सित सरसिज से भर जाये
वह स्वर्गंगा की धारा

(तुम तो स्पर्शहीन सुखानुभव मात्र हो, रजनी ! तुम तो नन्दनवन के तमाल के नीचे उगने वाली श्यामलता हो। तुम्हारी छाया तो स्वर्गीय है। उठो और इस आकुल विश्व को छा लो। सोनजुही-से ये सपने तारा बन कर आकाश में बिखर जायें। आकाशगंगा में श्वेत कमल खिल उठें। इस प्रकार मेरे व्यथित हृदय से ईप्सित सुखस्वर्ग का मिलाप हो।)

वेदना का बड़ा सुन्दर चित्रण कवि ने इन छंदों में उपस्थित किया है—

जब नील निशा अंचल में
हिमकर थक सो जाते हैं
अस्ताचल की घाटी में
दिनकर भी खो जाते हैं
नक्षत्र डूब जाते हैं
स्वर्गंगा की धारा में
बिजली बन्दी होती जब
कादम्बिनि की कारा में
मणिदीप विश्वमंदिर की
पहने किरणों की माला
तुम एक अकेली तब भी
जलती हो मेरी ज्वाला
उत्ताल-जलधि-वेला में
अपने सिर शैल उठाये
निस्तब्ध गगन के नीचे
छाती में जलन छिपाये

संकेत नियति का पाकर
तन से जीवन उलझाये
जब सोती गहनगुफा में
चंचल लट को छिटकाये
यह ज्वालामुखी जगत की
वह विश्ववेदना बाला
तब भी तुम सतत अकेली
जलती हो मेरी ज्वाला

इन पक्तियों में कवि अपनी वेदना को चिर-जागरूक देखता है। रामचरितमानस में तुलसी ने सीता के सौन्दर्य को व्यंजित करते हुए लिखा है—छविग्रह दीपशिखा जिमि बरई। जान पड़ता है 'प्रसाद' ने यहीं से संकेत लेकर एक सुन्दर मूर्ति उपस्थित की है। जब संध्या के समय सारा विश्व निर्जन-नीरव लगने लगता है तब इस संसार की तप-भूमि में केवल वेदना जागती रहती है—

मणि दीप विश्व मंदिर की
पहने किरणों की माला
तुम एक अकेली तब भी
जलती हो मेरी ज्वाला

कितना सुन्दर चित्र है। कवि ने वेदना को स्वर्गीय अनुभूति से जीवित, स्पदित बना दिया है।

कुछ दूसरी पंक्तियों में कवि अपने प्रेम को जगाता है—वह प्रेम कैसा है, जीवन जिससे धन्य हो जाय, मृत्यु हो, परन्तु मृत्यु के आगे जो अमरता है, वह भी मुस्कराती हुई सामने आये। इस प्रकार 'लाग डाट' उर्दू काव्य की विशेषता है, हिंदी का पाठक टीका विना इसे समझ नहीं सकता। कवि प्रेम से कहता है—

मेरी आहों में जागो
सुस्मित में सोने वाले
अधरों से हँसते हँसते
आँखों से रोने वाले

परन्तु स्पष्ट रूप से वह क्या कहता है। व्यंजना यह है, प्रेम मिलन में सोता रहता है, वह वियोग में ही जाग कर क्रियाशील हो जाता है। उसके होठों पर फिर भी हँसी रहती है, आँखों में आँसू रहते हैं। वह अपने हृदय में फिर अतीत का अनुभव चाहता है। कहता है—

इस स्वप्नमयी संसृति के
सच्चे जीवन तुम जागो
मंगल किरणों से रंजित
मेरे सुन्दरतम, जागो

प्रम ही 'सच्चा जीवन' है। कवि के लिये वह 'मङ्गल'मय है, सुन्दरतम है। चाहे वह 'स्वप्न' 'स्वप्न' हो, परन्तु उसके लिए वही सत्य है। इससे बड़ा सत्य पाना वह नहीं चाहता।

'प्रसाद' के इस प्रेम-काव्य के समझने में एक बड़ी कठिनाई यह है कि वे उर्दू-फारसी के काव्य से काफी प्रभावित हैं और उनकी संस्कृतगर्भित भाषा और लक्षणा से प्रभावित पाठक यह बात जान नहीं पाता। इसका फल यह होता है कि सारा काव्य ही अस्पष्ट हो जाता है। एक तो 'प्रसाद' ने इस सारे काव्य में प्रेम-सम्बन्ध करते समय प्रेमिका को 'पुलिंग' से संबोधित किया है—

शशि मुख पर घूँघट डाले
अंचल में दीप छिपाये

आशा का फैल रहा है
यह सूना नीला अंचल
फिर स्वर्णसृष्टि सी नीचे
उसमें करुणा हो चंचल

परन्तु जो कुछ वह कहता है, वह करुणा, जीवन, मेरे सुन्दर-तम जैसे अस्पष्ट रहस्य-व्यंजन शब्दों की पकड़ में नहीं आता।

जो हो, प्रसाद का 'आँसू' उनकी अत्यंत महत्त्वपूर्ण रचना है। 'कामायिनी' के बाद की रचनाओं में उसी का स्थान है। उसका ऐतिहासिक महत्त्व तो है ही। 'पल्लव' (पंत) और 'आँसू' (प्रसाद) दोनों १९२५ में प्रकाशित हुए और इन रचनाओं ने द्विवेदीयुग की रचनाओं को बहुत पीछे छोड़ दिया। एक नये युगारंभ की सूक्ष्म इन रचनाओं ने दी। 'छायावाद' काव्य के आदि प्रवर्तक यही दो ग्रंथ हैं। 'पल्लव' और 'आँसू' दोनों में कल्पना-विलास है, स्थूल को छोड़ कर सूक्ष्म की ओर कवि बढ़ता है, जीवन के गहनतम तत्त्वों को लेकर वह उपस्थित हो सकता। पल्लव की 'परिवर्तन' कविता ने पंत के जीवन की जो तल-स्पर्श मीमांसा की है, उस कम गहरी प्रेम, सौन्दर्य और करुणा की मीमांसा 'आँसू' में नहीं हुई है। एक नई मूर्त्तिमत्ता, एक नए कल्पना-विलास, एक नूतन स्वातंत्र्य दिशा की ओर इन रच-नाओं ने संकेत किया और इसने हिन्दी के काव्य को मङ्गल भावना से भर दिया। इसी वर्ष (१९२५) प्रेमचंद ने 'रंग-भूमि' (ऐतिहासिक-सामयिक उपन्यास) को उपस्थित किया और इसके द्वारा हिन्दी गद्य में एक नई क्रांति की सूचना दी। महायुद्ध के दिनों में देश की चिंताधारा विदेशों की ओर मुड़ गई थी, कवियों और लेखकों के लिये पश्चिम के रोमांस काव्य और रूस के महान् उपन्यासों की ओर जाना अनिवार्य था। इस नवीन दृष्टि ने काव्य-क्षेत्र में पन्त, प्रसाद, निराला और उपन्यास

क्षेत्र में प्रेमचंद को जन्म दिया। १९२१ के जनांदोलन ने कवियों की भावभूमि मुक्त कर दी और वे नए आसमान, नई जमीन देखने के लिए आतुर हो उठे। रवीन्द्र, शेली, कबीर, टालसटाय, रूसो जिसने भी जो दिया, उससे ग्रहण कर एक नई साहित्यिक क्रांति का सूत्रपात हुआ। १९००—२१ के इतिवृत्तात्मक कलाहीन काव्य गद्य के समकक्ष 'आँसू' और 'पल्लव' की 'प्रतीयमान छाया' छवि से अधमुँदी, अधखुली प्रतिभा-मूर्ति ऐसी ही है जैसी मृत्यु की जड़ता के सामने जीवन का 'शतशत भावोच्छ्वसित' स्पंदन।

६

"लहर"

'लहर' में जयशंकरप्रसाद की प्रौढ़तम प्रगीतियों और कुछ मुक्तछन्दों का संग्रह है। यह संग्रह कवि को प्रौढ़तम रूप में हमारे सामने रखता है। इस समय कवि 'कामायिनी' को समाप्त कर रहा था। इस संग्रह की कविताओं को भली भाँति समझ लेने पर हमें प्रसाद की सभी प्रवृत्तियाँ सुन्दर ढङ्ग से समझ में आ जाती हैं।

'लहर' में २६ प्रगीति हैं। इन प्रगीतियों को हम छायावाद काव्य के प्रौढ़तम नमूने के रूप में सामने रख सकते हैं। स्वयं 'लहर' प्रतीक है। कवि मनुष्य-मन में उठने वाली मानसिक तरंगों के घात-प्रतिघात की बात कहता है। उसके मन में जीवन के सुख-दुःख को लेकर जो विराट् संघर्ष चल रहा है, उसकी प्रतिच्छाया यहाँ स्पष्ट है। इस मानस-लहरी का उत्थान-पतन कवि को आश्चर्य से भर देता है। वह कहता है—

शीतल कोमल चिर कम्पन-सी
दुर्ललित हठीले बचपन-सी
तू लौट कहाँ जाती है री—
यह खेल खेल ले ठहर ठहर

वह उसे याद दिलाता है कि पंकज-बन, (सुख स्मृतियों का नंदन) ही सब कुछ नहीं है। कहता है—

तू भूल न री पंकज-बन में
जीवन के इस सूनेपन में

ओ प्यार-पुलक से भरी ढुलक
आ चूम पुलिन के विरस अधर

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस आरम्भिक कविता से ही प्रसाद के काव्य का द्विविध रूप हमें मिल जाता है।

'लहर' में हम कवि को शुद्ध रहस्यवादी भूमि पर प्रतिष्ठित पाते हैं। जीव और ब्रह्म की लुका-छिपी को कवि अत्यंत स्पष्ट शब्दों में स्पष्ट करता है। ब्रह्म जीव के साथ आँख-मिचौनी खेलता है, परन्तु उषा की अरुणिमा के रूप में बहने वाली उसके पदचाप की लाली से, उसकी हँसी से, रूप-रस-गंध में हो रहे उसके खेलों से जीव उसे पहचान ही लेता है—अतः कवि कहता है—

देख न लूँ, इतनी ही तो इच्छा है, लो सिर झुका हुआ
कोमल किरन-उँगलियों से ढँक दोगे यह दृग खुला हुआ
फिर कह दोगे, पहचानो तो मैं हूँ कौन बताओ तो
किन्तु उन्हीं अधरों से पहले उनकी हँसी दबाओ तो
सिहर-भरे निज शिथिल मृदुल अंचल को अधरों से पकड़ो
वेला बीत चली है, चंचल बाहुलता से आ जकड़ो

तुम हो कौन और मैं क्या हूँ
इसमें क्या है धरा, सुनो
मानस-जलधि रहे चिर-चुम्बित
मेरे क्षितिज ! उदार बनो

वह इसी पर संतोष कर लेगा। उसका प्रियतम उसे अपना मुख नहीं भी दिखलाये, उसका शीतल स्पर्श उसे मिलता रहे। वह कहता है—

शशि सी वह सुन्दर रूप-विभा
चाहे न मुझे दिखलाना

उसकी निर्मल शीतल छाया
हिमकन को बिखरा जाना

परन्तु प्रियतम की निष्ठुर आँख-मिचौनी और उसकी आतुर अपलक प्रतीक्षा उसे पागल बना देती है। जीवन में ऐसे क्षण आते हैं कि भीतर की वेदना हाहाकर करती हुई बाहर निकलने लगती है—

धीरे से वह उठता पुकार
मुझको न मिला रे कभी प्यार

और कभी-कभी वह चिल्ला पड़ता है—

अरे कहीं देखा है तुमने
मुझे प्यार करने वाले को
मेरी आँखों में आकर फिर
आँसू बन ढरने वाले को
सूने नभ में आग जला कर
यह सुवर्ण-सा हृदय गला कर
जीवन संध्या को नहला कर
रिक्त जलधि करने वाले को

परन्तु अंत में उसके हृदय की प्रतिध्वनि ही उसे रहस्य बताती है। यह 'प्यार' तो खोजने की वस्तु नहीं है—

पागल रे वह मिलता है कब
उसको तो देते ही हैं सब
आँसू के कन-कन को गिनकर
यह विश्व लिये है ऋण उधार
तू क्यों फिर उठता है पुकार
मुझको न मिला रे कभी प्यार

यही नहीं कवि अनुभव करता है कि इस विशद विश्व में

करुणा का ही साम्राज्य है। वही सत्य है शेष मिथ्या है। शेष प्रताड़ना है। प्रियतम ने उसे ठुकरा दिया है। परन्तु इस ठुकराने से ही वह क्या अप्रिय हो गया। इससे तो वह और प्रिय बन गया। कवि कहता है—

निधरक तूने ठुकराया तब
मेरी टूटी हुई मृदु प्याली को
उसके सूखे अधर मांगते
तेरे चरणों की लाली को
जीवन-रस के बचे हुए कन
बिखरे अंबर में आँसू बन
वही दे रहा था सावनघन
वसुधा की हरियाली को

सच तो यह है, करुणा ही सत्य है। दुःख में भी प्रियतम का निवास है। उसी में उसे पाना होगा। जीवन-मरण, सुख-दुख की रहस्यमयी क्रीड़ा को जब मनुष्य समझ ही नहीं पाता तो वह क्या करे ? तब क्रोध क्यों ? क्षोभ क्यों ? निराशा क्यों ? आसक्ति क्यों ?

तब क्यों रे फिर यह सब क्यों
यह रोष भरी लाली क्यों
गिरने दे नयनों से उज्ज्वल
आँसू के कन मनहर
वसुधा के अंचल पर

परन्तु करुणा और वेदना के इन गानों से, इस जीवनदर्शन से आत्मा की पुकार दबती तो नहीं, उसे भुलाया तो नहीं जा सकता। प्रर्थना का अधिकार तो जीवन को रहेगा ही। अतः 'लहर' में प्रार्थना के कई सुंदर गीत हैं, जैसे—

मेरी आँखों की पुतली में
तू बनकर प्राण समा जा रे
जिससे कन कन में स्पंदन हो
मन में मलियानिल चंदन हो
करुणा का नव अभिनंदन हो
वह जीवन-गीत सुना जा रे
खिंच जाय अधर पर वह रेखा
जिसमें अंकित हो मधु लेखा
जिसको यह विश्व करे देखा
वह स्मिति का चित्र बना जा रे
जग की सजल कालिमा रजनी में
मुखचन्द्र दिखा जाओ
हृदय-अँधेरी-झोली, इसमें
ज्योति-भीख देने आओ
प्राणों की व्याकुल पुकार पर
एक मीड ठहरा जाओ
प्रेम-वेणु की स्वर लहरी में
जीवन - गीत सुना जाओ

× × ×

स्नेहालिंगन की लतिकाओं की
झुरमुट छा जाने दो
जीवन धन ! इस जले जगत को
वृन्दावन बन जाने दो

कवि जीवन में एक सार्वभौमिक प्रभात के जागने की कल्पना करता है और उसका आह्वान करता हुआ कहता है—

अब जागो जीवन के प्रभात
वसुधा पर ओस बने बिखरे

हिमकन आँसू जो क्षोभ भरे
ऊषा बटोरती अरुण गात
अब जागो।
तम-नयनों की तारायें सब—
मुँद रही किरणदल में हैं अब
चल रहा सुखद यह मलय वात
अब जागो।
रजनी की लाज समेटो तो
कलरव से उठकर भेंटो तो
अरुणाचल में चल रही वात
अब जागो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ थोड़े से ही गीतों में कवि ने आध्यात्मिक आशा और निराशा के सुन्दर रूपक भर दिये हैं।

'लहर' की कुछ कविताएँ प्रकृति को आलंबन बना कर चली हैं। इन प्रकृति-गीतों में कहीं हम उन्हें सरस प्रकृति का वर्णनमात्र करते पाते हैं, कहीं प्रकृति के सहारे जीवन-मरण के रहस्य को खोलते हुए। उनका एक अत्यंत प्रसिद्ध गीत है—

बीती विभावरी जाग री
अम्बर पनघट में डुबो रही
ताराघट ऊषा नागरी
खग-कुल कुल-कुल-सा बोल रहा
किसलय का अंचल डोल रहा
लो, यह लतिका भी भर लाई
मधु-मुकुल नवल-रस गागरी
अधरों में राग अमंद पिये
अलकों में मलयज बंद किए

मेरी आँखों की पुतली में
तू बनकर प्राण समा जा रे
जिससे कन कन में स्पंदन हो
मन में मलियानिल चंदन हो
करुणा का नव अभिनंदन हो
वह जीवन-गीत सुना जा रे
खिंच जाय अधर पर वह रेखा
जिसमें अंकित हो मधु लेखा
जिसको यह विश्व करे देखा
वह स्मिति का चित्र बना जा रे
जग की सजल कालिमा रजनी में
मुखचन्द्र दिखा जाओ
हृदय-अँधेरी-झोली, इसमें
ज्योति-भीख देने आओ
प्राणों की व्याकुल पुकार पर
एक मीड ठहरा जाओ
प्रेम-वेणु की स्वर लहरी में
जीवन - गीत सुना जाओ

× × ×

स्नेहालिंगन की लतिकाओं की
झुरमुट छा जाने दो
जीवन धन ! इस जले जगत को
वृन्दावन बन जाने दो

कवि जीवन में एक सार्वभौमिक प्रभात के जागने की कल्पना करता है और उसका आह्वान करता हुआ कहता है—

अब जागो जीवन के प्रभात
वसुधा पर ओस बने बिखरे

हिमकन आँसू जो क्षोभ भरे
ऊषा बटोरती अरुण गात
                    अब जागो०
तम-नयनों की तारायें सब—
मुँद रही किरणदल में हैं अब
चल रहा सुखद यह मलय वात
                    अब जागो०
रजनी की लाज समेटो तो
कलरव से उठकर भेंटो तो
अरुणाचल में चल रही वात
                    अब जागो०

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ थोड़े से ही गीतों में कवि ने आध्यात्मिक आशा और निराशा के सुन्दर रूपक भर दिये हैं।

'लहर' की कुछ कविताएँ प्रकृति को आलंबन बना कर चली हैं। इन प्रकृति-गीतों में कहीं हम उन्हें सरस प्रकृति का वर्णनमात्र करते पाते हैं, कहीं प्रकृति के सहारे जीवन-मरण के रहस्य को खोलते हुए। उनका एक अत्यंत प्रसिद्ध गीत है—

बीती विभावरी जाग री
अम्बर पनघट में डुबो रही
ताराघट ऊषा नागरी
खग-कुल कुल-कुल-सा बोल रहा
किसलय का अंचल डोल रहा
लो, यह लतिका भी भर लाई
मधु-मुकुल नवल-रस गागरी
अधरों में राग अमंद पिये
अलकों में मलयज बंद किए

हिमकन आँसू जो क्षोभ भरे
ऊषा बटोरती अरुण गात
अब जागो०
तम-नयनों की तारायें सब—
मुँद रही किरणदल में हैं अब
चल रहा सुखद यह मलय वात
अब जागो०
रजनी की लाज समेटो तो
कलरव से उठकर भेंटो तो
अरुणाचल में चल रही वात
अब जागो०

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ थोड़े से ही गीतों में कवि ने आध्यात्मिक आशा और निराशा के सुन्दर रूपक भर दिये हैं।

'लहर' की कुछ कविताएँ प्रकृति को आलंबन बना कर चली हैं। इन प्रकृति-गीतों में कहीं हम उन्हें सरस प्रकृति का वर्णनमात्र करते पाते हैं, कहीं प्रकृति के सहारे जीवन-मरण के रहस्य को खोलते हुए। उनका एक अत्यंत प्रसिद्ध गीत है—

बीती विभावरी जाग री
अम्बर पनघट में डुबो रही
ताराघट ऊषा नागरी
खग-कुल कुल-कुल-सा बोल रहा
किसलय का अंचल डोल रहा
लो, यह लतिका भी भर लाई
मधु-मुकुल नवल-रस गागरी
अधरों में राग अमंद पिये
अलकों में मलयज बंद किए

तू अपलक सोई है, आली
आँखों में भरे विहाग री

कहीं कवि प्रभात को "भैरवी" बनाता है, कहीं थकी हुई रात आलस की अँगड़ाई ले रही है या अपने रतनारे नेत्रों का सागर के उद्वेलित अंचल से पोंछ रही है—

आंखों से अलख जगाने को
यह आज भैरवी आई है
ऊषा-सी आँखों में कितनी
मादकता-भरी ललाई है
कहता दिगन्त से मलय-पवन
प्राची की लाज-भरी चितवन
है रात घूम आई मधुवन
यह आलस की अंगड़ाई है
लहरों में यह क्रीड़ा चंचल
सागर का उद्वेलित अंचल
है पोंछ रहा आँखें छलछल
किसने यह चोट लगाई है

कहीं कवि अत्यंत मार्मिक हो रात के हृदय के श्वास-प्रश्वास को देखता है। 'प्रसाद' विलास, ऐश्वर्य और मादकता के कवि हैं। उन्होंने अतीत के टूटे हुए स्वप्न और विलासमय रंगों से रँगी सांय-प्रात: का विशद चित्रण किया है। स्वयं अपने में निमज्जित हो, कालिदास और रवीन्द्र का प्रेम-विलास और रहस्य की मादक कल्पना को उन्होंने अपनाया है और उसे सोने के पत्रों में सँजो कर रखा है। कला की ये विलास से सँवारी रेखाएँ जनकाव्य की श्रेणी की वस्तु नहीं, परन्तु एक विशेष वर्ग के एक विशेष श्रेणी के काव्य का इतना सुन्दर रूप अन्यत्र नहीं मिलेगा। कवि कहता है—

कोमल कुसुमों की मधुर रात
शशि-शतदल का वह सुख विकास
जिसमें निर्मल हो रहा हास
उसकी साँसों का मलय वात
कोमल कुसुमों की मधुर रात
वह लाज भरी कलियाँ अनंत
परिमल घूँघट ढँक रहा दंत
कँप कँप चुप-चुप कर रहीं बात
कोमल कुसुमों की मधुर रात
नक्षत्र-कुमुद की अलस-माल
वह शिथिल हँसी का सजल जाल
जिसमें खिल खुलते किरन-पात
कोमल कुसुमों की मधुर रात
कितने लघुलघु कुड्मल अधीर
गिरते बन शिशिर सुगंध नीर
हो रहा विश्व सुख पुलक गात

प्रकृति का सौन्दर्य जहाँ एक ओर विलास और ऐश्वर्य की भूमिका है, वहाँ उससे अतीत की वीणा भी झंकृत हो उठती। कवि पाता है, उसका सोने का संसार खो गया। कवि पाता है, प्रकृति का वैभव उसके लिये सुख का वरदान नहीं लाता। वह उदास हो जाता है। जब प्रभात में—

अंतरिक्ष में अभी सो रही है ऊषा मधु-बाला
अरे खुली भी नहीं अभी तो प्राची की मधुशाला
सोता तारक-किरन-पुलक-रोमावलि मलयज वात
लेते अँगड़ाई नीड़ों में अलस विहग मृदु गात

तभी कवि भिखारी के रूप में प्रकृति के वैभव से भिक्षा प्राप्त करने चल पड़ता है। कहता है—"कुछ मुझको भी दे देना"—

"कनकन बिखरा विभव दान कर अपना यश ले लेना",

दु:ख-सुख के डग भरता हुआ यह अकिंचन भिखारी बढ़ता जाता है। इसी तरह—

मधुर माधवी संध्या में जब
    रागारुण रवि होता अस्त
विरल मृदुल दलवाली डालों से
    उलझा समीर जब व्यस्त
प्यार भरे श्यामल अंबर में जब
    कोकिल की कूक अधीर
नृत्य शिथिल बिछली पड़ती है
    वहन कर रहा उसे समीर
तब क्यों तू अपनी आँखों में
    जल भर कर उदास होता

कहीं कवि उन करुण व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति प्रगट करता है जो अपने अभावों को लिए हुए निद्रा की गोद में शांत सोये हैं—

अपलक जगती को एक रात
सब सोये हों इस भूतल में
अपनी निरीहता संबल में
    चलती हो कोई भी न बात

पथ सोये हों हरियाली में
हों सुमन सो रहे डाली में
    हो अलस उनींदी नखत-पाँत

नीरव प्रशांत का मौन बना
चुपके किसलय से बिछल छना
    थकता हो पंथी मलय-वात

वक्षस्थल में जो छिपे हुए
सोते हों हृदय अभाव लिये
उनके स्वप्नों का हो न प्रात

इस संग्रह की एक-दो कविताएँ 'प्रसाद' के व्यक्तित्व और उनकी कला पर विशेष प्रकाश डालती हैं। 'हंस' के आत्मकथांक (१६३२ ई०) के लिए प्रेमचंद ने प्रसाद को निमन्त्रण दिया था और यह कविता मुखपृष्ठ पर छपी थी। इसमें कवि कहता है—

उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ मधुर चाँदनी रातों की
अरे खिलखिलाकर हँसते होने वाली उन बातों की
मिला कहाँ वह सुख जिसका मैं स्वप्न देखकर जाग गया!
आलिंगन में आते आते मुसक्या कर जो भाग गया
जिसके अरुण कपोलों की मतवाली सुन्दर छाया में
अनुरागिनी उषा लेती थी निज सुहाग मधुमाया में

उसकी स्मृति पाथेय बनी है
थकी पथिक की पन्था की
सीवन को उधेड़ कर देखोगे क्यों
मेरी कंथा की!

इससे कवि का रोमांटिक (स्वच्छन्द) दृष्टिकोण और उसकी करुणा के मूल स्रोत पर प्रकाश पड़ता है।

'लहर' में प्रसाद की कुछ कथात्मक कविताएँ भी संग्रहीत हैं—अशोक की चिंता, शेरसिंह का आत्मसमर्पण, पेशोला की प्रतिध्वनि और प्रलय की छाया। इन सब कविताओं का मूल स्रोत ऐतिहासिक है। इतिहास की ओर कवि की दृष्टि का प्रमाण उसके प्रसिद्ध नाटक हैं और इसी ऐतिहासिक प्रवृत्ति से ये कविताएँ अनुप्राणित हुई हैं। इन कविताओं की विशेषता इतनी

उनके विषय की नहीं है, जितनी मानसिक और कलात्मक चित्रण की। इन सब कविताओं का, विशेषकर मुक्तछन्द में लिखी कविताओं का आधुनिक हिंदी काव्य में विशेष स्थान रहेगा। इनमें हमें प्रसाद की उस वस्तु-चित्रण-कला के दर्शन होते हैं जो उनके उपन्यासों का प्राण है। (पेशोला की प्रतिध्वनि) में पेशोला का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

पेशोला की ऊर्मियाँ हैं शांत, घनी छाया में
तरुतट हैं चित्रित तरल चित्रसारी में
झोंपड़े खड़े हैं बने शिल्प से विषाद के
दग्ध अवसाद से
धूसर जलदखंड भटक पड़े हैं
जैसे विजन अनन्त में
कालिमा बिखरती है सन्ध्या के कलंक-सी
दुन्दुभि-मृदंग-तूर्य शांत, स्तब्ध, मौन हैं

यौवनागम से नारी के भीतर सौन्दर्य और स्वप्नों का जो संसार जाग उठता है उसका वर्णन कवि ने 'प्रलय की छाया' में इस प्रकार किया है —

पागल हुई मैं अपनी ही मृदु गंध से
कस्तूरी-मृग जैसी
पश्चिम जलधि में
मेरी लहरीले नीले अलकावली समान
लहरें उठती थीं मानों चूमने को मुझको
और साँस लेता था समीर मुझे छूकर
नृत्यशीला शैशव की स्फूर्तियाँ

दौड़ कर दूर जा खड़ी हो हँसने लगीं
मेरे तो,
चरण हुए थे विजड़ित मधु-भार से
हँसती अनंग-बालिकायें अंतरिक्ष में
मेरी इस क्रीड़ा के मधु-अभिषेक में
नत शिर देख मुझे
कमनीयता थी जो समस्त गुजरात की
हुई एकत्र इस मेरी अंग लतिका में
पलकें मदिर भार से झुकी पड़तीं
नंदन की शत शत दिव्य कुसुम कुन्तला
अप्सराएँ मानों वे सुगन्ध की पुतलियाँ
आ-आकर चूम रहीं अरुण अधर मेरा
जिसमें स्वयं ही मुस्कान खिल पड़ती
नूपुरों की झनकार घुली मिली जाती थी
चरण अलक्तक की लाली से

इस प्रकार के मानसिक परिवर्तन के चित्रण छायावाद-काव्य के अतिरिक्त अन्य स्थान पर मिलना असंभव हैं। प्रकृति और मनुष्य के घात-प्रतिघात के चित्रण के लिये यह कविता और भी सुन्दर है—

एक दिन, संध्या थी;
मलिन उदास मेरे हृदय-पटल-सा
लाल पीला होता था दिगंत निज क्षोभ से
यमुना प्रशांत मंद मंद निज धारा में
करुण विषादमयी
बहती थी धरा के तरल अवसाद-सी

बैठी हुई कालिमा की चित्रपटी देखती
सहसा मैं चौंक उठी द्रुत पद शब्द से

वास्तव में प्रसाद की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी और हमें दुःख होता है कि उन्होंने उपन्यास और कथात्मक काव्य के क्षेत्र में एक-दो ही वस्तुएँ दे पाईं। यदि वह कुछ पहले से इधर आये होते तो हिंदी के काव्य में एक नई प्रवृत्ति को स्थायित्व प्राप्त हो गया होता।

७

'कामायिनी' [क]

'कामायिनी' प्रसाद की प्रौढ़तम रचना है और उसे छायावाद काव्य के अन्यतम उदाहरण के रूप में उपस्थित किया जा सकता है। छायावाद की सारी दुर्बलता और उसकी सारी शक्ति के हमें इस कथा-काव्य में मिल जाते हैं। जिस प्रकार सूरसागर कृष्ण-काव्य का, रामचरितमानस रामकाव्य का, विहारी सतसई शृङ्गार काव्य का और प्रियप्रवास द्विवेदी युग के काव्य का प्रतिनिधित्व करते हैं, उसी प्रकार जयशंकर प्रसाद की कामायिनी को आधुनिक युग की सबसे महत्त्वपूर्ण धारा 'छायावाद' का प्रतिनिधि काव्य कहा जा सकता है। इस एक ग्रंथ को अच्छी तरह समझ लेने पर हम स्वच्छंदतावाद (छायावाद) की सारी प्रवृत्तियों से परिचित हो जाते हैं।

चित्राधार (१६०६), काननकुसुम (१६१२), आँसू (१६२५), झरना (१६२७) और लहर (१६३२)—प्रसाद के अन्य पाँच काव्य-ग्रंथ हैं। 'कामायिनी' का समय काफी लंबा है। ग्रंथ १६३५ में प्रकाशित हुआ, परन्तु १६२०-२२ के आस-पास से प्रसाद इस रचना में लगे हुए थे। 'त्यागभूमि' (१६२८) में 'नारी और लज्जा' शीर्षक से इस काव्य का एक उत्कृष्ट अंश प्रकाशित हुआ और तब से भिन्न-भिन्न मासिकों में इसके अंश बराबर प्रकाशित होते रहे। इस प्रकार प्रसाद का सारा प्रौढ़ काव्य (आँसू, झरना, लहर) इस ग्रंथ के समानान्तर चलता है।

कविताओं की यही कहानी है। वह राय कृष्णदास की 'साधना' की गद्यगीतियों की श्रेणी की रचनाएँ हैं। रवीन्द्र बाबू के प्रभाव-क्षेत्र से निकल कर नये कवियों ने भाषा, भाव और अभिव्यक्ति के क्षेत्रों में धीरे-धीरे नया मार्ग ढूँढ निकाला।

रीतिकाल में हिंदी कविता संस्कृत-काव्य-नियमों, रस, अलंकार, ध्वनि, व्यंजनादि की रूढ़ियों के जटिल जाल में बँध गई। १६०० ई० से लेकर १८५७ ई० तक रस और अलंकारों के उदाहरण के रूप में बँधी हुई पिष्टपेषित कविता की बाढ़ रही। प्रेम और वासना, संयोग और वियोग, षटऋतु वर्णन, बारहमासा—इस कविता की इतनी ही सरगम थी। जीवन के तीन सप्तक तो क्या, एक सप्तक के भी सारे स्वर इस कविता में नहीं बोलते। घनानन्द, सेनापति, बोधा, हरिश्चंद्र-प्रभृति रस-मर्मज्ञ प्राकृत कवियों ने रीति कविता की जड़ता और मशीन जैसी निष्प्राणता का विरोध किया और हृदय को स्पर्श करने वाली भाषा में हृदय से सहज फूट पड़ने वाले भावों का प्रकाशन किया। यह सब हुआ जैसे मरुभूमि में प्राकृतिक स्रोत फूट पड़े हों और उन्हें घेर कर लता-निकुंज, वृक्षादि अपनी मनोरम छटा दिखा रहे हों, परन्तु इन छोटे-मोटे उर्वर क्षेत्रों से मरुस्थल की समरसता, जड़ता और शून्यता की कठोरता कम नहीं हो सकती थी। गदर (१८५७ ई०) के बाद हिंदी भारती ने सामयिक विषयों को अपनाया और श्रीधर पाठक ने प्रकृति के स्वतंत्र, स्वच्छंद और सहज रूप को काव्य का विषय बनाया। रीतिकाल की विषय और अभिव्यंजना की जड़ता को १९वीं शताब्दी के अंतिम दशकों की सामयिक (राजनीतिक, सामाजिक) और प्रकृति-संबंधी कविता ने खुला चैलेंज दिया। सरस्वती के प्रकाशन के साथ भाषा भी ब्रजभाषा से बदल कर खड़ी बोली हो गई। अगले २५ वर्षों का इतिहास

नये-नये विषयों, नये-नये छंदों और नई-नई अभिव्यक्ति-शैलियों के प्रयोग का इतिहास है।

कविता के वाह्य रूपों में परिवर्तन अधिकतर पाठक के (गीतों) द्वारा हुआ। गीतों के माध्यम से एक स्वच्छंद, अपने में पूर्ण और प्राकृतिक भावधारा का प्रकाशन आरंभ हुआ। कविताओं में, गीतात्मकता की वृद्धि हुई। गीतात्मक काव्य की अनेक शैलियों का जन्म हुआ। छायावाद काव्य में संगीत और कला के सर्वोत्कृष्ट दर्शन मिलते हैं। विद्यापति और सूरदास की परंपरा में आगे बढ़ कर नया कवि भाव, लय, छन्द का आशातीत संगम उपस्थित करने में सफल हुआ।

परन्तु इस वाह्य रूप का अभिव्यंजन प्रणालियों पर प्रभाव पड़ा और बंगला, अंग्रेजी और लोकगीतों से प्रभावित अभिव्यंजना की नई शैलियों का जन्म हुआ। सच तो यह है, हिन्दी-काव्य के किसी भी अन्य युग में इतना आमूल युगांतर कभी नहीं हुआ है। कविता के रूप-रंग, वाह्यलंकार अव्ययों के गठन तो बदले ही, उसकी आत्मा भी नये रंगों में रँग गई। संगीत, लय, छंद अलंकार, भाषा, शैली—ये वाह्यांग इतने नवीन हो गये कि पुरानी पीढ़ी के कवियों और पाठकों के लिये एकदम अग्राह्य। जो बंगला-अंग्रेजी से परिचित नहीं थे उन्होंने इसे 'कंगारु' और 'रबड़' छंदों का काव्य कहा। जो इन भाषाओं के साहित्य से परिचित थे उन्होंने शिकायत की कि नवीन काव्य में वास्तव में नवीन कुछ भी नहीं है, सब कुछ बंगला या अंग्रेजी से लिया गया है। जहाँ तक वाह्यांगों का संबंध था बात बहुत कुछ ऐसी ही थी। हिंदी जनता कवित्त-घनाक्षरी-सवैया, दोहा-सोरठा, गजल, संस्कृत वृत्तों, उर्दू बहरों, जन-छंदों (कव्वाली, पद, चौबोला आदि) से परिचित थी। तीन चरणों या पाँच चरणों या असम चरणों के अनिश्चित-से छन्द उसके लिये 'बुझौवल'

से कम नहीं थे। इनकी भाषा तो हिंदी थी, परन्तु शब्दों का प्रयोग अटपटा था। कवियों ने साधारण, जन-प्रचलित शब्दावली का व्यवहार करना छोड़ दिया था और वे संस्कृत साहित्य से प्राप्त शब्दों का कुछ खुला, कुछ मुँदा प्रयोग करने लगे। इन शब्दों की आत्मा से वे पूर्णतः परिचित न थे, कितने ही नये संस्कृत शब्द बंगला के माध्यम से या अंग्रेजी शब्दों के आप्टे के सहारे अनुवाद किये रूप में हिंदी काव्य में पहली बार आये। वास्तव में छायावादी कवियों ने काव्यगत भाषा के क्षेत्र को इतना सीमित कर दिया था कि सारे काव्य में कुछ सौ शब्दों का ही हेर-फेर मिलेगा। इस सीमित शब्द-कोष में भी अधिकांश सामग्री एकान्तः नवीन, अतः हिंदी पाठकों के लिये दुर्बोध थी। इस प्रकार नये छन्दों और नई भाषा के मेल ने हिंदी-काव्य-रसिकों के सामने एक नई परिस्थिति उपस्थित कर दी थी। नये छंदों के साथ संगीतात्मक की वृद्धि हुई, जो द्विवेदी-युग की बँधी-सधी नीरस निसंगीत भाषा के सामने चमत्कार-सी लगती थी, नई-नई वलायें सामने आईं। शैली में भी अपूर्व परिवर्तन हो चला। जहाँ द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मक, गद्य-प्रधान, जड़ता-जड़ित भाषा शैली कविता का गला ही घोंट देती थी, वहाँ 'छायावाद' काव्य की व्यंजना-प्रधान, प्रतीकात्मक, नवीन शब्दों, शब्द-समूहों और संकेतों से भरी शैली पाठक के सामने एक ऐसा सरस, अतीन्द्रिय जगत् उपस्थित कर देती है जिससे वह अभी अर्द्ध-परिचित ही हो सकता था। इसका फल यह हुआ, जहाँ नवीनता का आभास मिला, वहाँ सहज काव्य-रस के संयोजन में बाधा पड़ी। 'रस' के लिए सहृदय ही नहीं चाहिए, उस सहृदय को काव्य-परंपरा और काव्य-रूढ़ि का पूर्व परिचय भी होना चाहिये। नई कविता परंपरा से एकदम दूर पड़ती थी, अतः रसबोध में बाधा पड़ी और नया काव्य केवल "वैचित्र्यवाद" का खिलौना समझा जाने लगा।

वास्तव में आरंभ के छायावाद काव्य में बहुत कुछ अटपटा पन है, परन्तु उसमें नये जीवन और नये सौन्दर्य की झाँकी भी मिलती है। 'छायावाद' के इस आरंभ के काव्य में मुकुटधर पांडेय, पंत और प्रसाद की कुछ रचनाएँ आती हैं। पं० रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में पांडेयजी के काव्य के कुछ नमूने दिये हैं—

हुआ प्रकाश तमोमयी मग में
मिला मुझे तू तत्क्षण जग में
दंपति के मधुमय विलास में
शिशु के स्वप्नोत्पन्न हास में
वन्य कुसुम के शुचि सुवास में
था तव क्रीड़ा स्थान (१९१७)

मेरे जीवन की लघुतरणी
आँखों के पानी में तर जा!
मेरे उर का छिपा खज़ाना
अहकार का भाव पुराना
बना आज तू मुझे दिवाना
तप्त श्वेत बूँदों में तर जा (१९१७)

जब संध्या को हट जावेगी भीड़ महान्
तब जाकर मैं तुम्हें सुनाऊँगा निज गान
शून्य कक्ष के अथवा कोने में ही एक
बैठ तुम्हारा करूँ कहाँ नीरव अभिषेक (१९२०)

पंत की वीणा और प्रसाद के चित्राधार, काननकुसुम और आँसू के छायावाद काव्य की प्रारंभिक प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला जा सकता है। सच तो यह है कि श्रीधर पाठक ने प्रकृति, देश और मनुष्य-सम्बन्धों को नवीन स्नेहात्मक ढंग से

देखने की लीक स्थापित की। रामनरेश त्रिपाठी और रामचंद्र शुक्ल जैसे अन्य क्षेत्रों में विशेषकृतो कवियों ने द्विवेदी-युग में इसे पोषित किया और शताब्दी के दूसरे दशक के आरंभ से इस नई धारा में इतना पानी आ गया कि दोनों कूल प्लावित हो उठे। बाढ़ के छंदहीन बंधनहीन जल-प्रवाह की तरह इसमें संयम की कमी थी—मात्रिक, वर्णनात्मक, तुक, अतुक, स्वच्छंद-युक्त, हलके, भारी, गेय-अगेय सैकड़ों छंदों ने न जाने कहाँ से निकल कर मासिक पत्र-पत्रिकाओं के पृष्ठों पर उछल-कूद करना शुरू किया। इस उच्छृंखलता से आलोचक वर्ग त्रस्त हो उठा। रामचंद्र शुक्ल जैसे आलोचक ने इसे "स्वच्छन्दतावाद" कहा। वास्तव में यह नई जागृति की उथल-पुथल थी।

इस नई जागरण की बेरोक उछल-कूद के बाद संयम आने लगा और १६१३—१६३० तक के काव्य को हम छायावाद के शैशव (adolescence) का काव्य कह सकते हैं। १६३०—३८ तक छायावाद-काव्य प्रौढ़ता को पहुँच चुका था और शीघ्र ही इसे नवीन सामाजिक भूमि पर उगते हुए नंए काव्य से संघर्ष लेना पड़ा। "कामायिनी" की भूमिका के लिए हमें १६१३—३० तक के काव्य (विशेषतः इस काल के प्रसाद-काव्य) से परिचित होना पड़ेगा।

पंडित रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में छायावाद की नई धारा की मुख्य प्रवृत्तियों का विश्लेषण इस प्रकार किया है—

(१) रहस्य भावना (इसके मुख्य कवि ने निराला, महादेवी और रामकुमार वर्मा)

(२) अभिव्यञ्जन-पद्धति की विशेषता की ओर एकांत लक्ष्य। प्रतीकवाद और चित्रभाषा-वाद (छायावाद के सभी कवि इन रोगों से ग्रस्त हैं)

(३) भावानुभूति का स्वरूप भी कल्पित होने लगा। जिस प्रकार अनेक प्रकार की रमणीय वस्तुओं की कल्पना की जाती है, इसी प्रकार भावानुभूति भी कल्पित होने लगी। (महादेवी, प्रसाद पर रामकुमार में यह विशेपता विशेप रूप से लक्षित है)।

(४) गीतात्मकता। उनमें अन्विति कम दिखाई पड़ती है। जहाँ यह अन्विति होती है, वहाँ समूची रचना अन्योक्ति पद्धति और की जाती है (निराला, पंत, महादेवी, प्रसाद में विशेप लक्ष्य)

(५) साम्यभावना का प्रसार। शेप सृष्टि के साथ मनुष्य के गूढ़ संबन्ध की कल्पना और इसलिये हृदयतत्त्व (सहानुभूति) का विस्तार (देखिये निराला)।

(६) प्रकृति और उसके अनंत रूपों और व्यापारों के प्रति रहस्याश्चर्यमयी दृष्टि और इन सब पर स्त्री-सौन्दर्य और यौनभावनाओं का आरोप (सब कवि, विशेपकर पंत)।

(७) मानसिक सूक्ष्म विकारों और मनोभावों को पकड़ने की चेष्टा (प्रसाद की 'प्रलय की छाया' और निराला का तुलसीदास' काव्य इसी श्रेणी की वस्तुएँ हैं)।

(८) अन्य विषय रहे—वासनात्मक प्रणयोद्गार, वेदना-विवृत्ति, सौन्दर्य-संघटन, मधुचर्या, अतृप्ति, व्यंजना, जीवन का अवसाद, विपाद और नैराश्य।

पण्डित रामचंद्र शुक्ल ने छायावाद काव्य के दो अर्थ लिए हैं। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका संबन्ध काव्यवस्तु में होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। दूसरा अर्थ व्यापक है—काव्यशैली या पद्धति विशेपकर एक निश्चित प्रयोग। पहले वर्ग का अंश रहस्यवाद को जन्म देता है जो अंग्रेजी के 'Misticism' का प्रतीक है

और दूसरा प्रतीकवाद को जिसे अंग्रेजी में 'Symbolism' कहते हैं। इस प्रकार उन्होंने छायावाद की मुख्यात्मा को रहस्यात्मक प्रेम-विरह का लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक शैली मे प्रकाशन मात्र समझा है। (देखिये, 'इतिहास' : नया संस्करण पृ० ८०५—८१७)।

अन्य आलोचक शुक्लजी से पूर्णतया सहमत नहीं हैं। पंडित नंददुलारे वाजपेयी ने 'छायावाद' के और भी व्यापक, गहरे अर्थ किये हैं। उनका कहना है—"छायावाद को हम पण्डित रामचन्द्र शुक्ल जी के कथनानुसार केवल अभिव्यक्ति की एक लाक्षणिक प्रणाली नहीं मान सकेंगे। इसमें एक नूतन सांस्कृतिक मनोभावना का उद्गम है और एक स्वतंत्र दर्शन की नियोजना भी। पूर्ववर्ती काव्य से इसका स्पष्टतः पृथक अस्तित्व और गहराई है, ('जयङ्कर प्रसाद' पृ० १८)। जान पड़ता है, उनके इस कथन का आधार 'कामायिनी' है। "इस नवीन प्रवर्तन के मूल में एक स्वातंत्र्य-लालसा, शक्ति की अभिज्ञता, और सांस्कृतिक द्वन्द्व की एक अनिर्दिष्ट स्थिति देख पड़ती है। ये सभी एक कल्पना-विशिष्ट दर्शन के अंग बने हुए हैं जिसमें बड़ी व्यापक सहानुभूतियाँ हैं। इस नवीन दर्शन में कल्पना, भावना और कर्म-चेतना की सम्मिलित झाँकी है।" (वही, पृ० १७-१८)। श्री जयशंकर प्रसाद ने भी अपने एक निबंध में 'छायावाद' को व्याख्या की है और ऐतिहासिक रूप में उसे हरिश्चंद्र द्वारा स्थापित यथार्थवाद का ही अधिक व्यापक और सूक्ष्म रूप माना है। परन्तु उन्होंने सांस्कृतिक भूमि पर चाहे रहस्यवाद को दुःखवाद पर ही क्यों न स्थापित किया हो, वह उसे मूलतः अभिव्यंजना की एक शैली मानते हैं और प्राचीन व्यंग-शैलीकारों और लक्षणा-व्यंजना पर बल देनेवाले आचार्यों से उसका संबन्ध जोड़ते हैं। प्रसाद के काव्य, विशेषतयः

'कामायिनी' को समझने के लिए उनका यह दृष्टिकोण महत्त्वपूर्ण है। उनके लिए छायावाद के दो पक्ष हैं :

(१) सौन्दर्य-बोध और तज्जन्य दुःखवाद या करुणावाद,

(२) नवीन लाक्षणिक या व्यंगात्मक शैली।

इन दोनों आधारों को सामने रख कर प्रसाद को भाषा और छंद के नये प्रयोग करने पड़े। छंदों में नवीनता के आविष्कार के सम्बन्ध में उनका आग्रह अधिक नहीं था। निराला और पंत इस ओर अधिक उन्मुख हुए। प्रसाद के करुणा और विलासात्मक सौन्दर्य के चित्रण और उसके नाश पर आत्मा के गहरे दुःख को ही व्यक्त किया।

[२]

जयशंकर प्रसाद की प्रारंभिक रचनाएँ हैं चित्राधार, कानन-कुसुम, महाराणा का महत्त्व, करुणालय, प्रेमपथिक। इन रचनाओं में छायावाद से पहले के काव्य की मनोभूमि के दर्शन होते हैं। वास्तव में प्रेमपथिक (१९१३) को प्रसाद के नए काव्य का पहला चरण समझना चाहिये। १९१८ में प्रसाद की २४ कविताओं का संग्रह 'झरना' नाम से सामने आया। इसके कुछ बाद 'आँसू' के दर्शन हुए। इसमें कवि ने भाषा, भाव, व्यंजना की एक नई भूमि उपस्थित की थी, जैसे—

अवकाश असीम सुखों से
आकाश तरंग बनाता
हँसता-सा छाया - पथ में
नक्षत्र - समाज दिखाता
नीचे विपुला धरणी है
दुखभार वहन-सी करती,

अपने खारे आँसू से
करुणा-सागर को भरती

(यहाँ कवि ने प्रकृति और मानव के चिरविरोध को स्पष्ट किया है। जब आकाश के अनन्त शून्य में इन्द्रधनुषी छायाओं के सुखचित्र चलते रहते हैं, जब तारों का समाज हँसता दिखलाई पड़ता है, तब भी यह हमारी पृथ्वी दुःख के बोझ को ढोती है। उसके आँसू करुणा-सागर को निरंतर भरते रहते हैं। प्रेमी की कठोर विमुखता से टूटे हुए हृदय को प्रकृति और मानव का यह चिरविरोध अत्यंत कटु लगता है)। इन पंक्तियों में जगज्जीवन के दुःख और हाहाकार के ऊपर सुखों की अनंत तरंगों को प्रवाहित करने वाली करुणामयी असीम सत्ता की ओर इंगित किया गया है। कवि की प्रार्थना है—

चिरदग्ध दुखी यह वसुधा
आलोक माँगती तब भी,
द्रुम-तुहिन बरस दो कन-कन,
यह पगली सोचे अब भी

परन्तु कवि की वेदना का आधार क्या है, यह समझ में नहीं आता। व्यापक रूप से जगती के दुःख (रोग, शोक, जरा, मरण) इस वेदना का आधार हो सकते हैं, एक असीम सत्ता की मिलनेच्छा इसके पीछे हो सकती है, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन की अनेक बाधाएँ, मर्यादाएँ कवि को किसी अज्ञात करुणा-स्रोत और सांत्वना-भूमि की ओर इशारा कर सकती हैं, परन्तु स्वयं कवि ने इन बाधाओं-मर्यादाओं को स्पष्ट नहीं किया है। उपर्युक्त वीथिका के न होने के कारण हमारे पाठक इस रहस्यमय वेदनावाद और करुणावाद को समझ नहीं सके और उन्होंने उसकी हँसी उड़ाई अथवा उसे अपार्थिक जीवों की चुहल मात्र माना।

प्रसाद ने जीवन को एक असीम चेतना-सागर में उठी हुई एक आनंद-लहर माना है। इस लहर के अनेक उत्थान-पतन हैं, अनेक भँवर, अनेक आवर्त्तन-प्रवर्त्तन; परन्तु इसके ही भीतर आनन्द का वह मधुमय स्रोत है, जो मनुष्य को अपनी सत्ता के वास्तविक आनंद से परिचित कराता है। इस असीम आनंद की अन्तः प्राप्ति के लिए कवि उस महान् चेतन सत्ता की ओर देखता है जो सृष्टि के अनेक रूपों में व्याप्त है और जो अज्ञात होने पर भी आत्मा के लिए चिर-परिचित है—

तुम हो कौन और मैं क्या हूँ ?
　　इसमें क्या है धरा, सुनो !
मानस-जलधि रहे चिर-चुम्बित,
　　मेरे क्षितिज उदार बनो

इस हलचल भरे संसार से हट कर कवि एक अत्यन्त दूर के रहस्यमय लोक में जाना चाहता है जहाँ जीवन की उत्तेजना से अलग वह अपनी सत्ता का आनन्द प्राप्त कर सके। इस संबन्ध में 'लहर' का एक सुन्दर गीत उपस्थित किया जा सकता है—

ले चल, वहाँ भुलावा देकर
　　मेरे नाविक ! धीरे धीरे
जिस निर्जन में सागर लहरी
अंबर के कानों में गहरी
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो
　　तज कोलाहल की अवनी रे
जिस गम्भीर मधुर छाया में—
विश्व चित्रपट चल माया में—
विभुता विभु-सी पड़े दिखाई
　　दुःख सुख वाली सत्य बनी रे

श्रम-विश्राम क्षितिज वेला से—
जहाँ सृजन करते मेला से—
अमर जागरण, उषा नयन से—
बिखराती हो ज्योति घनी रे

इसे हम 'पलायनवाद' भी कह सकते हैं, परन्तु इस 'पलायनवाद' और अंग्रेजी रोमांटिकों के पलायनवाद में अंतर है। अंग्रेजी पलायनवादी प्रकृति का आश्रय लेता है, परन्तु यहाँ प्रकृति आश्रय-तत्त्व की ओर ले जाने वाली एक बीच का विश्रामस्थल मात्र है।

[३]

ऊपर जो लिखा गया है, वह 'कामायिनी' की भूमिका के लिए अनिवार्य जैसा था। इस वीथिका से प्रसाद की इस प्रौढ़तम कृति को भली भाँति समझा जा सकेगा।

'कामायिनी' के नायक मनु हैं। इन्हीं देव-संतान को लेकर कथा चलती है। जल-प्रलय में सारी देवसृष्टि जलमग्न हो गई, केवल कुछ देव-संतान बच रहे। मनु, श्रद्धा, इड़ा आदि इसी प्रकार की देव-संतान थे। जल-प्रलय से संतप्त मनु पर्वत के एक ऊँचे शिखर पर बैठकर जलमग्न पृथ्वी का धीरे-धीरे निकलना देखते थे। देव-संतान के मन में पहली बार चिंता का जन्म हुआ (चिंता, सर्ग १)। उषा का उदय हुआ। प्रकृति एक बार फिर हँसने लगी। मनु के मन में भी आशा का संचार हुआ। उन्होंने एक गुहा में अपना स्थान बनाया और अग्निहोत्र प्रारंभ कर एक बार फिर कर्ममयी देवसंस्कृति का आवाहन किया (आशा, सर्ग २)। एक दिन यों ही समुद्रतट पर अकस्मात् श्रद्धा से भेंट हो गई। श्रद्धा उन्हें तपमय जीवन से हटा कर दया, माया, ममता-संपन्न मानव-जीवन की ओर अग्रसर करती है (श्रद्धा, सर्ग ३)। श्रद्धा मनु के साथ रहने लगी। उधर धीरे-धीरे काम

के स्वर मनु के हृदय में बोलने लगे (काम, सर्ग ४)। जीवन के अनेक उपकरण इकट्ठे होने लगे। काम-बाला श्रद्धा के प्रति उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया (वासना, सर्ग ५) मनु यज्ञ और कर्म में लग गये। जल-विप्लव से बचे हुए असुर पुरोहित किलात और आकुलि यज्ञ के लिये प्रस्तुत होते हैं। मनु पशुयज्ञ करते हैं। परन्तु श्रद्धा इस पशुवध से कुण्ठित हो जाती है। परन्तु श्रद्धा को मनते देर नहीं लगती। मनु जीवन में एक नये सुख का अनुभव करते हैं (कर्म, सर्ग ७)। इस नारी-विजय के बाद मनु का जीवन बदल जाता है। उनमें उच्छृङ्खल कर्मठता जाग उठती है। उधर श्रद्धा आसन्न प्रसव की चाह में अधीर है। एक सुन्दर लता-कुञ्ज बनाती है। मनु नहीं चाहता कि श्रद्धा का प्रेम इस तरह बँट जाय। वह स्वच्छंद बना रहेगा। उसमें ईर्ष्या का उदय होता है और वह श्रद्धा को छोड़ कर चला जाता है (ईर्ष्या, सर्ग ८)। हृदय में तर्क-वितर्क का माया-जाल लिये अंतः संघर्ष में तपते हुए मनु सरस्वती के किनारे घूमते हैं। वहीं उन्हें सारस्वत प्रदेश की अधिष्ठात्री देवी इड़ा का अकस्मात् परिचय होता है। सारस्वत प्रदेश उजड़ चुका है—इड़ा मनु का स्वागत करती है और शासन-सूत्र उसके हाथ में दे देती है (इड़ा, सर्ग ६)।

उधर श्रद्धा प्रतीक्षा में है। उसकी आकुल विरह-वेदना का अत्यंत स्पष्ट चित्र उपस्थित किया गया है। इस सारे दुखी वातावरण में उसका एकमात्र सहारा है, उसका बालक मानव (मनुपुत्र) जो पिता का मुख नहीं देख पाया है। श्रद्धा (कामायिनी) स्वप्न देखती है—मनु किसी दूर प्रदेश में किसी सुकुमारी (इड़ा) के संयोग से एक नई देवसृष्टि की रचना करते हैं, परन्तु प्रजा असंतुष्ट होकर विरोध पर तुल जाती है (स्वप्न, सर्ग १०)। वास्तव में श्रद्धा का स्वप्न सत्य का आभास-मात्र है। सारस्वत

प्रदेश में प्रजापक्षी किरात और आकुलि (असुर) और राजपक्षी मनु (देव) में भीषण युद्ध हुआ जिसमें मनु आहत होकर गिर पड़े (संघर्ष, सर्ग ११)। युद्ध के बाद सारस्वत प्रदेश जैसे उजड़ गया और इड़ा और मनु को भीषण पश्चात्ताप ने घेर लिया। इड़ा तर्क-वितर्क करती बैठी थी कि श्रद्धा की पुकार कानों में आई जो 'मानव' का हाथ पकड़े मनु को खोजती हुई आ पहुँची थी। वेदी-ज्वाला के प्रकाश में घायल मनु को देखकर श्रद्धा का हृदय उमड़ पड़ा। मनु ने आँखें खोलीं। बिछुड़े मिले। श्रद्धा के स्नेहोपचार ने मनु की आँधी को शांत किया, परन्तु प्रातःकाल सबने देखा, मनु नहीं है। शांति की खोज में वे श्रद्धा, इड़ा और मानव को छोड़ कर कहीं दूर चले गये (निर्वेद, सर्ग १२)। सारस्वत प्रदेश को त्याग इड़ा, मानव और श्रद्धा मनु की खोज में निकले और मंदाकिनी के किनारे एक पर्वत-प्रदेश में तप करते हुए मनु मिल गये। श्रद्धा मनु को ज्ञान, कर्म और भाव-लोक (त्रिपुर) का दर्शन कराती है और दोनों प्राणी इसी संधिभूमि में आनन्द की साधना करते हैं (रहस्य, १३)। इड़ा और मानव इन संसार-त्यागी महान् आत्माओं से मिलने आते हैं। मनु मानव को उपदेश देते हैं। प्रकृति के मादन दृश्य के साथ पटाक्षेप (आनन्द, १४)

स्पष्ट है, केवल कथा-वस्तु के नाम पर विशेष मौलिकता नहीं है। जैसा भूमिका में कहा गया है, कथा पौराणिक सूत्रों से आगे बढ़ती है। "श्रद्धा और मनु के सहयोग से मानवता के विकास की कथा को रूपक के आवरण में चाहे पिछले काल में मान लेने का वैसा ही प्रयत्न हुआ है, जैसा कि सभी वैदिक इतिहासों के साथ निरुक्त के द्वारा किया गया, परन्तु मन्वंतर के अर्थात् मानवता के नवयुग के प्रवर्त्तक के रूप में मनु की कथा आर्यों की अनुश्रुति में दृढ़ता से मानी गई है। इसीलिए वैवस्वत मनु को ऐतिहासिक पुरुष मानना उचित है।" (आमुख, ३) "यदि श्रद्धा

और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है, तो भी बड़ा ही भावमय और श्लाघ्य है" (वही, ४)। "देव-गण के उच्छृङ्खल स्वभाव, अर्थात् निर्बाध आत्मतुष्टि में अंतिम अध्याय लगा और मानवीय भाव अर्थात् श्रद्धा और मनन का समन्वय होकर प्राणी को एक नये युग की सूचना मिली। इस मन्वन्तर के प्रवर्त्तक मनु हुए" (वही, ४)। "श्रद्धा काम-गोत्र की बालिका है, इसीलिए श्रद्धा नाम के साथ उसे कामायिनी भी कहा जाता है" (वही, ५)। "मनु प्रथम पथ-प्रदर्शक और अग्निहोत्र प्रज्वलित करने वाले तथा अन्य कई वैदिक कथाओं के नायक हैं × × × जलप्लावन का वर्णन शतपथ ब्राह्मण के प्रथम कांड के ८वें अध्याय से आरंभ होता है; जिसमें उनकी नाव के उत्तरगिरि हिमवान में पहुँचने का प्रसंग है। वहाँ ओघ के जल का अवतरण होने पर मनु भी जिस स्थान पर उतरे उसे मनोरवसर्पण कहते हैं" (वही, ५-६)। श्रद्धा के साथ मनु का मिलन होने के बाद उसी निर्जन प्रदेश में उजड़ी हुई सृष्टि को फिर से आरम्भ करने का प्रयत्न हुआ। किन्तु असुर पुरोहित के मिल जाने से पशुबलि की इस यज्ञ के बाद मनु में जो पूर्वपरिचित देव-प्रवृत्ति जाग उठी, उसने इड़ा के संपर्क में आने पर उन्हें श्रद्धा के अतिरिक्त एक दूसरी ओर प्रेरित किया।

अनुमान किया जा सकता है कि बुद्धि का विकास, राज्य-स्थापना आदि इड़ा के प्रभाव से ही मनु ने किया। फिर तो इड़ा पर भी अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा के कारण मनु को देव-गण का कोप-भाजन होना पड़ा (वही, ७)।

इस वैदिक आख्यान और पौराणिक गाथा को निरुक्तिकारों ने सांकेतिक रूप देने का प्रयत्न किया।

मनु = मन

श्रद्धा = श्रद्धा
[कामायिनी = काम (इच्छा) की जाया]
इड़ा (इला) = बुद्धि

इड़ा मनुष्यों का शासन करती है—इड़ा मकृण्वन्मनुपस्य मानसीम १-३१-११ ऋग्वेद। शतपथ ब्राह्मण में इड़ा (वाक्-पुत्री) और मनु (मन) अपने-अपने महत्त्व के लिये झगड़ते हैं।

स्पष्ट है कि इन संकेतों के आधार पर एक विशद रूपक की सृष्टि हो सकती है। मनु को श्रद्धा का सहज ही परिचय होता है, श्रद्धा सहज ही वरण्य है, और मानव इसी की संतान है। प्रगति का मूलमंत्र यही है कि मन श्रद्धा-सम्पन्न होकर आगे बढ़े। परन्तु मन और श्रद्धा के बीच में एक महान् व्यवधान के रूप में आती है 'इड़ा'। बुद्धि और श्रद्धा का द्वन्द्व चलता ही रहता है। मन और श्रद्धा के सहयोग से जिस सृष्टि का जन्म होता है, उसे असुर (अहं)-भाव नष्ट कर देता है। देवसृष्टि में आसुरी आनंद-भाव का मिश्रण मानवता का ह्रास है। इस आसुरी आनन्द-भाव में प्रेम के स्थान पर वासना और त्याग के स्थान पर आत्मतृप्ति है। प्रेम और त्याग की मूर्ति श्रद्धा (आत्मसमर्पण) को छोड़ कर मनु का चले जाना इसी संघर्ष का प्रतीक है।

इड़ा के संयोग से मनु दूसरी सृष्टि रचते हैं। वह है बुद्धिवादी विज्ञानमयी सृष्टि। इस विज्ञानमयी ऐश्वर्यशाली सृष्टि का मनु ने बड़ा सुन्दर चित्रण किया है—

मनु का नगर बसा है सुन्दर सहयोगी हैं सभी बने
दृढ़ प्राचीरों में मन्दिर के द्वार दिखाई पड़े घने
वर्षा-धूप शिशिर में छाया के साधन संपन्न हुए
खेतों में हैं कृषक चलाते हल प्रमुदित श्रमस्वेद सने
उधर धातु गलते, बनते हैं आभूषण औ' अस्त्र नये
कहीं साहसी ले आते हैं मृगया के उपहार नये

पुष्प-लावियाँ चुनती हैं वन कुसुमों की अर्धविकच कली
गंधचूर्ण था लोध कुसुमरज, जुटे नवीन प्रसाधन थे
घन के आघातों से होती जो प्रचंड ध्वनि रोष भरी
तो रमणी के मधुर कंठ से हृदय मूर्च्छना उधर ढली
अपने वर्ग बनाकर श्रम का करते सभी उपाय वहाँ
उनकी मिलित प्रयत्न प्रथा से पुर की थी दिखती निखरी
देशकाल का लाघव करते थे प्राणी चंचल से हैं
उसका घन एकत्र कर रहे जो उनके सम्बल में हैं
बढ़ा ज्ञान-व्यवसाय, परिश्रम बल की विस्तृत छाया में
नर-प्रयत्न से ऊपर आवें जो कुछ वसुधातल में हैं
सृष्टि बीज अंकुरित, प्रफुल्लित, सफल हो रहा हरा-भरा
प्रलय-बीज भी रक्षित मनु से वह फैला उत्साह-भरा
आज सचेतन प्राणी अपनी कुशल कल्पनाएँ करके
स्वालम्ब की दृढ़ धरती पर खड़ा, कहीं अब नहीं डरा

परन्तु बुद्धि (इड़ा) मन पर राज करती है, उसके शासन में नहीं आती। इसी से मन (मनु) क्षोभ से पीड़ित रहते हैं। वह कहता है—

नहीं, अभी मैं रिक्त रहा

देश बसाया पर उजड़ा है सूना मानसदेश यहाँ
सुन्दर मुख, आँखों की आशा, किन्तु हुए यह किसके हैं
एक बाँकपन प्रतिपद शशि का, भरे भाव कुछ रिसके हैं
कुछ अनुरोध मानमोचन का करता आँखों का संकेत
बोल अरी मेरी चेतनते ! तू किसकी, ये किसके हैं ?

मनु में इड़ा (बुद्धि) को स्ववश करने की लालसा अत्यंत तीव्रता से जाग्रत हो जाती है। इड़ा मनु (मन) की दुहिता है। उस पर अधिकार करने की प्रवंचना के कारण प्रकृति में विस्फोट होता

है। आत्मजा प्रजा के प्रति कुत्सित भाव ! इड़ा-व्यापी चेतना में विद्रोह की ज्वाला जल उठी ।

आहत मनु को इस बार इड़ा (बुद्धि-व्यापार) से घृणा हो जाती है। श्रद्धा उन्हें एक बार फिर सहारा देती है। इड़ा (बुद्धि) प्रताड़ित मन को श्रद्धा ही तो सांत्वना दे सकती है। उन्हें श्रद्धा के प्रति अपने अत्याचार की याद आती है और वे भाग जाते हैं। उधर इड़ा श्रद्धा से क्षमा-याचना करती है। इस प्रकार (इड़ा) बुद्धि का श्रद्धा से व्यवहार कर लेखक एक नये समन्वय की ओर संकेत करता है। इड़ा (बुद्धि) कहती है—

अग्रसर हो रही यहाँ फूट
सीमाएँ कृत्रिम रहीं टूट
श्रम-भाग वर्ग बन गया जिन्हें
अपने बल का है गर्व उन्हें
नियमों की करनी सृष्टि जिन्हें
विप्लव की करनी वृष्टि उन्हें

सब मत्त पिये लालसा घूँट
मेरा साहस अब गया छूट
मैं जनपद कल्याणी प्रसिद्ध
अब अवनति कारण हूँ निषिद्ध

मेरे सुविभाजन हुए विषम
टूटते नित्य बन रहे नियम
नाना केन्द्रों में जलधर सम
घिर हट, बरसे ये उपलोपम
यह ज्वाला है इति है समिद्ध
आहुति बस चाह रही समृद्ध

(दर्शन)

'कामायिनी' का अपना एक संदेश है। उसे हम दार्शनिक पक्ष
ाहीं कह सकते—जीव, आत्मा, परमात्मा जैसे गंभीर विषयों
ार कवि को कुछ भी कहना नहीं है। आधुनिक जिज्ञासा उतनी
प्राध्यात्मिक नहीं है, जितनी आधिभौतिक। अतः आज के कवि
े लिये जीवन-दर्शन ही सब कुछ है। मनुष्य अपनी नैसर्गिक
वेभिन्न शक्तियों का प्रयोग कैसे करे? उसके जीवन का क्या
तक्ष्य हो? वैयक्तिक और सामूहिक चेतना में समन्वय कैसे
थापित हो? ज्ञान, श्रद्धा कर्म इन त्रिसत्यों को किस अनुपात में
ाहण किया जाये। वर्तमान युग विज्ञानमयी तर्कप्रवीण बुद्धिमत्ता
का युग है। पिछला युग श्रद्धामूलक विश्वास का युग था। तब
ााव की विजय थी अतः तर्क (बुद्धि) की। प्रसाद ने दोनों युगों
ं ठीक पटरी बिठाने की चेष्टा की है। वर्तमान समता विज्ञान-
ाधान, बुद्धि-जीवी है—इसीलिये अधिकारों पर बल है, और
ार्ग-संघर्ष के बादल चारों ओर उमड़ रहे हैं। प्रसाद का संदेश
ै कि विज्ञान और बुद्धि की अपनी सीमाएँ हैं—ये आसुरभाव
को जाग्रत कर सकते हैं। देवभाव की जाग्रति के लिये श्रद्धा की
ओर देखना होगा। आनन्द ही सत्य है। आनन्द शिव (कल्याण-
ूर्ति) भी हैं। इसी आनन्द की प्राप्ति भावी जीवनदर्शन होगा।
ासके लिये हृदय-बुद्धि का सामंजस्य आवश्यक है। इड़ा (बुद्धि)
और श्रद्धा के सहयोग से ही मानव (मननशील प्राणी) सच्चे स्वर्ग
ुख की प्राप्ति कर सकेगा। ध्येय न इड़ा है, न श्रद्धा, आनन्द है।
ास विश्व के मूल में आनन्द ही है, जिसके प्रतीक रूप में ऋषियों
ा शंकर के तांडव-नृत्य कल्पना की है। प्रत्येक जीव इस
ाहाआनंद का प्रतीक है। स्फुलिंग है, जिस प्रकार ज्वाला
अरणि-द्वारा प्रगट होती है, उसी प्रकार श्रद्धा-बुद्धि के
समन्वय से युक्त जीवन में आनंद की अग्नि स्वतः फूट पड़ेगी।
ीवन के भीतर का आनन्द बाहर प्रगट होगा और वह इस

चारों ओर नृत्य करतीं ज्यों
रूपवती रंगीन तितलियाँ
इस कुसुमाकर के कानन के
अरुण पराग पटल छाया में
इठलातीं सोतीं जगतीं ये
अपनी भावमयी माया में
वह संगीतात्मक ध्वनि इनकी
कोमल अंगड़ाई है लेती
मादकता की लहर उठाकर
अपना अंबर तर कर देती
आलिङ्गन-सी मधुर प्रेरणा
छू लेती, फिर सिहरन बनती;
नव अलम्बुना की क्रिड़ा-सी
खुल जाती है, फिर जा मुँदती
यह जीवन की मध्यभूमि है
रसधारा से सिञ्चित होती;
मधुर लालसा की लहरों से
यह प्रवाहिका स्पंदित होती
जिसके तट पर विद्युतकण से
मनोहारिणी आकृति वाले
छायामय सुषमा में विह्वल
विचर रहे सुन्दर मतवाले
सुमन-संकुलित भूमिरंध्र से
मधुरगंध उठती रसभीनी;
वाष्प अनन्य फुहारे इसमें
छूट रहे, रस-बूँदें झीनी

घूम रही है यहाँ चतुर्दिक
चलचित्रों-सी संसृति छाया
जिस आलोक-विन्दु को घेरे
वह बैठी मुस्क्याती माया

ज्ञानलोक का चित्र

प्रियतम, यह तो ज्ञान-क्षेत्र है
सुख दुःख से है उदासीनता
यहाँ न्याय निर्मम चलता है
बुद्धि-चक्र, जिसमें न दीनता
अस्ति-नास्ति का भेद, निरङ्कुश
करते ये अणु तर्क युक्ति से
ये निस्संग किन्तु कर लेते
कुछ सम्बन्ध-विधान युक्ति से
यहाँ प्राप्य मिलता है केवल
तृप्ति नहीं, कर भेद बाँटती
बुद्धि, विभूति, सकल सिकता-सी
प्यास लगी है, ओस चाटती
न्याय, तपस, ऐश्वर्य में पगे
ये प्राणी चमकीले लगते;
इस निदाघ-मरु में, सूखे से
स्रोतों के तट जैसे जगते
मनोभाव से कार्य-कर्म का
समतोलन में दत्त-चित्त से;
ये निस्पृह न्यायासन वाले
चूक न सकते तनिक विच से

अपना परिमित पात्र लिये ये
बूँद बूँद वाले निर्भर से ;
मांग रहे हैं जीवन का रस
बैठे यहाँ पर अजर-अमर से

× × ×

सामञ्जस्य चले करने ये
किंतु विषमता फैलाते हैं ;
मूल स्वत्व कुछ और बताते
इच्छाओं को भुठलाते हैं

कर्मलोक का चित्र

कर्मलोक सा घूम रहा है
यह गोलक बन नियति-प्रेरणा ;
सब के पीछे लगी हुई है
कोई व्याकुल नयी एषणा
श्रममय कोलाहल, पीड़नमय
विकल प्रवर्तन महामन्त्र का
क्षण भर भी विश्राम नहीं है
प्राण दास है क्रियातंत्र का
भाव-राज्य के सकल मानसिक
सुख यों दुःख में बदल रहे हैं
हिंसा गर्वोन्नत हारों में
ये अकड़े अणु टहल रहे हैं

× × ×

नियति चलाती कर्म-चक्र यह
तृष्णा-जनित ममत्व कामना

'कामायिनी' [क]

पाणिपादमय पञ्चभूत की
यहाँ हो रही है उपासना
यहाँ सतत संघर्ष, विफलता
कोलाहल का यहाँ राज्य है
अंधकार में दौड़ लग रही
मतवाला यह सब समाज है

इन 'लोकों' से ऊपर है 'शिव' का आनन्दलोक—

क्षण भर में सब परिवर्तित
अणु-अणु थे विश्वकमल के
पिंगलपराग से मचले
आनन्द सुधारस छलके
अति मधुर गंध वह वहता
परिमल बूँदों से सिञ्चित
सुखस्पर्श कमल केसर का
कर आया रज से रञ्जित

× × ×

वल्लरियाँ नृत्य-निरत थीं
बिखरी सुगंध की लहरें
फिर वेणुरंध्र से उठकर
मूर्च्छना कहाँ अब ठहरी?
गूँजते मधुर नूपुर से
मदमाते होकर मधुकर
वाणी की वीणा ध्वनि-सी
भर रही शून्य में झिलकर

(आनंद)

उपस्थित करने का पहला प्रयत्न 'कामायिनी' है। कथा एवं कथा-विकास की दृष्टि से यह कृति महत्त्वपूर्ण नहीं कही जा सकती। सारी कथा का कथा रूप और रूपक रूप एक साथ चलाने का प्रयत्न हुआ है। इससे कथा में उपयोगी विकास नहीं हो सका। और कथा की स्थूलता रूपक में बाधक होती है। सच तो यह है कि कामायिनी की भूमि, भाषा, शैली, छंद—सभी नई वस्तुएँ हैं। इतने पक्षों में एक साथ नवीनता होने से काव्य जन-मन-भूमि से अलग जा पड़ा है। 'मानस' के कवि की लोकप्रियता का कारण यह है कि उसने सभी भूमियों में एकांत मौलिकता का आग्रह नहीं किया है। रामकथा जनपरिचित है। छन्दों को अवधी के सूफी कवियों और उनसे भी पहले ही सिद्ध, जैन और सामंत काव्य ने जनता को परिचित करा दिया था। भाषा अभिधात्मक है और प्रसादपूर्ण, अतः मध्ययुग के ग्रामीण कृपक मन को भी इसके समझने में कोई कठिनाई नहीं पड़ी। जहाँ तक राम के ब्रह्मवाद, रामभक्ति, रामभक्तिमय मर्यादा-प्रधान जीवन और ज्ञान के ऊपर भक्ति की स्थापना की बात है, वहाँ तक तुलसी एकदम मौलिक हैं। 'प्रसाद' की रचना में मौलिकता के पक्षों की अनेकता उसकी लोकप्रियता में बाधक होगी, यह निश्चय है। उनके इस छोटे-से काव्य में कथा मौलिक ही नहीं है, रूपक-तत्त्वों और मानसिक हलचलों पर खड़ी होने के कारण, वह नितांत जटिल है। उसकी रूपकात्मकता उसकी सरसता में बाधक होती है और उसका जीवन-दर्शन आत्मा-परमात्मा विषयक न होने पर भी एकांततः सरल नहीं है।

स्पष्ट है कि कथा में नहीं, काव्य की शैली और उसकी आत्मा में परिवर्तन लाने की दृष्टि से प्रसाद अधिक महत्त्वपूर्ण हैं—"उनमें एक नई कल्पना-शीलता, नूतन जागरूक चेतना, मानस-वृत्तियों की सूक्ष्मतर और प्रौढ़तर पकड़, एक विलक्षण अवसाद,

विस्मय, संशय और कौतूहल जो नई चेतना का सूक्ष्म प्रभाव है, प्रगट हो रहा है। ये ही काव्य में छायावाद के उपकरण बन कर आये। इस नवीन प्रवर्त्तन के मूल में एक स्वातंत्र्य लालसा, शक्ति की अभिज्ञता और सांस्कृतिक द्वन्द्व की अनिर्दिष्ट स्थिति देख पड़ती है (वही, १८)। सब जगह वह बराबर सफल नहीं सही, परन्तु अपने क्षेत्र में उनकी सफलताएँ भी कम नहीं हैं।

प्रसाद के काव्य की सबसे सुन्दर चीज़ उनकी उदात्त और संपन्न कल्पना है। उपमाओं-उत्प्रेक्षाओं के रूप में यह 'कामायिनी' भर में बिखरी पड़ी है। आधुनिक किसी भी कवि से वह इस क्षेत्र में नूतन, प्रगतिशील और शक्तिवान है। पहले ही सर्ग में 'चिंता' को कवि की प्रचुर कल्पना अनेक रंग उपस्थित करती है—

ओ चिन्ता की पहली रेखा
अरी विश्ववन की व्याली
ज्वालामुखी।स्फोट के भीषण
प्रथम कंप-सी मतवाली!
हे अभाव की चपल बालिके,
री ललाट की खल रेखा
हरी-भरी सी दौड़-धूप, ओ
जलमाया की चल-रेखा
इस ग्रहकक्षा की हलचल री
तरल गरल की लघु लहरी
जरा अमर जीवन की, और न
कुछ कहने वाली, बहरी!
अरी व्याधि की सूत्रधारिणी
अरी आधि, मधुमय अभिशाप

हृदय गगन में धूमकेतु सी
पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप
आह ! घिरेगी हृदय लहलहे
खेतों में करका-घन सी
छिपी रहेगी अंतरतम में
सब के तू निगूढ़-धन सी

(चिन्ता)

यही कल्पना की प्रचुरता स्वच्छन्द काव्य का प्राण है, परन्तु यही उसे दुर्भेद्य बना देती है। जहाँ अभिव्यंजना की वक्रता भी आ मिली है, वहाँ साधारण मनीषा चमत्कृत होकर ही रह जाती है जैसे मृत्यु पर लिखी हुई इन पंक्तियों की भंगिमा—

मृत्यु, अरी चिर निद्रे ! तेरा
अंक हिमानी-सा शीतल
तू अनन्त में लहर बनाती
काल-जलधि की-सी हलचल
महानृत्य का विषम सम, अरी
अखिल स्पंदनों की तू माप
तेरी ही विभूति बनती है
सृष्टि सदा देकर अभिशाप
अंधकार के अट्टहास-सी
मुखरित सतत चिरंतन सत्य
छिपी सृष्टि के कण-कण में तू
यह सुन्दर रहस्य ही नित्य
जीवन तेरा क्षुद्र अंश है
व्यक्त नील घन-माला में
सौदामिनी-संधि सा सुन्दर
क्षण भर रहा उजाला में (चिंता)

श्रद्धा के प्रथम दर्शन का चित्र आधुनिक साहित्य के नारी सौन्दर्य अंकन की नई तूलिका ने एक अतीव नूतन कलम की सृष्टि की है—

मसृण गांधार देश के नील
रोम वाले मेषों के चर्म
ढँक रहे थे उसका वपुकांत
बन रहा था वह कोमल वर्म
नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-वन बीच गुलाबी रंग
आह ! वह मुख ! पश्चिम के व्योम
बीच जब घिरते हों घन श्याम
अरुण रविमंडल उनको भेद
दिखाई देता हो छवि-धाम
या कि नव इन्द्र नील लघु शृंग
फोड़ कर धधक रही हो कांत
एक लघु ज्वालामुखी अचेत
माधवी रजनी में अश्रांत
घिर रहे वे घुँघराले बाल
अंस अवलंबित मुख के पास
नील घन-शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास
और उस मुख पर वह मुस्क्यान !
रक्त-किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम

नित्य यौवन छवि से ही दीप्त
विश्व की करुण कामना मूर्ति
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण
प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति।
उषा की पहली लेखा कांत
माधुरी से भींगी भर मोद
मद-भरी जैसे उठे सलज्ज
भोर की तारक द्युति की गोद (श्रद्धा)

कहीं-कहीं उपमाएँ अत्यन्त नवीन हैं। जैसे उद्भ्रांत मनु प्रथम दर्शन के समय अपना परिचय श्रद्धा को देते हैं—

क्या कहूँ, क्या हूँ मैं उद्भ्रांत!
विवर में नील गगन में आज
वायु की भटकी एक तरंग
शून्यता का उजड़ा-सा साज
एक विस्मृति का स्तूप अचेत
ज्योति का धुँधला-सा प्रतिबिम्ब
और जड़ता की जीवन-राशि
सफलता का संकलित विलम्ब

इस प्रकार के अतीन्द्रिय, मानसिक व्यापारों के उपमान पाठक को सहज ग्राह्य नहीं हों, तो कोई आश्चर्य नहीं। परन्तु एक स्थान पर इतने नवीन उपमान-प्रयोगों का संग्रह मूर्तिमत्ता-प्रधान छायावाद काव्य में भी अन्य स्थान पर उपलब्ध नहीं है।

अनेक स्थान पर कवि नई मूर्तियाँ निर्माण करता है, जैसे श्रद्धा के अलस सौन्दर्य का संकेत है—

माधवी निशा की अलसाई
अलकों में लुकते तारा-सी (काम)

अथवा

कौन हो विश्वमाया कुहुक-सी साकार
प्राण सत्ता के मनोहर भेद-सी सुकुमार

(वासना)

सुन्दर उपमानों की मदिर मादकता से कामायिनी का पृष्ठ-पृष्ठ सुरभित है। जान पड़ता है, प्रसाद ने स्वयं इस रचना में छंद-छन्द पर रुक कर आनन्द प्राप्त किया है और प्रत्येक छवि को कल्पना की कूँची से सँवार-सँवार कर देखा है, जैसे—

श्याम नभ में मधु किरन-सा फिर वही मृदु हास
सिंधु की हिलकोर दक्षिण का समीर विलास
कुञ्ज में गुञ्जरित कोई मुकुल-सा अव्यक्त
लगा कहने अतिथि, मनु थे सुन रहे अव्यक्त

(वासना)

कर्मसूत्र संकेत सदृश थी
सोमलता तब मनु को
चढ़ी शिंजिनी-सी खींचा फिर
उसने जीवन धनु को

(कर्म)

केतकी गर्भ-सा पीला मुँह
आँखों में आलस भरा स्नेह
कुछ कृशता नई लजीली थी
कंपित लतिका-सी लिये देह !
मातृत्व-बोझ से झुके हुए
बँध रहे पयोधर पीठा आज
कोमल काले ऊनों की नव
पट्टिका बनाती रुचिर साज

सोने की सिकता में मानों
कालिंदी बहती भर उसाँस
स्वर्गंगा में इन्दीवर की
या एक पंक्ति कर रही हास
कटि में लिपटा था वसन नवल
वैसा ही हलका बुना नील
दुर्भर थी गर्भ-मधुर पीड़ा
झेलती उसे जननी सलील

(ईर्ष्या)

रूप के इस प्रकार के स्निग्ध चित्र कामायिनी में अनेक मिलेंगे। इड़ा का एक चित्र है—

बिखरीं अलकें ज्यों तर्कजाल
यह विश्वमुकुट-सा उज्ज्वल तम; शशिखंड सदृश सा स्पष्ट भाल
दो पद्मपलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल
गुञ्जरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा ज्ञान
वक्षस्थल पर एकत्र धरे, संसृति के सब विज्ञान गान
था एक हाथ में कर्मकलश वसुधा जीवन रस सार लिये
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलंब दिये
त्रिवेणी थी त्रिगुण तरंगमयी, आलोक वसन लिपटा अराल
चरणों में थी गति भरी ताल

(इड़ा)

कामायिनी की विरह-वेदना का कितना सजीव चित्र है—

कामायिनी कुसुम वसुधा पर पड़ी, न वह मकरन्द रहा
एक चित्र बस रेखाओं का, अब उसमें है रङ्ग कहाँ
वह प्रभात का हीन कला शशि, किरन कहाँ चाँदनी रही
वह संध्या थी, रवि शशि तारा में सब कोई नहीं जहाँ

जहाँ तामरस इन्दीवर या सित सरसिज हैं मुरझाये
अपने नालों पर, वह सरसी श्रद्धा थी, न मधुप आये
वह जलधर जिसमें चपला या श्यामलता का नाम नहीं
शिशिर कला की क्षीण स्रोत वह जो हिमतल में जम जाये
एक मौन वेदना विजन की, झिल्ली की झंकार नहीं
जगती की अस्पष्ट उपेक्षा, एक कसक साकार रही
हरित कुञ्ज कभी छाया भर थी वसुधा आलिङ्गन करती
वह छोटी-सी विरह नयी थी जिसका है अब पार नहीं
नील गगन में उड़ती-उड़ती विहग बालिका-सी किरनें
स्वप्नलोक को चलीं थकी सी नींद-सेज पर जा गिरने
किन्तु विरहिणी के जीवन में एक घड़ी विश्राम नहीं
बिजली-सी स्मृति चमक उठी तब जभी लगे तमघन घिरने
संध्या नील सरोरुह से जो श्याम पराग बिखरते थे
शैल-घाटियों के अंचल को वे धीरे से भरते थे
तृण गुल्मों से रोमांचित नग सुनते उस दुःख की गाथा
श्रद्धा की सूनी साँसों से मिल कर जो स्वर भरते थे

(स्वप्न)

आधुनिक काव्य में नारी के जितने सजीव सुन्दर चित्र काव्य को मिले हैं, उतने कृष्ण-काव्य की राधा को छोड़ कर किसी अन्य नारी चरित्र को नहीं मिले। छायावाद के कवि ने नारी को वासना के गर्त से उठाकर उसे हृदय-देवी बनाकर अनेक ढंग से उसकी छवि अंकित की। प्रसाद का काव्य नारी जागरण के युग की कला की सर्वोत्तम निधि है। उसमें अजंता की नारी आकृतियों की ऐश्वर्यमयी भावभंगी नहीं सही, परन्तु उसमें सौन्दर्य की नई परख अवश्य सब कहीं मिलेगी।

[५]

कामायिनी प्रकृति की विशाल भूमिका पर खड़ी है। उसमें

जलप्रलय का हाहाकार भी है और वसंत की मधुरिमा भी।

छायावाद काव्य में पंत, निराला और महादेवी ने प्रकृति को नये ढंग से उद्दीप्त कर, सजा-सँवार कर, सामने रखा है, परन्तु प्रसाद के काव्य में ही प्रकृति अपनी संपूर्ण सम्पन्नता को लेकर जाग सकी है। अधिकांश चित्र भावनाओं के घात-संघात से मनोरम होकर सामने आते हैं, जैसे—

मैं था सुन्दर कुसुमोंली वह
सघन सुनहली छाया थी
मलयानिल की लहर उठ रही
उल्लासों की माया थी
उषा अरुण प्याला भर लाती
सुरभित छाया के नीचे
मेरा यौवन पीता सुख से
अलसाई आँखें मींचे
ले मकरन्द नया चू पड़ती
शरद प्रात की शैफाली
बिखराती सुख ही, संध्या की
सुन्दर अलकें घुँघराली (निर्वेद)

यह चंद्रहीन की एक रात
जिसमें सोया था स्वच्छ प्रात
उजले उजले तारक झलमल
प्रतिबिम्बित सरिता वक्षस्थल
धारा बह जाती बिंब अटल
खुलता था धीरे पवनपटल
चुपचाप खड़ी थी वृक्षपाँत
सुनती जैसे कुछ निजी बात
(दर्शन)

करती सरस्वती मधुर नाद
बहती थी श्यामल घाटी में निर्लिप्त भाव सी अप्रमाद
सब उपल उपेक्षित पड़े रहे, जैसे वे निठुर, जड़ विषाद
वही थी प्रसन्नता की धारा जिसमें था केवल मधुर गान
थी कर्म निरंतरता-प्रतीक, चलता था स्ववश अनन्त ज्ञान
हिम शीतल लहरों का रह-रह कूलों से टकराते जाना
आलोक अरुण किरनों का उन पर अपनी छाया बिखराना
अद्भुत था, निज निर्मित पथ का वह पथिक चल रहा निर्विवाद
कहता जाता कुछ सुसंवाद
प्राची में फैला मधुर राग
जिसके मंडल में एक कमल खिल उठा सुनहला भर पराग
जिसके परिमल से व्याकुल हो श्यामल कलरव सब उठे जाग
आलोकरश्मि से बुना उषा अंचल में आन्दोलन अमन्द
करता प्रभात का मधुर पवन सब ओर वितरने को मरन्द
उस नव्य फलक पर नवल चित्र-सी प्रगट हुई सुन्दर वाला
वह नयन-महोत्सव की प्रतीक, अम्लान मालिन की नवमाला
सुषमा का मंडल सुरभित-सा, बिखराता संसृति पर सुराग
सोया जीवन का तम विराग
(इड़ा)

धीरे धीरे जगत चल रहा
अपने उस रज्जु-पथ में
धीरे धीरे खिलते तारे
मृग जुतते विधुरथ में
अंचल लटकाती निशीथिनी
अपना ज्योत्स्नाशाली
जिसकी छाया में सुख पाये
सृष्टि वेदना वाली

उच्च शैलशृंगों पर हँसती
प्रकृति चंचला बाला
धवल हँसी बिखराती अपनी
फैला मधुर उजाला (कर्म)

सृष्टि हँसने लगी आँखों में खिला अनुराग
राग-रंजित चंद्रिका थी, उड़ा सुमन पराग
और हँसता था अतिथि मनु का पकड़ कर हाथ
चले दोनों, स्वप्न-पथ में स्नेह-संबल साथ
देवदारु निकुञ्ज गह्वर सब सुधा में स्नात
सब मनाते एक उत्सव जागरण की रात
आ रही थी मदिर भीनी माधवी की गंध
पवन के घर घिरे पड़ते थे बने मधुअंध
शिथिल अलसाई पड़ी छाया निशा की कांत
सो रही थी शिशिर कण की सेज पर विश्रांत
उसी झुरमुट में हृदय की भावना थी भ्रांत
जहाँ छाया सृजन करती थी कुतूहल कांत
(वासना)

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'कामायिनी' की कथावस्तु प्रकृति की विराट रंगभूमि पर चित्रित की गई है। प्रकृति के महाप्रलय विक्षेप से प्रारंभ कर हियालय के शांत प्रदेश में नैसर्गिक सुख ऐश्वर्य के बीच में आनन्द का हास-विलास—इतनी बड़ी कामायिनी की चित्रपटी है। प्रसाद ऐश्वर्यशील प्रकृति-चित्रों के लिये प्रसिद्ध हैं। 'कामायिनी' में ऐसे चित्रों की कमी नहीं है। हमने देखा है कि अपनी कविता के आरंभकाल से ही प्रसाद प्रकृति को आलंबन मान कर लिखते रहे हैं। 'कामायिनी' के प्रकृति-चित्र विश्वकाव्य के सर्वश्रेष्ठ प्रकृति-चित्रों के सन्मुख रखे जा सकते हैं। अंतिम चित्र देखिए—

करती सरस्वती मधुर नाद
बहती थी श्यामल घाटी में निर्लिप्त भाव सी अप्रमाद
सब उपल उपेक्षित पड़े रहे, जैसे वे निठुर, जड़ विषाद
वही थी प्रसन्नता की धारा जिसमें था केवल मधुर गान
थी कर्म निरंतरता-प्रतीक, चलता था स्ववश अनन्त ज्ञान
हिम शीतल लहरों का रह-रह कूलों से टकराते जाना
आलोक अरुण किरनों का उन पर अपनी छाया बिखराना
अद्भुत था, निज निर्मित पथ का वह पथिक चल रहा निर्विवाद
कहता जाता कुछ सुसंवाद
प्राची में फैला मधुर राग
जिसके मंडल में एक कमल खिल उठा सुनहला भर पराग
जिसके परिमल से व्याकुल हो श्यामल कलरव सब उठे जाग
आलोकरश्मि से बुना उषा अंचल में आन्दोलन अमन्द
करता प्रभात का मधुर पवन सब ओर वितरने को मरन्द
उस नव्य फलक पर नवल चित्र-सी प्रगट हुई सुन्दर बाला
वह नयन-महोत्सव की प्रतीक, अम्लान मालिन की नवमाला
सुषमा का मंडल सुरभित-सा, बिखराता संसृति पर सुराग
सोया जीवन का तम विराग (इड़ा)

धीरे धीरे जगत चल रहा
अपने उस रज्जु-पथ में
धीरे धीरे खिलते तारे
मृग जुतते विधुरथ में
अंचल लटकाती निशीथिनी
अपना ज्योत्स्नाशाली
जिसकी छाया में सुख पाये
सृष्टि वेदना वाली

उच्च शैलशृंगों पर हँसती
प्रकृति चंचला बाला
धवल हँसी बिखराती अपनी
फैला मधुर उजाला (कर्म)

सृष्टि हँसने लगी आँखों में खिला अनुराग
राग-रंजित चंद्रिका थी, उड़ा सुमन पराग
और हँसता था अतिथि मनु का पकड़ कर हाथ
चले दोनों, स्वप्न-पथ में स्नेह-संबल साथ
देवदारु निकुञ्ज गह्वर सब सुधा में स्नात
सब मनाते एक उत्सव जागरण की रात
आ रही थी मदिर भीनी माधवी की गंध
पवन के घर घिरे पड़ते थे बने मधुअंध
शिथिल अलसाई पड़ी छाया निशा की कांत
सो रही थी शिशिर कण की सेज पर विश्रांत
उसी झुरमुट में हृदय की भावना थी भ्रांत
जहाँ छाया सृजन करती थी कुतूहल कांत
(वासना)

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'कामायिनी' की कथावस्तु प्रकृति की विराट रंगभूमि पर चित्रित की गई है। प्रकृति के महाप्रलय विक्षेप से प्रारंभ कर हियालय के शांत प्रदेश में नैसर्गिक सुख ऐश्वर्य के बीच में आनन्द का हास-विलास—इतनी बड़ी कामायिनी की चित्रपटी है। प्रसाद ऐश्वर्यशील प्रकृति-चित्रों के लिये प्रसिद्ध हैं। 'कामायिनी' में ऐसे चित्रों की कमी नहीं है। हमने देखा है कि अपनी कविता के आरंभकाल से ही प्रसाद प्रकृति को आलंबन मान कर लिखते रहे हैं। 'कामायिनी' के प्रकृति-चित्र विश्वकाव्य के सर्वश्रेष्ठ प्रकृति-चित्रों के सन्मुख रखे जा सकते हैं। अंतिम चित्र देखिए—

[६]

'कामायिनी' की शैली एक आनन्दमय कवि की शैली, स्वच्छन्द क्रीड़ा शैली है। इस शैली के पीछे प्रसाद का व्यक्तित्व और उनका जीवन-दर्शन है। प्रसाद ऊपर से निर्मम और निर्लेप व्यक्ति थे, परन्तु जैसा नंददुलारे वाजपेई ने लिखा है वे 'बनारसी रंग' में मस्त रहते थे ('व्यक्ति की झलक'—जयशंकर प्रसाद)। इस बनारसी रंग का मतलब है, स्वयम् अपने अस्तित्व में आनन्द का अनुभव करना। वे 'आनन्दवादी' कवि थे। इसी से जीवन का आनन्द उनकी कृतियों में है, विराग की समरसता नहीं। उनका साहित्य में जीवन के सौंदर्य, कल्पना और शक्तिमती उदात्त भावनाओं से सम्बद्ध करने का स्वस्थ प्रयत्न है। जहाँ-जहाँ विलास और स्वच्छन्दवादी अमीरी का रंग गहरा चढ़ा है, वहाँ-वहाँ पलायनवादी प्रवृत्तियों का ढूँढना अच्छा नहीं। वहाँ सूत्र प्रसाद की जीवन-सम्बन्धी धारणा के हाथ में चला जाता है।

प्रसाद की शैली में जो बात सबसे ऊपर तिरती है, वह उनकी मादकता है। उनकी शैली में नीरसता कहीं नहीं है। 'कामायिनी' बृहद् ग्रन्थ होने पर भी कहीं नीरस नहीं लगता। उसका कथानक शिथिल है। पहले कदाचित् प्रसाद ने केवल कथासूत्र भर लेकर प्रेम-काव्य लिखने का प्रयत्न किया, परन्तु बाद में उन्होंने रूपक का सहारा लेकर इस कथा को जीवन-दर्शन का रूप दे दिया। इस प्रकार कथा की अविच्छिन्न धारा में बाधा पड़ी। फल यह हुआ कि काव्य का उत्तर भाग जटिल दार्शनिक तर्कनाओं से बोझिल हो उठा है। परन्तु पहले भाग में काव्य और कला के उच्चतम तत्त्व मिलेंगे और प्रसाद की भारती पग-पग पर झंकृत होती आगे बढ़ेगी।

प्रसाद के संबंध में यह नहीं भूलना होगा कि वे नाटककार

हैं, अतः उन्होंने साधारण महाकाव्य की शैली नहीं अपनायी। उन्होंने नाटकीयता का भी समावेश कर दिया है, जो काव्य-परिपाटी के बाहर की चीज़ है। कथा-विकास में इससे कुछ बाधा पड़ती है, परन्तु नई होने के कारण यह शैली उपार्जनीय है। बहुतकर इसलिए भी कि प्रसाद इतिवृत्तात्मक कथा-काव्य (रोमांस) नहीं लिख रहे। वे सूक्ष्म मनोतत्त्वों के विकास की कथा भी कह रहे हैं। वास्तव में उन्होंने मनोविज्ञान को कथा-सूत्रोंके ऊपर रख दिया है। सर्गों के शीर्षक ही इसका सबूत हैं— १ चिंता, २ आशा, ३ श्रद्धा, ४ काम, ५ वासना, ६ लज्जा, ७ कर्म ८ ईर्ष्या, ९ इड़ा, १० स्वप्न, ११ संघर्ष; १२ निर्वेद १३ दर्शन, १४ रहस्य, १५ आनन्द। देवत्व से शिथिल होनेपर चिंता का जन्म हुआ। चिंता ने आशा को जन्म दिया। आशा ने मनु (मानव) को श्रद्धा का परिचय कराया। मनु ने श्रद्धा का उपयोग किया (काम, वासना, लज्जा)। इसके बाद मनु अप्रतिहत कर्मस्रोत में बहने लगते हैं और श्रद्धा से उसके सहज संतोष और अमृततत्त्व के कारण उन्हें घृणा होने लगती है (कर्म, ईर्ष्या)। पुरुष कर्म-प्रधान है। नारी संतोषमयी। श्रद्धाहीन हो मनु (मन) इड़ा (बुद्धि) का सहारा लेकर नए जगत का निर्माण करता है (इड़ा, स्वप्न)। इस श्रद्धाविहीन अनात्मवादी कर्म-प्रधानता का वह हुआ जो होता—'संघर्ष'। सहज श्रद्धा से हीन जनता बुद्धि के जड़तामय जटिल जाल के प्रति विद्रोह कर उठती है (संघर्ष)। इस संघर्ष के कारण मनु (मन) में निर्वेद का जन्म स्वाभाविक है (निर्वेद)। मनु (मन) एकदम कर्मविरत हो जाते हैं और कर्म में नहीं, अकर्म में शांति की खोज करते हैं। परन्तु यहाँ भी श्रद्धा के बिना उन्हें शांति की प्राप्ति असम्भव है (दर्शन)। श्रद्धा उन्हें जीवन के समन्वयात्मक रहस्य से परिचित कराती है, कि पूर्ण शांति की प्राप्ति के लिए ज्ञान, कर्म और भाव का संतुलित योग आवश्यक है। बात सीधी-साधी होने

पर भी रहस्य है (रहस्य)। इस ज्ञान-भाव-कर्म-समन्वित जीवन से ही मनुष्य को आनन्दयोग की सहज-प्राप्ति होती है। अतः मनु की कहानी मन की कहानी है जो शांति की खोज में श्रद्धा, इड़ा (बुद्धि) और कर्म की अलग-अलग साधना करने पर असफलता को प्राप्त होता है। तीनों के समन्वय से ही शुद्ध आनन्दतत्त्व की प्राप्ति होती है (आनन्द)।

इस प्रकार कथा, रूपक और दर्शनशास्त्र को अलग-अलग रखने से काव्य का चमत्कार कुछ कम अवश्य हो गया है, परन्तु कुछ प्रासंगिक विषय अपने स्थान पर अपूर्व हैं। कवि ने मनोविज्ञान की शैली अपना कर नए सूत्रों का गुम्फन कर दिया है। इन्हीं में एक लज्जा का अत्यंत सुन्दर प्रकरण है। यह सर्ग लज्जा और नारी के कथोपकथन के रूप में हमारे सामने आता है। लज्जा का ऐसा सुन्दर मनोवैज्ञानिक अध्ययन सारे भारतीय साहित्य में नहीं मिलेगा—

कोमल किसलय के अंचल में
नन्हीं कलिका ज्यों छिपती-सी
गोधूली के धूमिल पट में
दीपक के स्वर में दिपती-सी
मंजुल स्वप्नों की विस्मृति में
मन का उन्माद निखरता ज्यों
सुरभित लहरों की छाया में
बुल्ले का विभव बिखरता ज्यों
वैसी ही माया में लिपटी
अधरों पर उँगली धरे हुए
माधव के सरस कुतूहल का
आँखों में पानी भरे हुए

नीरव निशीथ में लतिका-सी
तुम कौन आ रही हो बढ़ती ?
कोमल बाहें फैलाये-सी
आलिङ्गन का जादू पढ़ती
किन इंद्रजाल के फूलों से
लेकर सुहाग कण राग भरे
सिर नीचा कर हो गूँथ रही
माला जिससे मधुधार ढरे !
पुलकित कदम्ब की माला-सी
पहना देती हो अंतर में
झुक जाती है मन की डाली
अपनी फलभरता के डर में
वरदान सदृश हो डाल रही
नीली किरणों से बुना हुआ
यह अंचल कितना हलका-सा
कितने सौरभ से सना हुआ
सब अंग मोम से बनते हैं
कोमलता में बलखाती हूँ
मैं सिमट रही-सी अपने में
परिहास गीत सुन पाती हूँ
स्मित बन जाती तरल हँसी
नयनों में भर कर बाँकपना
प्रत्यक्ष देखती हूँ सब जो
वह बनता जाता है सपना
मेरे स्वप्नों के कलरव का
संसार आँख जब खोल रहा

अनुराग समीरों पर तिरता
था इतराता-सा डोल रहा
अभिलाषा अपने यौवन में
उठती उस सुख के स्वागत को
जीवन भर के बल वैभव से
सत्कृत करती दूरागत को
किरणों का रज्जु समेट लिया
जिसका आलंबन ले चढ़ती
रस के निर्भर में धँस कर मैं
आनंद शिखर के प्रति बढ़ती
छूने में हिचक, देखने में
पलकें आँखों पर झुकती हैं
कलरव परिहास भरी :गूँजें
अधरों तक सहसा रुकती हैं
संकेत कर रही रोमाली
चुपचाप वरजती खड़ी रही
भाषा बन भौंहों की काली
रेखा-सी भ्रम में पड़ी रही

इस तरह हम देखते हैं कि प्रसाद की शैली की कुछ मुख्य बातें हैं शैली की मादकता, संपन्नता (विलासता), मनोवैज्ञानिकता स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाने की प्रवृत्ति, शैली की संस्कृत-मयता और कहीं-कहीं तज्जनित-जटिलता। भावों की लुकाछिपी जो दार्शनिक (या गंभीर जीवनदर्शी ग्रंथ में आवश्यक थी)। परन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि प्रसादजी के काव्यकाल (१६०६-१६३६) छायावाद काव्य के जन्म और विकास की कहानी से और प्रसादजी छायावादी मूर्त्तिमत्ता, भाव और भाषा के उन्नायकों में प्रधान थे। अतः उनके काव्य की प्रौढ़ता (चाहे उसमें

थोड़ी अस्पष्टता भी रही हो) उनके लिए श्रेय ही लायेगी। कौन हिंदी का कवि है जो अनन्त की रहस्यमयता को इतनी प्रौढ़ता और समर्थता से व्यक्त करता है—

इस विश्वकुहर में इन्द्रजाल
जिसने रचकर फैलाया है ग्रहतारा विद्युत नखत-व्याल
सागर की भीषणतम तरङ्ग-सा खेल रहा वह महाकाल
तब क्या इस बसुधा के लघु-लघु प्राणों को करने को सभीत
उस निष्ठुर की रचना कठोर केवल विनाश को रही जीत
तब मूर्ख आज तक क्यों समझे हैं सृष्टि उसे जो नाशमयी
उसका अधिपति ! होगा कोई, जिस तक दुःख की न पुकार गई
सुख नीड़ों को घेरे रहता अविरत विषाद का चक्रवाल
किसने यह पट है दिया डाल

(इड़ा)

किस आधुनिक कवि ने प्रेम और यौवन के आत्मसमर्पण का इतना मादक वर्णन किया है—

सहसा अंधकार की आँधी
उठी क्षितिज से वेग भरी
हलचल से विक्षुब्ध विश्व की
उद्वेलित मानस - लहरी

व्यथित हृदय उस नीले नभ में
छाया-पथ-सा खुला तभी
अपनी मङ्गलमयी मधुर स्मिति
कर दी तुमने देवि, जभी

दिव्य तुम्हारी अमर अमिट छवि
लगी खेलने रंगरली

नवल हेम लेखा-सी मेरे
हृदय निकष पर खिंची भली
अरुणाचल मनमंदिर की वह
मुग्ध माधुरी नव प्रतिमा
लगी सिखाने स्नेहमयी-सी
सुन्दरता की मृदु महिमा
उस दिन तो हम जान सके थे
सुन्दर किसको हैं कहते
तब पहचान सके किसके हित
प्राणी यह दुख-सुख सहते

× × ×

हृदय बन रहा था सीपी-सा
तुम स्वाती की बूँद बनीं
मानस शतदल डाले उठा जब
तुम उसमें मकरन्द बनीं
तुमने इस सूखे पतझड़ में
भर दी हरियाली कितनी
मैंने समझा मादकता है
तृप्ति बन गयी वह इतनी

(निर्वेद)

किस कविने कालिदास स्पर्द्धी ऐश्वर्य का वर्णन किया है—

श्रद्धा उस आश्चर्य लोक में मलय बालिका सी चलती
सिंहद्वार के भीतर पहुँची खड़े प्रहरियों को छलती
ऊँचे स्तम्भों पर वलभीयुत बनें रम्य प्रासाद वहाँ
धूप धूम सुरभित गृह जिनमें थी आलोक-शिखा जलती

डा० इकबाल और प्रसाद ने इस ओर प्रयत्न किया है। लोकजीवन को नया मार्ग दिखलाने का श्रेय वांछनीय ही नहीं स्तुत्य है। इस स्थान पर इन सब मनीषियों की जीवन चिंता पर विचार करना सरल नहीं, परन्तु यह मानना अनुचित नहीं कि प्रसाद ने जीवन को अपने ढंग के देखा है और उसे एक महान् चिद्‌शक्ति के आनन्दनृत्य के रूप में समझा है। प्रत्येक मनुष्य इस चिद्‌शक्ति का अंश है और उसमें विराट आनन्द के स्फुलिंग विद्यमान हैं। इन्हीं को जगा कर विश्वात्मा के महासंगीत में योग देना ही मनुष्य जीवन की पूर्णता है। परन्तु यह कैसे हो—प्रसाद कहते हैं देवताओं का जीवन लक्ष्य उच्छृंखल विकासजन्य आनन्द था, इसी से देवता नाश को प्राप्त हुए। मनु (मनुष्य-मन) ने अपने लिए बड़ी असफलताओं के बाद एक जीवन लक्ष्य खोज निकाला है—वह है श्रद्धा-बुद्धि (भाव-ज्ञान)—समन्वित कर्म द्वारा आनन्द की साधना। भाव-ज्ञान-कर्म जहाँ एक बिंदु पर आ जाते हैं, वहीं आनंद की गत स्वतः बजने लगती है। आधुनिक मानव के लिए यह प्रसाद का सार्वभौम संदेश है। इस संदेश की उपयोगिता यही है कि यह वर्ग-जाति-राष्ट्र विशेष के लिए न होकर मनुष्यमात्र के लिए हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर औपनैपिदिक सरल जीवन और अंतर्राष्ट्रीयता के पक्षपाती हैं; गांधी जी सर्वोदय, चाहते हैं; जवाहरलाल विज्ञानमय समाजवाद और राष्ट्रीयता पर आश्रित अंतर्राष्ट्रीयता की आवाज उठाते हैं। इकबाल ने मनुष्य की मौलिक स्वतंत्रता और विज्ञान की सामाजिकता को अपना संदेश बनाया है। प्रसाद भी इसी श्रेणी के चिंतक हैं। उनका दृष्टिकोण इकबाल और नेहरू के दृष्टिकोणों से भिन्न है। गांधीजी के नज़दीक पड़ता है। वे विज्ञानमयी बुद्धिप्रधान सभ्यता को वर्ग-संघर्ष की जड़ बताते हैं और ज्ञानाश्रित श्रद्धामूलक वर्गहीन मानवता की ओर इंगित करते हैं।

यह सब त्रुटियाँ होने पर भी 'कामायिनी' का आधुनिक काव्य में अत्यन्त उत्कृष्ट स्थान रहेगा। १६१२—३६ के काव्य की जो-जो विशेषताएँ हैं, वह इस एक ग्रंथ में गुंफित मिलेंगी। छायावाद काव्य की शक्ति और दुर्बलता का एक साथ प्रदर्शन यहाँ हुआ है। कल्पना-चित्रों की नवीनता और उत्कृष्टता, सहज सहानुभूति, विराट् मानवीयता, रूपचित्रण, प्रकृतिप्रेम, व्यंजना-प्रधान शैली—यह सब विशेषताएं "छायावाद" से संबद्ध हैं। अस्पष्टता, संस्कृत-गर्भता, सूक्ष्म तत्त्वों की ओर दृष्टि, कल्पनातिरेक—ये कुछ त्रुटियाँ भी हैं। परन्तु प्रत्येक युग के काव्य को अपनी सीमाएँ होती हैं। प्रसाद की 'कामायिनी' का महत्त्व यह है कि वह एक युग के काव्य (छायावाद) का प्रतिनिधित्व करती है, उसी प्रकार जिस प्रकार मानस और सूरसागर मध्ययुग की रामभक्ति और कृष्ण-भक्ति-धाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं या बिहारी रीतिकाल की प्रेम-विलासमयी चुहलों का चित्र उपस्थित करते हैं। आज के बुद्धिजीवी, विश्लेषण-प्रधान, सौन्दर्यप्रिय दार्शनिक मन को 'कामायिनी' संतुष्ट कर सकेगी, इसमें कोई संदेह नहीं। आज जब काव्य का रूप बदल रहा है और जीवन के प्रति हम नए प्रकार से जागरूक हो उठे हैं, तो पिछली पीढ़ी की काव्य-संपदा के यथार्थ मूल्यांकन से ही हम आगे बढ़ सकेंगे।

८

'कामायिनी' [ख]

'कामायिनी' : एक परिचय की भूमिका में सुश्रीमहादेवी वर्मा ने 'कामायिनी' का मूल्यांकन इस प्रकार किया है—'कामायिनी तत्त्वत: समझने के लिये यह जान लेना उचित है कि छायावाद युग की सबसे सुन्दर सृष्टि होने पर भी और रहस्य-भावना के वैतालिक की कृति होने पर भी कामायिनी का लक्ष्य न अरूप की छाया है, न निराकार का रहस्य। उसमें जो कुछ रहस्य है वह मानव-प्रकृति की ऐसी रहस्यात्मकता है जिससे मनुष्य, मनुष्य के नाते छुटकारा पा ही नहीं सकता। उसके सांकेतिक अर्थ के संबंध में प्रसादजी स्वयम् कहते हैं—"यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का अद्‌भुत मिश्रण हो गया है। इसीलिये मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करे तो मुझे आपत्ति नहीं अत: सांकेतिक अर्थ यथार्थता से सर्वथा स्वतंत्र है ऐसा मान लेना बहुत उचित नहीं जान पड़ता। प्राधान्य तो उस व्यक्ति का रहेगा जिसका इतिहास हमारे वेद से लेकर पुराणों तक और भारत से लेकर सुदूर पाश्चात्य देशों तक बिखरा हुआ है। हमारे यहाँ साधारण पाठक और आलोचक या तो इस प्राचीन इतिवृत्त से इतने परिचित नहीं या इतने संशयालु हैं कि इसे एक अधूरे सांकेतिक अर्थ में ग्रहण कर लेना स्वाभाविक हो जाता है। कहना व्यर्थ होगा कि इस प्रवृत्ति ने 'कामायिनी' को सम्पूर्ण सजीवता के साथ ग्रहण करने में कोई सहायता न देकर बाधा ही पहुँचाई,

क्योंकि उसकी सांकेतिकता का आधार नष्ट करके उसकी प्रेरणा को मूलतः समझना सहज नहीं रह जाता।"

इस व्याख्या में कवियित्री ने 'कामायिनी' के अध्ययन की दो अलग-अलग रूपरेखाएँ स्थिर की हैं। मनु ऐतिहासिक व्यक्ति है। कामायिनी में हम मनुष्य के मस्तिष्क और हृदय में तर्क और विश्वास के अंतर्द्वन्द या संघर्ष का चित्रण पाते हैं। मनु आदि पुरुष है। कामायिनी आदि नारी। आदि पुरुष और आद्या के मनोविकास का चित्रण कामायिनी की विशेषता है, अतः इस दृष्टि से वह ऐतिहासिक मनोवैज्ञानिक काव्य है। आदि पुरुष और आदि नारी की कहानी इतनी उलझी नहीं होना चाहिये जितनी बाद के युगों की कहानी। इसी से 'कामायिनी' में कथाविस्तार का आग्रह नहीं है। सारी कथा में मूलरूप से दो ही चरित्र उभर कर आते हैं। मनु और श्रद्धा। मनुष्य के उद्दाम अंतर्द्वन्द और श्रद्धा के शांत आत्मविश्वास के घात-प्रतिघात को प्रसाद ने महा-काव्य का रूप दे दिया है। विचाराक्रांत मनु शांतिमूर्ति श्रद्धा की ओर आकर्षित होते हैं, परन्तु श्रद्धा के आत्मसमर्पण के बाद उनके हृदय में कर्म की भयंकर वात्या बहने लगती है और इस आँधी में वह उड़ जाते हैं। श्रद्धा के प्रशांत आत्मविश्वास से उन्हें धक्का लगता है और वह उनके स्नेह-बंधन को तोड़ डालते हैं। परन्तु अंत में इड़ा के चक्र में पड़ने पर इन्हें कर्म की आँधी की असारता का पता चलता है और श्रद्धा ही उनकी मार्ग-प्रदर्शिनी बनती है। वह मानव की जाया जो है।

'कामायिनी' की विशेपता यही है कि वह नए युग की सारी प्रवृत्तियों को आत्मसात किये है। मध्ययुग के देव-चरित्रों में हमें श्रद्धा नहीं है, लौकिक दिव्य कथाएँ हमारे लिये अगम्य हैं। उपन्यास-कहानी में हम प्रतिदिन के परिचित व्यक्तियों के संपर्क

में आते हैं। इसीलिये प्रसाद ने 'कामायिनी' में नया पथ पकड़ा है। उन्होंने 'कामायिनी' में स्वयं मनुष्य की प्रकृति का विवेचन किया है, आदिम काल से मनुष्य की प्रकृति का एक ही प्रकार से विकास होता गया है। इसी विकास की रूपरेखाएँ प्रसाद के काव्य का प्राण हैं। महादेवी के शब्दों में : "हमारे सामने जो क्षितिज है, वह किसी लोक-विश्रुत या अलौकिक चरित्र की दिग्विजय यात्रा नहीं चित्रित करता, प्रत्युत उसके सब हलके गहरे रंग, सारी लघु दीर्घ रेखाएँ दो व्यक्तियों को स्पष्ट करती रहती हैं और ये दो व्यक्तित्व हैं—आदिम पुरुष और आदि नारी। अतः उनमें अलौकिकता से अधिक उन प्रवृत्तियों का महत्त्व है जिनसे लोक का निर्माण संभव हो सका। इस दृष्टि से उनकी यह चारित्रिक विशेषताएँ आज भी हमारी हैं।" अतः कामायिनी का यह दूसरा तथ्य—मनोवैज्ञानिक तथ्य—ऐतिहासिक तथ्य से अधिक सजीव एवं अधिक महत्त्वपूर्ण है। 'कामायिनी' का नायक मनु पूर्ण रूप से व्यक्तिवादी है। वह अकेला है। कहता है—

शैल निर्झर न बना हतभाग्य
गल सका नहीं जो कि हिम खंड
दौड़ कर मिला न जलनिधि अंक
आह वैसा ही हूँ पाषंड

आजकल के अहंवादी मानव की तरह वह कहता है—

विश्व में जो सकल सुन्दर हो विभूति महान
सभी मेरी हैं सभी करती रहें प्रतिदान
यही तो मैं ज्वलित वाड़व-वह्नि नित्य अशांत
सिंधु-लहरों सा करें शीतल मुझे सब शांत

वही मनु 'विश्ववादी' बन कर कथा समाप्त करते हैं—

सब की सेवा न पराई
वह अपनी सुख-संसृति है
अपना ही अणु-अणु कण-कण
द्वयता ही तो विस्मृति है
सब भेदभाव भुलवा कर
सुख-दुःख को दृश्य बनाता
मानव कह रे "यह मैं हूँ"
यह विश्व नीड़ बन जाता !

कथा के अंत में हम प्रसाद को बुद्धिवाद के अटल विरोधी के रूप में देखते हैं। आधुनिक युग बुद्धिवाद का युग है। इसके विपरीत प्रसाद मनु (मानव) को इड़ा (बुद्धि) के प्रति जुगुप्सा से भर देते हैं। सरस्वती-तट पर जब एक गुफा में मनु दूसरी बार मिलता है, तो श्रद्धा से यही कहता है—

यह क्या श्रद्धे ! बस तू ले चल
उन चरणों तक दे निज संबल
सब पाप-पुण्य जिसमें जल-जल
पावन बन जाते हैं निर्मल
मिटते असत्य से ज्ञानलेश
समरस अखंड आनन्द वेश

अंत में जब श्रद्धा के संकेत से ज्ञान, कर्म और भाव की तीन विभिन्न मूर्तियाँ एकाकार हो जाती हैं—

वे संबद्ध हुए फिर सहसा
जाग उठी थी ज्वाला जिनमें

तब एक अभिनव सृष्टि का जन्म होता है। त्रिपुरदाह का यही आधुनिक अर्थ है। 'कामायिनी' की मूर्त्तभाषा में ज्ञान, भाव और कर्म के त्रैत का त्रिपुरदाह इस प्रकार है—

स्वप्न स्वाप जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे
दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे

परन्तु समाप्ति यहीं नहीं होती। ज्ञान, भाव, कर्म के मिलन से दिव्य आनन्द-लहरी बहने लगती है। तन्त्रों में श्रद्धा द्वारा त्रिपुरों के मिलने का वर्णन है, यथा

त्रिपुरानन्तशक्त्यैक्यरूपिणी सर्वसाक्षिणी।

इसी अनंत शक्तिणी श्रद्धा की स्मिति द्वारा प्रसाद ने ज्ञान, कर्म और भाव में समरसता उत्पन्न करने का संदेश दिया है। परन्तु यह समरसता स्वयं साध्य नहीं है। यह तो आनन्द की जाया है। इसी लिये कहा गया है—

जाते समरसानन्दे द्वैतमप्यमृतोपमम्
मित्रयोरिव दम्पत्योर्जीवात्मपरमात्मयोः।

इसी अद्वैतानन्द—चिदानंद—को प्रसाद ने 'तन्मय' शब्द में अभिव्यक्त किया है। स्वयं विराट् चिद्सत्ता का भी एक चित्र 'कामायिनी' में है। इड़ा जब कुमार को लेकर श्रद्धा और मनु की तपभूमि (अब आनन्द-भूमि) में पहुँचती है, तो वह देखती है सनातन पुरुष और आदि शक्ति प्रकृति का महाविलास :

चिर मिलित प्रकृति से पुलकित
वह चेतन पुरुष पुरातन
निज शक्ति तरंगायित था
आनंद-अंबु-निधि शोभन !

इस प्रकार कामायिनी कथा महासमाधि के चिदानंद में विराम पाती है। प्रसाद ने जीवन का एक अत्यंत संतुलित चित्र उपस्थित

करते हुए ज्ञान, कर्म, भाव की समन्वयात्मक साधना द्वारा प्राप्त महानंद की ओर इंगित किया है। हृदय और बुद्धि का परिहार आनंद की अनुभूति में ही संभव है।

'कामायिनी' में प्रसाद ने शाश्वत मानवताके विकास का चित्र उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। सार्वभौम कल्याण भावना से प्रेरित हो वह देश-काल वर्गहारा मानव के लिये एक नई सभ्यता, नई संस्कृति, नये दर्शन का संकेत देने चले हैं। जीवन का मौलिक अन्वेषण और विश्लेषण कामायिनी की सबसे बड़ी देन है। अमर मानसिक तत्त्वों के सूत्रों को समेट बटोर कर भावी मानव के मंगलसूत्र में गूँथ दिया गया है। चिंता, आशा, ईर्ष्या, क्षमा, जैसे मनोभाव मानस को जिस विकास-पथ पर त्रिकाल तक आगे बढ़ाते रहेंगे, 'कामायिनी' में उन्हीं की सुन्दरतम व्याख्या है। यह संभव नहीं कि 'कामायिनी' रामचरितमानस की भाँति जन-साधारण की चीज हो सके। परन्तु केवल इसी एक बात से वह छोटी नहीं हो जाती। साहित्य की अनेक अनुभूति इतनी उदात्त, इतनी सचेष्ट और इतनी रहस्यमय होती हैं, कि साधारण मानव-मन उनमें उलझ जाता है। परन्तु जन-संस्कार भी अभी कहाँ बने हैं! अभी तो हम जनता को जरा भी ऊँचा नहीं उठा सके हैं। जो हो, प्रतीकों की नवीनता और विचारों की गंभीरता के कारण ही कोई काव्य असफल नहीं हो जाता। प्रसाद जनता के कवि थे भी नहीं। वे संस्कृत हृदय मानव के कवि हैं। आवश्यकता इस बात की है कि उनके संदेश को सरल भाषा में आधुनिक युग के सामने रखा जाये। यह अनिवार्य भी है। रामचरितमानस जिस प्रकार एक विशेष युग का है, उसी प्रकार 'कामायिनी' एक विशेष युग की वस्तु है। वह आधुनिक युग की सारी चेतना को समेट कर चलती है, परन्तु परोक्ष रूप में नहीं। आधुनिक युग जीवन, समाज और राजनीति के संबन्ध में

स्वप्न स्वाप जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे
दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे

परन्तु समाप्ति यहीं नहीं होती। ज्ञान, भाव, कर्म के मिलन से दिव्य आनन्द-लहरी बहने लगती है। तन्त्रों में श्रद्धा द्वारा त्रिपुरों के मिलने का वर्णन है, यथा

त्रिपुरानन्तशक्त्यैक्यरूपिणी सर्वसाक्षिणी।

इसी अनंत शक्तिणी श्रद्धा की स्मिति द्वारा प्रसाद ने ज्ञान, कर्म और भाव में समरसता उत्पन्न करने का संदेश दिया है। परन्तु यह समरसता स्वयं साध्य नहीं है। यह तो आनन्द की जाया है। इसी लिये कहा गया है—

जाते समरसानन्दे द्वैतमप्यमृतोपमम्
मित्रयोरिव दम्पत्योर्जीवात्मपरमात्मयोः।

इसी अद्वैतानन्द—चिदानंद—को प्रसाद ने 'तन्मय' शब्द में अभिव्यक्त किया है। स्वयं विराट् चिद्सत्ता का भी एक चित्र 'कामायिनी' में है। इड़ा जब कुमार को लेकर श्रद्धा और मनु की तपभूमि (अब आनन्द-भूमि) में पहुँचती है, तो वह देखती है सनातन पुरुष और आदि शक्ति प्रकृति का महाविलास :

चिर मिलित प्रकृति से पुलकित
वह चेतन पुरुष पुरातन
निज शक्ति तरंगामित था
आनंद-अंबु-निधि शोभन !

इस प्रकार कामायिनी कथा महासमाधि के चिदानंद में विराम पाती है। प्रसाद ने जीवन का एक अत्यंत संतुलित चित्र उपस्थित

करते हुए ज्ञान, कर्म, भाव की समन्वयात्मक साधना द्वारा प्राप्त महानंद की ओर इंगित किया है। हृदय और बुद्धि का परिहार आनंद की अनुभूति में ही संभव है।

'कामायिनी' में प्रसाद ने शाश्वत मानवताके विकास का चित्र उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। सार्वभौम कल्याण भावना से प्रेरित हो वह देश-काल वर्गहारा मानव के लिये एक नई सभ्यता, नई संस्कृति, नये दर्शन का संकेत देने चले हैं। जीवन का मौलिक अन्वेषण और विश्लेषण कामायिनी की सबसे बड़ी देन है। अमर मानसिक तत्त्वों के सूत्रों को समेट बटोर कर भावी मानव के मंगलसूत्र में गूँथ दिया गया है। चिंता, आशा, ईर्ष्या, क्षमा, जैसे मनोभाव मानस को जिस विकास-पथ पर त्रिकाल तक आगे बढ़ाते रहेंगे, 'कामायिनी' में उन्हीं की सुन्दरतम व्याख्या है। यह संभव नहीं कि 'कामायिनी' रामचरितमानस की भाँति जन-साधारण की चीज़ हो सके। परन्तु केवल इसी एक बात से वह छोटी नहीं हो जाती। साहित्य की अनेक अनुभूति इतनी उदात्त, इतनी सचेष्ट और इतनी रहस्यमय होती हैं, कि साधारण मानव-मन उनमें उलझ जाता है। परन्तु जन-संस्कार भी अभी कहाँ बने हैं! अभी तो हम जनता को जरा भी ऊँचा नहीं उठा सके हैं। जो हो, प्रतीकों की नवीनता और विचारों की गंभीरता के कारण ही कोई काव्य असफल नहीं हो जाता। प्रसाद जनता के कवि थे भी नहीं। वे संस्कृत हृदय मानव के कवि हैं। आवश्यकता इस बात की है कि उनके संदेश को सरल भाषा में आधुनिक युग के सामने रखा जाये। यह अनिवार्य भी है। रामचरितमानस जिस प्रकार एक विशेष युग का है, उसी प्रकार 'कामायिनी' एक विशेष युग की वस्तु है। वह आधुनिक युग की सारी चेतना को समेट कर चलती है, परन्तु परोक्ष रूप में नहीं। आधुनिक युग जीवन, समाज और राजनीति के संबन्ध में

आविष्कारों का युग है। चारों ओर जिज्ञासा का एक भाव व्याप्त हो गया है। 'कामायिनी' में इसी जिज्ञासा का समाधान है।

अपने युग के अनुरूप 'कामायिनी' एक सुन्दर रचना है। युग की ध्वनि उनके इस काव्य में उस प्रकार नहीं सुनाई पड़ती, जितनी शक्ति से गांधीवादी या समाजवादी काव्य में, परन्तु कामायिनी की जिज्ञासा और उसका समाधान युग के आधार को ही लेकर चले हैं। जो लोग प्रसाद की दृढ़ चिंतन-भित्ति से परिचित नहीं हैं वे उनके "आनन्दवाद" को गये-गुजरे जमाने की चीज़ या मध्ययुग की कल्पना-ऐश्वर्य से सजाई मूर्तिमात्र समझ लेंगे। परन्तु प्रसाद का "आनन्दवाद" इतनी निर्बल नींवों पर नहीं खड़ा है। उसे एक चिंतन-प्रधान कवि-दृष्टि का सहारा है। आज के विशृंखल युग ने प्रसाद को उसी तरह जीवन सन्देश देने की प्रेरणा दी जिस तरह मध्ययुग की विलासी जनता और अकर्मण्य समाज ने तुलसी को रामसीता की आदर्श दांपत्य मूर्तियाँ और रामराज्य के मर्यादापूर्ण समाज की ओर प्रेरित किया था। उन्होंने 'श्रद्धा' के रूप में आजकल की नारी के सामने विज्ञानमयी श्रद्धात्मकता का आदर्श रखा है। जीवन में सुख-शांति की बराबर दौड़ लगी है। पुरुष कहता है—

आकर्षण से भरा विश्व यह
केवल भोग्य हमारा

तब इस आदर्श नारी और पुरुष का संघर्ष उपस्थित हो जाता है। इस संघर्ष में विजयिनी होती है नारी। श्रद्धा के संबंध में 'प्रसाद' की ये पंक्तियाँ आधुनिक नारी के लिए चुनौती के समान हैं—

देवों की विजय दानवों की
हारों का होता युद्ध रहा

संघर्ष सदा उर अन्तर में
जीवित रह नित्य विरुद्ध रहा !
आँसू से भीगे अंचल पर
मन का सब कुछ रखना होगा
तुमको अपनी स्मित रेखा से
यह संधिपत्र लिखना होगा

जिस तरह श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'यशोधरा' में नारी को पुकार कहा था—

अबला जीवन ! हाय, तुम्हारी यही कहानी
आँचल में है दूध, और आँखों में पानी

इसी तरह प्रसाद भी नारी जीवन को स्वर्गीय पवित्रता को पुरुष के लिए एक महान् प्रसाद के रूप में स्वीकार करते हैं। आजकल के व्यापक संघर्षों के चित्र प्रसाद इड़ा के सारस्वत नगर में उपस्थित करते हैं—

यह अभिनव मानव प्रजा सृष्टि
द्वयता में लगी निरन्तर ही वर्णों की करती रहे वृष्टि
अनजान समस्यायें गढ़ती रचती हो अपनी ही विनष्टि
कोलाहल कलह अनन्त चले, एकात नष्ट हो, बढ़ें भेद
अभिलषित वस्तु तो दूर रहे, हाँ, मिले अनिच्छित दुखद खेद

× × ×

पहचान सकेंगे नहीं परस्पर चले विश्व गिरता पड़ता
सब कुछ भी हो यदि पास भरा पर दूर रहेगी सदा तुष्टि
दुख देगी यह संकुचित दृष्टि

निरंतर वर्णों की सृष्टि से समाज-संघटन से अधिक विघटन की ओर ही बढ़ा है। अभिलपित वस्तु (एकता, सुख) का मिलना तो इस द्वैत-सृष्टि ने अनेक प्रकार के दुखपूर्ण भेद-प्रभेद उपस्थित

कर दिये। इसका फल यह हुआ कि मनुष्य की व्यापक दृष्टि संकुचित हो गई और देश-काल-वर्ग हीन मूल मानव देश, काल, वर्ग के बन्धनों में इतना जकड़ गया कि उसने जातीय और राष्ट्रीय संघर्षों का सूत्रपात कर दिया। जीवन का अर्थ है परिवर्तन। परन्तु हम रूढ़ परंपराओं में ऐसे जकड़ गये कि इन बन्धनों से ही हमें मोह होने लगा। प्रसाद इस परंपरा, रूढ़ि और सनातन के प्रति अपनी विरोध की स्वस्थ वाणी उठाते हैं। वे कहते हैं—

पुरातनता का यह निर्मोक
सहन करती न प्रकृति पल एक
नित्य नूतनता का आनंद
किये हैं परिवर्तन में टेक

अन्य स्थानों पर भी प्रसाद ने समाजगलित मानव के स्थान पर मूल मानव की अभ्यर्थना की है। उनका 'आनन्दवाद' दुर्बल मानव का पलायन नहीं है, कल्पना-स्वप्न नहीं है। वह स्वस्थ हृदय की मंगलाकांक्षा है। शक्ति के दर्प से ओत-प्रोत है। प्रसाद नए युग को संबोधन करते हैं—

और यह क्या सुनते नहीं
विधाता का मङ्गल वरदान
शक्तिशाली हो विजयी बनो
विश्व में गूँज रहा जयगान

सारस्वत प्रदेश के बुद्धिवादी समाज में हमारे अपने भौतिक युग का चित्र है। इस भौतिक युग की विशेषताएँ हैं—

(१) चिर चंचलता, चिर कर्मठता

देश काल का लाघव करते ये प्राणी चंचल से हैं

(२) ज्ञान-संपन्नता

बढ़े ज्ञान व्यवसाय परिश्रम बल की विस्तृत छाया में

(३) असंतोष

प्रजा क्षुब्ध हो शरण माँगती उधर खड़ी है
प्रकृति सतत आतंक-विकंपित घड़ी-घड़ी है

(४) मंत्रशक्ति और तद्‌जन्य ऐश्वर्य

प्रकृति शक्ति तुमने मन्त्रों से सबकी छीनी
शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी

और

स्वर्ण-कलश-शोभित भवनों में लगे हुए उद्यान बने

(५) अनेक प्रकार के समाजगत भेद

वर्णों की खाई बन फैली
कभी नहीं जुड़ने को

(६) मनुष्य की अहंता

मैं शासक, मैं चिरस्वतंत्र
मैं चिरबंधन-हीन

(७) अधिकारों की लड़ाई

अधिकारों की सृष्टि और
उनकी वह मोहमयी माया

(८) हिंसावाद

आज शक्ति को खेल खेलने को नर आतुर
सामूहिक बलि का था निकला पंथ निराला
रुधिर भरी वेदियाँ भयङ्करी उनमें ज्वाला

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद ने अपने काव्य में युग की चेतना ही ग्रहण की है। हमारा समाज भौतिकता और विलास के रोगों से बुरी तरह ग्रसित है। स्वस्थ जीवन के सारे मार्ग अवरुद्ध

हो गये हैं। मनु को भौतिक ऐश्वर्य के शिखर पर पहुँच कर अधिकार माँगती हुई प्रजा का प्रताड़न करना पड़ा था। आज तो प्रत्येक देश में वर्गहीन प्रजा और समृद्ध शासक वर्ग में युद्ध होता दिखलाई पड़ रहा है। मिल मजदूरों की हड़तालें और किसानों के विद्रोह भौतिक सभ्यता के शाप के प्रतीक हैं। 'एक-घूँट' में 'प्रसाद' ने पहले पहल 'लौट चलो नैसर्गिकजीवन' की ओर आवाज़ उठाई थी। 'कामना' (नाटक) में उन्होंने भौतिकवाद के जन्म, विकास एवं ह्रास की कथा कही थी। वहाँ पात्र की मनोवृत्तियाँ थीं। हम बता चुके हैं कि 'कामना' के समय के लगभग ही 'प्रसाद' ने 'कामायिनी' की रचना शुरू की। अतः जो संदेश 'एक घूँट' और 'कामना' में चलता है, वही अधिक शक्तिशाली ढंग से कामायिनी का विषय बना है। 'एक घूँट' में 'प्रसाद' अरुणाचल जैसे तपोवन को ग्राम-जीवन और आधुनिक नगर-जीवन के बीच की चीज़ की तरह लाकर उपस्थित करते हैं। 'कामना' में वह किसी भी समाधान की ओर नहीं बढ़ते। 'कामायिनी' में उनका चित्रपट विशाल था। उनकी दृष्टि सारे मानव समाज पर थी। पूर्व-पच्छिम सबके लिये एक ही संदेश का नियोजन उन्होंने किया। न उन्होंने विज्ञान को अस्वीकार किया, न ज्ञान को। वे एक महान् समन्वयवादी की भाँति परस्पर विरोधी तत्त्वों का समन्वय एवं समाहार करते हुए दिखलाई पड़ते हैं।

गांधीयुग के होते भी 'प्रसाद' गांधीजी से अधिक प्रगतिशील हैं। उन्होंने गांधीजी की भाँति अपने उन्नत जीवन की नींव त्याग पर नहीं रखी है। वे न अतिमोदवादी हैं, न संत। उनका संदेश भी आध्यात्मिक नहीं है। इसी लिए ईश्वर, जीव, ब्रह्म जैसे अध्यात्मवादी शब्दों का 'कामायिनी' में नितांत अभाव है। प्रसाद वर्ण-जाति के एकांततः विरोधी हैं। वे तप नहीं,

आनन्द; ज्ञान और कर्म ही नहीं ज्ञान, कर्म, भाव तीनों के समाहार की ओर इंगित करते हैं। अवश्य ही गांधीजी की भाँति उन्होंने भौतिकता को मनुष्य की सांस्कृतिक निष्ठा का विरोधी माना है, परन्तु यह इस कारण नहीं कि विज्ञानवादी भौतिकता अपने मूल अर्थ में अनिष्टकारी है। प्रसाद का विचार है कि इसका कारण मन, बुद्धि और हृदय का असंतुलन है। वे गांधीजी के रामराज्य के स्वप्नों में और आगे बढ़कर 'आनन्द लोक' का स्वप्न देखते हैं। यों दोनों प्रेम (काम) और कामायिनी (श्रद्धा) को ही मानसतत्त्वों में सर्वश्रेष्ठ और मानवता के लिए कल्याणकारी समझते हैं। प्रेम के निर्माणकारी तत्त्वों का चित्रण प्र...ने बड़े उत्साह से किया है—

प्रत्येक नाश विश्लेषण भी
संश्लिष्ठ हुए, बन सृष्टि रही
ऋतुपति के घर कुसुमोत्सव था
मादक मरंद की वृष्टि रही
भुजलता पड़ी सरिताओं की
शैलों के गले सनाथ हुए
जलनिधि का अंचल व्यजन बना
धरणी का दो-दो साथ हुए
कोरक अंकुर सा जन्म रहा
हम दोनों साथी झूल चले
उस नवल सर्ग के कानन में
मृदु मलयानिल से फूल चले

इसी प्रेम के आनन्द में साधक पंच ज्ञानेन्द्रियों के सभी विषयों—रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द—का पान करता है :

पीता हूँ, हाँ मैं पीता हूँ
यह स्पर्श, रूप, रस, गंध भरा
मृदु लहरों के टकराने से
ध्वनि में है क्या गुञ्जार भरा !

इस तरह 'प्रसाद' मध्ययुग भारतीय काव्य साहित्य की सारी परंपरा से दूर पड़ कर तंत्र-साहित्य और शैवागमों के आधार पर एक नये जीवनतत्त्व को उपस्थित करते हैं। सिद्धों और संतों ने सहज मार्ग का संदेश दिया था। संत ज्ञानवादी थे। सिद्धों ने उनके पूर्व जो आनन्द की धारा बहाई थी, उसे संतों ने तप और ज्ञान के युग-कूलों में बाँध दिया। 'प्रसाद' ने 'रहस्यवाद' निबंध में अपना संबंध सिद्ध-साहित्य से जोड़ा है। वे कहते हैं—'सिद्धों ने आगम के बाद रहस्यवाद की धारा अपनी प्रचलित भाषा में जिसे वे संध्या-भाषा कहते थे, अविच्छिन्न रक्खी और सहज आनन्द के उपासक बने रहे।

अनुभव सहज सा मोल रे जोई
चोकोट्टि विमुका जहसो तहसो होई
जहषने आछिले स वहसन अच्छ
सहज पथिक जोई भान्ति माहो वास
(नारोपा)

वे शैवागम की अनुकृति ही नहीं, शिव की योगेश्वर मूर्ति की भावना भी आरोपित करते थे :

नाडि शक्ति हिंय धरिय खदे
अनहा डमरू बाजए वीरनादे
कह्न कपाली योगी पइठ अचारे
देह न अरी विछाए एकारें
(कण्हपा)

इन आगमानुयायी सिद्धों में आत्म-अनुभूति सापेक्ष थी। परोक्ष विरह उनके समीप न था। वह प्रेम-कथा स्वपर्यवसित थी।" "सिद्धों ने आनन्द के लिए संगीत को भी अपनी उपासना" में मिला लिया था। परन्तु 'प्रसाद' सिद्धकाव्य और सिद्धसाधना के विकृत रूप से भी परिचित हैं। वह जानते हैं कि सिद्धों के सहजानंद के पीछे बौद्धिक गुप्त कर्मकांड की व्यवस्था भयानक हो चली थी। 'प्रसाद' के अनुसार उनके आनन्दवाद का पहला उद्वेग ऋग्वेद में मिलता है। इन्द्र इस आनन्दवादी साधना के आदि प्रवर्तक हैं। अद्वैतभक्ति के रूप में शैवों ने इसी आनन्दवाद को स्वीकार किया। तंत्र-साहित्य, शक्ति-साहित्य, आगम-साहित्य और कालिदास-प्रभृति कवियों में इस आनन्दवाद के मुख्य स्रोत मिलेंगे। स्वयं भागवत और वैष्णव साहित्य ने अद्वैतभक्ति के रूप में इस आनन्दवाद को स्वीकार किया, परन्तु वाद को विरह और द्वैत-भावना के सुर इसमें मिल गये। कवि राधाकृष्ण के विरह का रूपक रचने लगे और संत 'राम की बहुरिया' से 'सुन्न महल' में मिलने की आकुल प्रतीक्षा करने लगे। इस प्रकार एक और कृष्ण-कवियों की विरह-भावना, तुलसी के मर्यादा भाव एवं संतों की ज्ञानमण्डता ने आनन्दवाद की धारा-प्रवाह में बाधा डाली, तो दूसरी ओर मिथ्या रहस्यवादी और मिथ्या आनन्दवादी इसे कुत्सित अनाचार बताने लगे। सूफ़ी, संत और कृष्ण-कवियों का प्रेम, मिलन की प्रतीक्षा में, सदैव विरहोन्मुख रहा। कवि 'वृन्दावन' ही बन सके श्याम नहीं। यह प्रेम का रहस्यवाद विरह दुःख से अधिक अभिभूत रहा। यद्यपि कुछ लोगों ने सहज आनन्द की योजना भी की थी। और उसमें माधुर्य महाभाव के उज्ज्वल नीलमणि को परकीय प्रेम के कारण गोप्य और रहस्यमूलक बनाने का प्रयत्न भी किया था, परन्तु द्वैतमूलक होने के कारण तथा बाह्य आचरण में बुद्धिवादी होने से यह विषय में साहित्यिक

ही अधिक रहा। निर्गुण सम्प्रदाय वाले संतों ने भी राम की बहुरिया बनकर प्रेम और विरह की कल्पना कर ली थी, किंतु सिद्धों की रहस्य-संप्रदाय की परंपरा में तुकनगिरि और रसालगिरि आदि ही शुद्ध रहस्यवादी कवि लावनी में आनन्द और अद्वयता की धारा बहाते रहे। वह वर्तमान हिन्दी काव्य की रहस्यवादी धारा का संबंध इसी आनंदवादी धारा से जोड़ते हैं। "वर्तमान हिंदी में इस अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी व्यंजना होने लगी है; वह साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है।"

प्रसाद के इस वक्तव्य से हमें उनके काव्य के संबंध में एक नई दिशा का पता चलता है। अतः उनके सारे काव्य को इस नई वीथिका में रखकर देखना पड़ता है। वह वीथिका है आनंदवाद की व्याख्या, उसकी साधना और साहित्य की परंपरा। सिद्धों के समय से आनंदवाद के काव्य की एक धारा हिंदी में चली आ रही है। इस धारा के कवियों और साधकों ने अनेक छंदों और अनेक रूपों में अपने काव्य को व्यक्त किया है और संत और भक्त-साहित्य इससे बराबर प्रभावित होते रहे हैं। धीरे-धीरे इस आनंदवादी धारा का साहित्यिक महत्त्व नष्ट हो गया और तुकनगिरि और रसालगिरि जैसे अज्ञात कवि असाहित्यिक लोकछन्दों (लावनी, गजल, कव्वाली आदि) में इसमें थोड़ा बहुत योग देते रहे। प्रसाद का अपना काव्य इसी आनन्दवादी धारा का वर्तमान संस्करण है। इसमें 'कामायिनी' सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है।

तब 'कामायिनी' की मूल प्रेरणा के लिये हमें बहुत पीछे आगमों, तंत्रों और आन्दवादी गीतों-प्रगीतों तक जाना पड़ेगा। तभी हम प्रसाद की इस कृति का महत्त्व समझ सकेंगे। हमारे साहित्य और हमारी साधना के एक लुप्तप्राय अंग को भावुक प्रसाद ने

सारी साहित्यिक सचाई के साथ उभार कर हमारे सामने रखा है। इसमें कितना अंश उनका है, कितना प्राचीन आगमकारों और आनन्दवादियों का, यह कहना कठिन है, परंतु प्रसाद की 'कामायिनी' हमारी साधना को एक नया मार्ग बताती है और एक नये जीवन संदेश से हमें स्पंदित करती है।

६

प्रसाद के काव्य और उनकी कला का अध्ययन

'प्रसाद' की कविता के विकास का इतिहास आधुनिक हिन्दी काव्य के छायावादी स्कूल के विकास का इतिहास है। अतः नई कविता की प्रवृत्तियाँ समझने के लिए प्रसाद के काव्य और उनकी कला का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। परन्तु इस प्रकार के अध्ययन के संबंध में कई कठिनाइयाँ भी हैं। पहली कठिनाई तो यह है कि प्रसाद का काव्य ब्रजभाषा से शुरू होकर द्विवेदीयुग की काव्य-धारा से प्रभावित होता हुआ नये युग की ओर बढ़ता है। प्रारंभिक काव्य में ब्रजकाव्य और सामयिक खड़ी बोली काव्य का प्रभाव विशेष रूप से अंकित है। उसमें हमें प्रसाद की नई प्रवृत्तियों, नई छायावादी दिशाओं का अध्ययन करने योग्य सामग्री तो मिल जायगी। परन्तु जिसे हम 'प्रसाद का वैशिष्ठ्य' या 'प्रसाद का काव्य' कहेंगे, वह वस्तु इन रचनाओं में अलभ्य है। वास्तव में प्रसाद का व्यक्तित्व पहली बार 'आँसू' (१६२५) में स्पष्ट रूप से हमारे सामने आता है। अतः प्रसाद के काव्य और कला के अध्ययन के लिए १६२५ से १६३६ के काव्य को ही हमें आधार बनाना पड़ेगा। इस सारे काव्य में उनकी तीन रचनाएँ ही हमें उपलब्ध हैं—आँसू (१६२५, १६३६,) लहर (द्वि० १६४४) और कामायिनी (१६३६)। प्रसाद के अध्ययन के लिए इन्हीं तीन ग्रंथों का सम्यक् अध्ययन होना आवश्यक है।

परन्तु यहाँ पहुँच कर एक नई कठिनाई उपस्थित होती है। 'आँसू' के संबंध में यह कठिनाई विशेष रूप से है। १९२५ के 'आँसू' को प्रसाद ने दो-तीन बार सँवार कर नया रूप दे दिया है। अपने परिवर्तित एवं परिवर्द्धित रूप में पहले संस्करण से बहुत भिन्न है। प्रस्तुत अध्ययन के लिए हमने अंतिम रूप ही लिया है, अतः अंतिम संस्करण।

नीचे हम भिन्न-भिन्न शीर्षकों के साथ प्रसाद के काव्य और कला पर विस्तृत रूप से विचार करेंगे—

१—व्यक्तित्व

प्रसाद का व्यक्तित्व उनके काव्य में पूर्णतयः प्रतिबिंबित है। जो प्रसाद को जानते हैं, वे उनके व्यक्तित्व के सम्मोहन से परिचित है, रसरूप में प्रसाद को उन्होंने ग्रहण किया है। वे कहते हैं, प्रसाद का काव्य उनके व्यक्तित्व का पूर्ण प्रतिबिंब है। नंददुलारे बाजपेयी ने 'जयशंकरप्रसाद' में 'व्यक्तित्व की झलक' शीर्षक लेख में प्रसाद के व्यक्तित्व का रेखा-चित्र उपस्थित करने का सफल प्रयत्न किया है।

ठिगना कद, गेहुआँ रंग, गले में रेशमी कुरता और रेशमी दुशाला। ऊँचा ललाट। होठों में मंद हँसी। आँखों में मादकता की लाली। स्निग्ध-स्वच्छ व्यवहार। प्रसाद का प्रारंभिक जीवन चाहे ऐश्वर्य, प्रेम और विलास की जिस चुहल में कटा हो, प्रसिद्धि के बाद से वह हमारे सामने सुन्दर संयमित रूप में आते हैं। काशी के प्रतिष्ठित सुँघनी साहू के घराने के एकमात्र रत्न वे रह गये हैं। कुटुम्ब का सारा मानापमान, दुःख-सुख ओढ़ कर अपने व्यवसाय को बढ़ा कर ऋणमुक्त होने में उन्होंने कितनी शक्ति लगाई। परन्तु फिर भी साहित्यिकों और रसिक मित्रों के लिए वे सहज सुगम रहे; यह क्या कम बात है। दालमंडी में

उनकी दूकान साहित्यिकों का अड्डा बन गई थी और नवयुग के नए गीतों में से कितने इसी संकीर्ण गली में सौन्दर्य और प्रेम के क्रिय-विक्रय के तमाशों का देखते हुए उन्होंने गुनगुनाया होगा।

हिन्दी काव्य धारा में पहली बार व्यक्तित्व का प्रकाशन 'छायावाद' काव्य में हुआ। सिद्धों की कविता (७५० ई०) से लेकर द्विवेदीयुग (१९२०) तक साहित्यकार और कवि सामान्य सत्य की बात कहते थे, वे सब के लिए गीत गाते हैं, केवल अपने हृदय की अपनी अन्यतम भावनाओं का प्रकाशन उनके लिए अक्षम्य अपराध था। 'भणिति' (कविता के किसी चरण में उपनाम रखने की पद्धति) प्रारंभिक काल से ही चली आती थी। कवि कोई बात कहकर अपने नाम की छाप उस पर लगा ही अपने कर्तव्य को समाप्त कर देता। यही उसका कवि-कर्म था, न इससे कम, न इससे अधिक। इससे उसके 'अहम्' मात्र का प्रकाशन होता था, या कर्त्ता-संबंधी गुत्थियाँ नहीं पड़ने पाती थीं। परन्तु कवि का मौलिक दृष्टिकोण भी उस युग में व्यक्तिगत नहीं माना जाता था। अतः काव्य में वैयक्तिकता का लगभग अभाव है।

रीतिकाल का कवि

राधा कन्हाई सुमिरन को बहानो है

कहकर अपनी अन्यतम, एकांतिक, गर्हित वासनाओं को भी लोक-नायक कृष्ण और लोक-नायिका राधा पर थोप देता था और स्वयं तटस्थ खड़ा रहकर नाम की 'छाप' भर देकर हट जाता था। सच तो यह है कि आधुनिक काव्य से इतर हिन्दी का सारा काव्य विशेप-विशेप सामाजियों, भूमियों एवं आन्दोलनों का प्रतिनिधित्व करता दिखाई पड़ता है। कवि को हृदय—मन जो वह अनुभव करता है देने के लिए पागल नहीं हो उठा है।

१६वीं शताब्दी में हिन्दी कवि सामन्तों, राजा-महाराजाओं और आश्रयदाता सेठों के दरबार से निकल कर सामान्य जनता के पास आया। कवि-सम्मेलन, प्रेस, पत्र-पत्रिकाएँ, प्रकाशन की सुविधाएँ—इन नई बातों ने काव्य को सामाजिक भूमि से हटा कर व्यक्तिवादी बना दिया। जहाँ सामन्तशाही थी, वहाँ व्यक्ति की क्या महानता थी। अब इन नए आन्दोलनों के फलस्वरूप व्यक्ति की आत्मा मुक्त हो गई। द्विवेदीयुग आर्य समाजी युग भी था। उस युग में आचार-नियमन एवं सामाजिकता को प्रधानता थी। व्यक्ति को निषेधों के बंधन ने जकड़ लिया था। नए काव्य (छायावाद) ने इस बंधन का विरोध किया। कवि ने बंधनों को तोड़कर एक बंधनहारा चिंतना एवं उत्तेजना का अनुभव किया। प्रकृति, मनुष्य, सुख-दुःख, जीवन, सब के साथ एकात्म होकर, बाह्य जगत् में स्वयं निष्ठ हो जब नया कवि हमारे सामने आया, तब हमें तो वह इतना नया-नया लगा कि हम उसका विरोध कर उठे। उसे 'छाप' का आग्रह नहीं था। जो कुछ वह लिखता था, वह अन्य से भिन्न होता था। छाप के बिना भी उसका व्यक्तित्व पहचान में आ सकता था। अतः नए छायावादी काव्य में व्यक्ति का निजी स्वर पहली बार काव्य में स्वतंत्र होकर बोला। यही इस नये काव्य की शक्ति थी। कविता कवियों के लिए आत्मा की प्रिय वस्तु बन गई। कवि-कर्म व्यक्तिगत साधना हो गया। कवियों ने अपना भिन्न-भिन्न व्यक्तित्व विकसित करने की बड़ी चेष्टा की। वे सफल भी हुईं।

प्रसाद का काव्य उनकी अपनी निजी साधना से शक्ति प्राप्त करता है, इसी से व्यक्तित्व भी। प्रसाद का ऐश्वर्य उनका विलासमय भ्रूभङ्ग, उनकी जीवन-मृत्यु के आरपार देखने वाली अंतर्दृष्टि, उनका आनन्द, उनकी चुहलें; फिर उनकी गुरु-गंभीरता, ये सब विषय प्रसाद के व्यक्तित्व से ही उद्भूत हुए हैं।

इस व्यक्तित्व को समझे और सुलझाये वग़ैर हम 'आँसू', 'लहर' और 'कामायिनी' को अस्पष्ट, रहस्यवादी या छायावादी ही कह सकेंगे।

२—कल्पना

प्रसाद के काव्य में कल्पना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कहीं-कहीं कल्पना-बाहुल्य के कारण कवि अपना संतुलन तक खो बैठता है। साधारण पाठक अधिकांश कल्पना चित्रों को ग्रहण ही नहीं कर सकता। द्विवेदीयुग के काव्य में कल्पना लांछित थी। बँधी-सधी उपमाएँ-उत्प्रेक्षाएँ। अधिकतर यह भी नहीं। केवल वर्णनात्मक और इतिवृत्तात्मक छन्दोबद्ध विचार या भाव। इसी से द्विवेदीयुग के पाठकों और कवियों को छायावादी काव्य भूत की तरह भयंकर लगा।

परन्तु १९२५ में प्रसाद ने 'आँसू' के साथ काव्य का एक नया रूप ही जनता के सामने रख दिया।'आँसू' का भव्य प्रासाद कल्पना के आधार पर ही खड़ा था। कवि की कल्पना ने पृथ्वी से उठकर आकाश को छू लिया और उसके बाहर भी घूम आई। कवि कहने लगा—

बुलबुले सिंधु के फूटे
नक्षत्र-मालिका टूटी
नभ-मुक्त-कुन्तला, धरणी
दिखलाई देती लूटी

इसमें कवि ने विश्व में दुःख की असीम व्यापकता दिखलाई हैं। सिंधु दुखी है, ये बुलबुले उसके हृदय के छाले हैं जो फूट गये हैं। तारे टूट-से रहे हैं। आकाश मुक्तकुंतला नारी की तरह पागल है। पृथ्वी की श्री जैसे लुट गई हो। इस प्रकार के व्यंजक भावों को कवि ने स्वच्छंद भावों के सहारे मूर्ति-

मान करने की चेष्टा की है। वह कितना सफल है, यह दूसरी बात है। परन्तु यह स्पष्ट है कि उसने कल्पना के बंधन खोल दिये हैं और वह मुक्त गगन में विहार करने लगी है। प्रेयसी की हँसी के लिए कवि प्रसिद्ध उपमानों को लेते हुए भी एक नया वातावरण बनाने में संलग्न है। वह कहता है—

विकसित सरसिज-वन-वैभव
मधु-ऊषा के अंचल में
उपहास करावे अपना
जो हँसी देख ले पल में

इसी के साथ उसके मन में प्रभातकालीन सरोवर का चित्र आ जाता है जो सद्यः विकसित कमलों से भरा हुआ है। प्रेमी के लिए प्रेम ही ध्रुव है। परन्तु कवि इतनी सी बात कहकर नहीं रह जाता। वह एक विराट् चित्र की कल्पना करके ही संतुष्ट होता है—

मेरे जीवन का जलनिधि
बन अंधकार ऊर्मिल हो
आकाश-दीप-सा तब वह
तेरा प्रकाश झिलमिल हो

यहाँ निराशा के अंधकार सागर की कल्पना की गई है जिसमें बराबर तरंगें भी उठ रही हैं। परन्तु ये कल्पना-चित्र तो पाठक की पहुँच से बाहर नहीं हैं। अस्पष्ट, रहस्यमय चित्र वे हैं जहाँ कवि स्वयं प्रकृति के सूक्ष्म भावचित्रों के सहारे आगे बढ़ता है, जहाँ वह कहता है—

निश्वास मलय में मिलकर
छायापथ छू आयेगा

यहाँ निश्वास, मलय और छायापथ तीनों सूक्ष्म भावचित्र मात्र हैं, अतः क्रियाओं का चित्र ठीक नहीं उतरता। इस प्रकार की

इस व्यक्तित्व को समझे और सुलझाये वग़ैर हम 'आँसू', 'लहर' और 'कामायिनी' को अस्पष्ट, रहस्यवादी या छायावादी ही कह सकेंगे।

२—कल्पना

प्रसाद के काव्य में कल्पना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कहीं-कहीं कल्पना-बाहुल्य के कारण कवि अपना संतुलन तक खो बैठता है। साधारण पाठक अधिकांश कल्पना चित्रों को ग्रहण ही नहीं कर सकता। द्विवेदीयुग के काव्य में कल्पना लांछित थी। बँधी-सधी उपमाएँ-उत्प्रेक्षाएँ। अधिकतर यह भी नहीं। केवल वर्णनात्मक और इतिवृत्तात्मक छन्दोवद्ध विचार या भाव। इसी से द्विवेदीयुग के पाठकों और कवियों को छायावादी काव्य भूत की तरह भयंकर लगा।

परन्तु १६२५ में प्रसाद ने 'आँसू' के साथ काव्य का एक नया रूप ही जनता के सामने रख दिया।'आँसू' का भव्य प्रासाद कल्पना के आधार पर ही खड़ा था। कवि की कल्पना ने पृथ्वी से उठकर आकाश को छू लिया और उसके बाहर भी घूम आई। कवि कहने लगा—

बुलबुले सिंधु के फूटे
नक्षत्र-मालिका टूटी
नभ-मुक्त-कुन्तला, धरणी
दिखलाई देती लूटी

इसमें कवि ने विश्व में दुःख की असीम व्यापकता दिखलाई है। सिंधु दुखी है, ये बुलबुले उसके हृदय के छाले हैं जो फूट गये हैं। तारे टूट-से रहे हैं। आकाश मुक्तंकुतला नारी की तरह पागल है। पृथ्वी की श्री जैसे लुट गई हो। इस प्रकार के व्यंजक भावों को कवि ने स्वच्छंद भावों के सहारे मूर्ति-

मान करने की चेष्टा की है। वह कितना सफल है, यह दूसरी बात है। परन्तु यह स्पष्ट है कि उसने कल्पना के बंधन खोल दिये हैं और वह मुक्त गगन में विहार करने लगी है। प्रेयसी की हँसी के लिए कवि प्रसिद्ध उपमानों को लेते हुए भी एक नया वातावरण बनाने में संलग्न है। वह कहता है—

विकसित सरसिज-वन-वैभव
मधु-ऊषा के अंचल में
उपहास करावे अपना
जो हँसी देख ले पल में

हसी के साथ उसके मन में प्रभातकालीन सरोवर का चित्र आ जाता है जो सद्यः विकसित कमलों से भरा हुआ है। प्रेमी के लिए प्रेम ही ध्रुव है। परन्तु कवि इतनी सी बात कहकर नहीं रह जाता। वह एक विराट् चित्र की कल्पना करके ही संतुष्ट होता है—

मेरे जीवन का जलनिधि
बन अंधकार ऊर्मिल हो
आकाश-दीप-सा तब वह
तेरा प्रकाश झिलमिल हो

यहाँ निराशा के अंधकार सागर की कल्पना की गई है जिसमें बराबर तरंगें भी उठ रही हैं। परन्तु ये कल्पना-चित्र तो पाठक की पहुँच से बाहर नहीं हैं। अस्पष्ट, रहस्यमय चित्र वे हैं जहाँ कवि स्वयं प्रकृति के सूक्ष्म भावचित्रों के सहारे आगे बढ़ता है, जहाँ वह कहता है—

निश्वास मलय में मिलकर
छायापथ छू आयेगा

यहाँ निश्वास, मलय और छायापथ तीनों सूक्ष्म भावचित्र मात्र हैं, अतः क्रियाओं का चित्र ठीक नहीं उतरता। इस प्रकार की

कल्पना काव्यरस के ग्रहण में बाधित होती है। और कहीं-कहीं तो कवि की कल्पना निर्बंध हो मुक्त विहार करने लगती है—

चमकूँगा धूलि कणों में
सौरभ हो उड़ जाऊँगा
पाऊँगा कहीं तुम्हें तो
ग्रहपथ में टकराऊँगा

इस प्रकार के साहसिक, कल्पनातिरेक-पूर्ण चित्रों ने छायावाद के विरुद्ध जनता में एक दृढ़ भावना भर दी। नया काव्य अकर्मण्य कवियों का अमूर्त्त, अस्पष्ट दिवास्वप्न समझा जाने लगा।

कल्पनातिरेक के कारण ही कवि अत्यंत सूक्ष्म रह गया। वह एकदम अमूर्त्त वस्तुओं की ओर गया। वह 'मानस की गहराई' को भी मूर्त्त मानकर उससे वार्तालाप करने लगा—

ओ री मानस की गहराई

परन्तु यहाँ साधारण मस्तिष्क बहुत दूर जा पड़ता है। यह नहीं कि 'प्रसाद' के काव्य में शांत, संयमित कल्पना-चित्र है ही नहीं। कवि पेशोला के गत गौरव का वर्णन करता हुआ लिखता है—

आज भी पेशोला के
तरल-जल-मण्डलों में
वही शब्द घूमता-सा
गूँजता विकल है
किन्तु वह ध्वनि कहाँ?
गौरव की छाया पड़ी
माया है प्रताप की
वही मेवाड़
किन्तु आज प्रतिध्वनि कहाँ?

(पेशोला की प्रतिध्वनि)

इस प्रकार की संवेदनाशील कविता प्रत्येक पाठक की पकड़ में आ सकती है। जहाँ कल्पना-मूर्ति अनेक चित्रों में उलझकर अस्पष्ट हो जाती है, वहीं वह रसोद्रेक में बाधा पहुँचाती है। परन्तु कहीं-कहीं संयम में बद्ध हो यही कल्पना 'प्रसाद' के काव्य को शक्तिशाली भी बना देती है। मनु इड़ा से कहते हैं—

नहीं पा सका हूँ मैं जैसे
जो तुम देना चाह रहीं
क्षुद्र पात्र, तुम उसमें कितनी
मधु-धारा हो ढाल रही

यहाँ कवि की कल्पना एक विचार को उपमा द्वारा सहज ही मूर्त्त कर देने में सफल हुई। कल्पना का सर्वश्रेष्ठ विलास 'लज्जा' सर्ग में मिलेगा। कवि लज्जा द्वारा जो कहलाता है, वह भाषा द्वारा समेटा नहीं जा सकता। लज्जा कहती है—

इतना न चमत्कृत हो वाले
अपने मन का उपकार करो
मैं एक पकड़ हूँ जो कहती
ठहरो, कुछ सोच विचार करो
अंबर-चुम्बी हिम-शृंगों से
कलरव कोलाहल साथ लिये
विद्युत की प्राणमयी धारा
बहती जिसमें उन्माद लिये
मङ्गल कुंकुम की श्री जिसमें
निखरी हो ऊषा की लाली
भोला सुहाग इठलाता हो
ऐसी हो जिसमें हरियाली

हो नयनों का कल्याण बना
आनंद सुमन-सा विकसा हो
वासंती के वन वैभव में
जिसका पंचम स्वर पिक सा हो, इत्यादि

इतनी सूक्ष्म कल्पना के सहारे भावों को आगे बढ़ाने के लिए 'प्रसाद' जैसी कुशल लेखनी ही चाहिये। परन्तु यह नहीं कि 'प्रसाद' सौन्दर्य के 'हाथीदाँत' के टुकड़े पर पच्चीकारी मात्र कर लेते हों, उनकी कल्पना उदात्त भावों को विराट चित्रपट पर उतार लाने में भी सफल है। जीवन की रहस्यमयता का चित्रण करते हुए वे लिखते हैं—

किस गहन गुहा से अति अधीर
झंझा प्रवाह-सा निकला यह जीवन विक्षुब्ध महासमीर
ले साथ विकल परमाणु पुञ्ज नभ, अनिल अनल क्षिति और नीर
भयभीत सभी को भय देता भय की उपासना में विलीन
प्राणी कटुता को कँट रहा जगती को करता अधिक दीन
निर्माण और प्रतिपद विनाश में दिखलाता अपनी क्षमता
संघर्ष कर रहा सा जब से, सब से विराग, सब पर ममता
अस्तित्व चिरंतन धनु से कब यह छूट पड़ा है विषम तीर
किस लक्ष्य-भेद को शून्य चीर ?

इस प्रकार के कल्पना-विलास से 'प्रसाद' का सारा काव्य भरा पड़ा है।

३—सौन्दर्य : मानव

'प्रसाद' का अधिकांश काव्य मनोवैज्ञानिक भित्ति पर खड़ा है। वह अशरीरी और अमूर्त्त भावों और विचारों के कवि हैं। 'आँसू' प्रेम-काव्य है। वहाँ जो सौन्दर्य का वर्णन हुआ है,

उसमें प्रेमिका का नखशिख भी है, परन्तु उसमें अंगों का वर्णन-मात्र न होकर कल्पना-विलास है। शुद्ध मानव-सौन्दर्य के चित्रण का प्रयत्न 'कामायिनी' में हुआ है जहाँ हमें मनु, श्रद्धा और इड़ा तीनों के चित्र मिलते हैं। चिंतित मनु का वर्णन इस प्रकार है—

तरुण तपस्वी-सा वह बैठा
साधन करता सुरश्मशान
नीचे प्रलयसिंधु लहरों का
होता था सकरुण अवसान
उसी तपस्वी से लम्बे थे
देवदारु दो चार खड़े
हुए हिम धवल जैसे पत्थर
बन कर ठिठुरे रहे अड़े
अवयव की दृढ़ मांस-पेशियाँ
ऊर्जस्वित था वीर्य अपार
स्फीत शिरायें, रक्त का
होता था जिनमें संचार
चिंता-कातर वदन हो रहा
पौरुष जिसमें ओत-प्रोत
उधर उपेक्षामय यौवन का
बहता भीतर मधुमय स्रोत

श्रद्धा का प्रथम परिचय का चित्र देखिये—

मसृण गांधार देश के नील रोम वाले मेषों के चर्म
ढँक रहे थे उसका वपु कांत बन रहा था वह कोमल वर्म
नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखिला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघ-बन बीच गुलाबी रंग
आह! वह मुख! पश्चिम के व्योम बीच जब घिरते हों घनश्याम
अरुण रविमंडल उनको भेद दिखाई देता तो छविधाम

या कि नव इंद्र नील लघु शृंग फोड़ कर धधक रही हो कांत
एक लघु ज्वालामुखी अचेत माधवी रजनी में अश्रांत
घिर रहे थे घुंघराले बाल अंस अवलंबित मुख के पास
नील घनशावक से सुकुमार सुधा भरने को विधु के पास

ओह उस मुख पर वह मुस्क्यान
रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम

गर्भिणी श्रद्धा का चित्र इससे नितांत भिन्न है—

केतकी गर्भ-सा पीला मुँह
आँखों में आलस भरा स्नेह
कुश कृशता नई लजीली थी
कंपित लतिका-सी लिये देह
मातृत्व बोझ से झुके हुए
बँध रहे पयोधर पीन आज
कोमल काले ऊनों की नव-
पट्टिका बनाती रुचिर साज
सोने की सिकता में मानो
कालिंदी बहती भर उसास
स्वर्गंगा में इंदीवर की
या एक पंक्ति कर रही हास

इड़ा का चित्रण इससे भिन्न कुछ रूपकमय हो गया, इसलिये कि प्रसाद इड़ा में विज्ञानमयी बुद्धिमत्ता का प्रतीक उपस्थित कर रहे थे। परंतु यह चित्र भी उनकी कुशल कवि-लेखनी का प्रमाण है

बिखरी अलकें ज्यों तर्कजाल
वह विश्व मुकुट-सा उज्ज्वलतम शशिखंड सदृश था स्पष्ट भाल

दो पद्म पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल
गुञ्जरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा गान
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान ज्ञान
था एक हाथ में कर्म कलश वसुधा जीवन रस सार लिये
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलंब दिये
त्रिवली थी त्रिगुण तरंगमयी आलोक वसन लिपटा अराल
चरणों में थी गति भरी ताल

इन सब उद्धरणों से स्पष्ट है कि प्रसाद मानव सौन्दर्य के चित्रण में कुशल थे, परंतु जैसा हमने देखा है, वह आरम्भ से रीतिकालीन अस्वस्थ नारी-चित्रण के विरोधी थे। इसीसे उनके नारी-सौन्दर्य चित्रण का आधार अत्यंत निर्मल है। कल्पना के सुन्दरतम उपकरणों ने श्रद्धा और इड़ा की मूर्तियों को सँवारा है। हो सकता है, स्थूल चित्रण के प्रेमी यहाँ कच-कुच-कटाक्ष या परंपरागत नखशिख न पाकर प्रसाद से 'अशरीरी' या 'कामिक मनोवृत्तियों के प्रच्छन्न पोषण' की शिकायत की, परतु प्रसाद की दृष्टि वाह्य-सौन्दर्य के तरलतम तत्त्वों में पकड़ती है। नारी के सौन्दर्य चित्रण की जो नखशिख परिपाटी विद्यापति और सूरदास के काव्य में होती हुई देव और पद्माकर तक पहुँची है, प्रसाद का अलंकारिक एवं प्रतीकात्मक चित्रण इसका विरोधी है। पुरुप-सौन्दर्य के चित्रण तो सूर और तुलसी के काव्य पर समाप्त हो जाते हैं। अन्य भक्त-कवि राधा की झलक से चौंधिया गये और रीति-कवियों ने नारी से ऊपर दृष्टि उठा कर नर की ओर देखा भी नहीं।

प्रकृत प्रेम-काव्य में नर-नारी का सौन्दर्य विलास-मात्र नहीं होता। इसी से प्रसाद के तीनों प्रधान पात्र बड़ी सतर्कता से चित्रित किये गये हैं और उनमें स्वस्थ नर-नारी का ही रूप खुलता है।

४—सौन्दर्य : प्रकृति

'इंदु' (१६०६-१६१६) में 'प्रसाद' का पहला लेख पहली संख्या में प्रकाशित हुआ था। उसका शीर्षक था प्रकृति। 'इंदु' में प्रकाशित 'प्रसाद' की आरंभिक रचनाओं के सम्बन्ध में लिखते हुए हमने उनके प्रारंभिक प्राकृतिक काव्य के भी उद्धरण दिए हैं। अन्य छायावादी कवियों के साथ 'प्रसाद' की दृष्टि पहले प्रकृति के सौन्दर्यपूर्ण गति-विधानों पर गई। 'चित्राधार' में ही वह कहते हैं—

नील नभ में शोभित विस्तार
प्रकृति है सुन्दर परम उदार
नर-हृदय परिमित, पूरित स्वार्थ
बात जँचती कुछ नहीं यथार्थ

इसके बाद तो उनके सारे काव्य में प्रकृति के अनेक रूपों के शुद्ध एवं रहस्यात्मक चित्र मिलेंगे। उन्होंने अपने इस प्रकृति प्रेम को दर्शन की दृढ़ भित्ति देने की भी चेष्टा की है। वे कहते हैं—"साहित्य में विश्वसुन्दरी प्रकृति में चेतना का आरोप संस्कृत वाङ्मय में प्रचुरता से उपलब्ध होता है। यह प्रकृति अथवा शक्ति का रहस्यवाद : सौन्दर्य लहरी के 'शरीरंत्वं शम्भो–' का अनुकरण मात्र है।" (रहस्यवाद : काव्य और कला, पृ० ३६) 'कामायिनी' में प्रकृति के इसी विराट एवं रहस्यमय रूप का अंकन है। कथावस्तु में प्रकृति को इस प्रकार गूँथ दिया गया है कि किसी भी प्रकार दोनों को अलग करना कठिन हो जाता है। प्रारम्भ में प्रकृति का एक प्रलय चित्र है—

नीचे जल था, ऊपर हिम था
 एक तरल था, एक सघन
एक तत्व की ही प्रधानता
 कहो उसे जड़ या चेतन

दूर-दूर तक विस्तृत था हिम
स्तब्ध उसी के हृदय समान
नीरवता-सी शिला चरण से
टकराता फिरता पवमान

× × ×

उधर गरजतीं सिंधु लहरियाँ
कुटिल काल के जालों-सी
चली आ रहीं फेन उगलती
फन फैलाये व्यालों-सी
धँसती धरा, धधकती ज्वाला
ज्वालामुखियों के निःश्वास
और संकुचित क्रमशः उसके
अवयव का होता था ह्रास
तरल तरंगाघातों से उस
क्रुद्ध सिंधु के, विचलित-सी
व्यस्त महा कच्छप-सी धरणी
ऊभ-चूम थी विकलित-सी
उड़ने लगा विलास वेग-सा
वह अति भैरव जल-संघात
तरल तिमिर प्रलय पवन का
होता आलिंगन प्रतिघात

कहीं कवि वाह्य चित्रण से हटकर प्रकृति की रहस्यमयी सत्ता पर आता है—

महानील उस परम व्योम में अंतरिक्ष में ज्योतिमान
ग्रह-नक्षत्र और विद्युतकण करते हैं किसका संधान
छिप जाते हैं और निकलते आकर्षण में खिंचे हुए
तृण-वीरुध लहलहे हो रहे किसके रस में सिंचे हुए

सिर नीचा कर किसकी सत्ता सब करते स्वीकार यहाँ
सदा मौन-से प्रवचन करते जिसका वह अस्तित्व कहाँ

कहीं वह प्रकृति में पात्र के हृदय के स्पंदन सुनते हैं। मनु चले गये हैं। वह रात श्रद्धा के लिये सुन्दर होने पर भी कितनी भयावह है, कितने धूमिल, कितनी निस्तब्ध ?

उजले-उजले तारक झलमल
प्रतिबिम्बित सरिता वक्षस्थल
धारा बह जाती बिम्ब अटल
सुनता था धीरे पवन पटल
चुपचाप खड़ी थी वृक्षपाँत
सुनती जैसे कुछ निजी बात
धूमिल छाया में रही घूम
लहरी पैरों को रही चूम

कहीं अत्यंत ऐश्वर्यशाली कल्पना-चित्र का निर्माण करता है। अलंकृत वर्णनों और शब्दमाधुर्य के सहारे एक अतीन्द्रिय लोक पाठक के नेत्रों के आगे उपस्थित हो जाता है—

नवनील कुञ्ज हैं झीम रहे
कुसुमों की कथा न बंद हुई
है अंतरिक्ष आमोद भरा
हिमकणिका ही मकरंद हुई
इस इंदीवर से गंध-भरी
बुनती जाती मधु की धारा
मन-मधुकर की अनुरागमयी
बन रही मोहिनी-सी कारा

सच तो यह है, प्रसाद के प्राकृतिक चित्रों का ऐश्वर्य और उनका वैभिन्य अद्भुत है। प्रलय के बाद प्रकृति का उल्लासमय मुख देखिये—

वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का
आज लगा हँसने फिर से
वर्षा बीती हुआ सृष्टि में
शरद विकास नये सिर से

नव कोमल आलोक बिखरता
हिम संसृति पर भर अनुराग
सित सरोज पर क्रीड़ा करता
जैसा मधुमय पिंग पराग

नेत्र निमीलन करती मानो
प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने
जलधि लहरियों की अँगड़ाई
बार-बार जाती सोने

हिमालय का एक सुन्दर चित्र है—

अचल हिमालय का शोभनतम
लता कलित शुचि सानु शरीर
निद्रा में सुख स्वप्न देखता
जैसे पुलकित हुआ अधीर

× × ×

संध्या घन-माला की सुन्दर
ओढ़े रंग-बिरंगी छींट
गगन-चुम्बिनी शैल श्रेणियाँ
पहने हुए तुषार-किरीट

सारी 'कामायिनी' प्रकृति के स्वप्न-शासन में गढ़ी गई है :

देख लो, ऊँचे शिखर का व्योम-चुम्बन व्यस्त
लौटना अंतिम किरण का और होना अस्त

चलो तो इस कौमुदी में देख आवें आज
प्रकृति का यह स्वप्न-शासन, साधना का राज

'प्रसाद' ने प्रकृति को इसी 'स्वप्न', इसी 'साधना भूमि', 'शम्भु का शरीर' या उसकी शक्ति के रूप में देखा समझा है।

५—प्रेम

'प्रेमपथिक' की रचना के आरम्भ से जीवन के अंत तक 'प्रसाद' ने प्रेम की रस-भीनी बाँसुरी बजाई है। प्रेम और वासना की मीमांसा करने वाले हिंदी कवि 'प्रसाद' प्रथम हैं। 'प्रेमपथिक' में उन्होंने प्रेम को अनन्त रहस्यमयता प्रदान कर दी थी—

इस पथ का उद्देश्य नहीं है अंत भवन में टिक रहने
किंतु चले जाना उस हद तक जिसके आगे राह नहीं

प्रेम का यह उद्देश्य रीतिकालीन कामिक वृत्ति से कितना महान है।

प्रेम के प्रति प्रसाद का दृष्टिकोण अत्यंत स्वस्थ है। वह उसे न एकदम त्याग कर चलते हैं, न एकदम लौकिक। उनका प्रेमी लौकिक प्रेममें अध्यात्म का संकेत पाता है। भक्त कवियों ने प्रेम को इतना ईश्वरोन्मुख कर दिया कि वह इस संसार को अपदार्थ, अयथार्थ और ताज्य समझने लगा। शृङ्गार रीति कवियों ने उसे वासना के पंक से कलुषित कर दिया। आधुनिक हिंदी प्रेम-काव्य इन दोनों अतियों को छोड़ कर बीच के प्रकृत एवं स्वस्थ पथ पर चलता है। वह अध्यात्म में लोक और लोक में अध्यात्म का दर्शन करता है। वह लौकिक प्रेम का आध्यात्मिक प्रेम के उच्च स्थल पर उठा कर देखता है। इससे भले ही कहा जाय कि उसमें कामिक वृत्तियों का प्रच्छन्न पोषण है या यह 'काया' से पलायन-मात्र है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि प्रेम के

संबंध में यह नई भावना युगानुकूल है और भारतीय सांस्कृतिक विचारधारा के विपरीत भी नहीं पड़ती। प्रसाद जीवन को अनंत मानते हैं, इससे प्रेम भी स्वतः अनंत हो जाता है—

हे जन्म-जन्म के जीवन
साथी संसृति के दुःख में
पावन प्रभात हो जावे
जागो आलम के सुख में
जगती का कलुष अपावन
तेरी विदग्धता पावे
फिर निखर उठे निर्मलता
यह पाप पुण्य हो जावे (आँसू)

'कामायिनी' में प्रेम के राजस, तामस और सात्विक तीनों रूप आते हैं। श्रद्धा सात्विक प्रेम की प्रतीक, मनु तापस प्रेम के, इड़ा राजस की। इस प्रकार प्रेम के तीनों सप्तकों को प्रसाद ने छू लिया है। श्रद्धा तो प्रेमपुत्तलिका ही है—

यह लीला जिसकी विकस चली
वह मूल वृद्धि थी प्रेमकला
उसका सन्देश सुनाने को
संसृति में आई यह अमला

परन्तु मनु का प्रेम उद्दाम है, वासना-प्रधान है, कायिक है। 'काम' और 'वासना' शीर्षक सर्गों में प्रसाद ने इसी उद्दाम प्रेम की मीमांसा की है। चुपके-चुपके प्रेम जीवन में प्रवेश करता है—

मधुमय वसंत जीवन वन के
बह अंतरिक्ष की लहरों में
कब आये थे तुम चुपके से
रजनी के पिछले पहरों में

क्या तुम्हें देख कर आते यों
मतवाली कोमल बोली थी
उस नीरवता में अलसाई
कलियों ने आँखें खोली थीं

मनु और श्रद्धा के प्रेम की विभिन्नता को प्रसाद यों प्रकट करते हैं—

एक जीवन सिंधु था, तो वह लहर लघु लोल
एक नवल प्रभात, तो वह स्वर्ग किरण अमोल
एक था आकाश वर्षा का सजल उद्दाम
दूसरा रंजित किरण से श्री-कलित घनश्याम

मनु ने श्रद्धा के सामने प्रणय-निवेदन किया। नारी पुरुष के इस आत्मसमर्पण की अवहेलना न कर सकी—

मधुर व्रीड़ा मिश्र चिंता साथ ले उल्लास
हृदय का आनंद कूजन लगा करने रास
गिर रहीं पलकें, झुकी थी नासिका की नोक
भ्रू-लता थी कान तक चढ़ती रही बेरोक
स्पर्श करने लगी लज्जा कलित कर्ण कपोल
खिला पुलक कदंब-सा था भरा गद्गद् बोल

परन्तु कायिक प्रेम की भित्ति ही कितनी! गर्भिणी श्रद्धा ने इस वासना के प्रवाह को झकझोर दिया—

मनु ने देखा जब श्रद्धा का
वह सहज खेद से भरा रूप
अपनी इच्छा का दृढ़ विरोध
जिसमें वे भाव नहीं अनूप
वे कुछ भी बोले नहीं, रहे
चुपचाप देखते साधिकार

श्रद्धा कुछ-कुछ मुसकरा उठी
ज्यों जान गयी उनका विचार

अंत में मनु भाग जाते हैं। वात्सल्य-भाव में पक कर जब श्रद्धा के प्रति उनका प्रेम तपा सोना हो जाता है और इड़ा का राजस प्रेम नग्नरूप में तृष्णा बन कर सामने आता है, तब फिर प्रत्या-वर्तन होता है। अब मनु श्रद्धा के महान मातृत्व से परिचित होते हैं—

कुछ उन्नत थे वे शैल शिखर
फिर भी ऊँचा श्रद्धा का सिर
वह लोक अग्नि में तप गल कर
थी ढली स्वर्ण प्रतिमा बनकर
मनु ने देखा कितना विचित्र
वह मातृमूर्ति को विश्वमित्र

इसी से वे अब उसे पथप्रदर्शिका मान लेते हैं—

श्रद्धे ! बस तू ले चल
उन चरणों तक दे निज संबल
सब पाप-पुण्य जिसमें जल-जल
पावन बन जाते हैं निर्मल
मिटते असत्य से ज्ञान लेश
समरस अखण्ड आनन्द वेश

वास्तव में श्रद्धा 'प्रेमपथिक' की प्रेमभावना का सब से सुन्दर पर्यावसान है। यहाँ प्रेम में देना ही देना है, लेना कुछ भी नहीं। तभी 'लहर' का कवि कहता है, तू क्यों चिल्लाता है, मुझे प्रेम नहीं मिला—

पागल रे ! वह मिलता है कब
उसको तो देते ही हैं सब

आँसू के कण-कण से गिन कर
यह विश्व लिये है ऋण उधार
तू फिर क्यों उठता है पुकार
मुझको न मिला रे कभी प्यार

वह तो अमर जीवन का पहला प्रभात है जो मृत्यु और असफलता, दुःख-शोक से किंचित भी परिचित नहीं—

जिसके आगे पुलकित हो
जीवन है सिसकी भरता
हाँ, मृत्यु नृत्य करती है
मुस्काती खड़ी अमरता
'वह मेरे प्रेम विहँसते
जागो मेरे मधुवन में (आँसू)

इस प्रकार हम प्रसाद को आदि से अंत तक स्वस्थ प्रेम के उदात्त गायक के रूप में पाते हैं।

६—अज्ञात सत्ता

हम बता चुके हैं कि प्रसाद के प्रारंभिक काव्य पर 'गीतांजलि' का प्रभाव है। गीतांजलि में जिस प्रकार रवि ठाकुर ने जीवन-देवता की कल्पना की और उसके प्रति प्रेम और आत्मसमर्पण के गीत गाये उस प्रकार के गीत गाना हिन्दी के छायावादी कवियों के प्रति एक रूढ़ि हो गई। प्रसाद स्वयं अद्वैतनिष्ठ शैवभक्त थे, अतः उन्होंने 'गीतांजलि' के इस संकेत को भी खूब निभाया। सितम्बर १६१६ में प्रकाशित 'सुख की नींद' सॉनेट को रवीन्द्र बाबू की इस कविता से मिलाइए—

तखन रात्रि आँधार हलो, साङ्ग हलो काज
आमरा मने भेपे छिलोमे, आसवे न केउ आज

× × ×

तखन, रात आँधार आछे उठलो वेजे मेरी
के फुकारे—"जाग सवाइ आसे कोरो ना देरि"
कोथाय आलो, कोथाय माल्य, कोथाय आयोजन !
राजा आमार देशे एल, कोथाय सिंहासन !
हाय रे भाग्य, हाय रे लज्जा !
कोथाय सभा, कोथाय सज्जा !
दुयेक जने कहे काने 'वृथा ए क्रन्दन—
रिक्त करे शून्य घरे कसे अभ्यर्थन !'

(अंग्रेजी गीतांजलि, ५१)

परन्तु प्रसाद उपनिषदों की रहस्यवादिता की ओर आकर्षित नहीं थे, अतः उन्होंने इस प्रकार के रहस्यवादी गीत लिखना छोड़ दिया। उनके काव्य में रहस्यवाद आनंदवाद बन कर आया है। उनके गहरे जीवन चिंतन से वह ओतप्रोत है। कवि इस विश्व को परमात्म-तत्त्व से वियोगित 'जले हुए' रूप में देखता है। वह कहता है—

स्नेहालिङ्गन की लतिकाओं की झुरमुट छा जाने दो
जीवनघन ! इस जले जगत को वृन्दावन बन जाने दो

कभी गाता है—

मेरी आँखों की पुतली में
तू बनकर प्राण समा जा रे (लहर)

कहीं उसके वियोग के गीत गाता है—

अरे कहीं देखा है तुमने
मुझे प्यार करने वाले को
मेरी आँखों में आकर फिर
आँसू बन ढरने वाले को

कहीं उसे सम्बोधित कर पुकार उठता है—

अब जागो जीवन के प्रभात !

कभी प्रिय-मिलन-चुहल के एक बड़ा रूपक ही खड़ा कर देता है—

निज अलकों के अंधकार में तुम कैसे छिप आओगे
इतना सजग कुतूहल, ठहरो, यह न कभी बन पाओगे
आह, चूम लूँ जिन चरणों को चाँप-चाँप कर उन्हें नहीं
दुःख दो इतना, अरे अरुणिमा ऊषा-सी वह उधर बही
वसुधा चरण चिह्न-सी बनकर यहीं पड़ी रह जायेगी
प्राची रज-कुंकुम ले चाहे अपना भाल सजायेगी
देख न लूँ, इतनी ही तो है इच्छा ? लो, सिर झुका हुआ
कोमल किरन उँगलियों से ढँक दोगे यह दृग खुला हुआ
फिर कह दोगे, पहचानो तो, मैं हूँ कौन, बताओ तो
किन्तु उन्हीं अधरों से, पहिले उनकी हँसी दबाओ तो
सिहर भरे निज शिथिल मृदुल अंचल को अधरों से पकड़ो
बेला बीत चली है चंचल बाहुलता से आ जकड़ो

× × ×

तुम हो कौन और मैं क्या हूँ ?
इसमें क्या है धरा, सुनो
मानस-जलधि रहे चिर-चुम्बित
मेरे क्षितिज उदार बनो

यहाँ वही अज्ञात सत्ता 'क्षितिज' नाम से पुकारी गई । कवि प्रार्थना करता है कि यह लुकाछिपी बंद हो जाये, मानवात्मा और परमात्मा का सहज संबंध स्थापित हो। प्रयत्न करने पर भी जब वह अज्ञात तत्त्व अपने को छिपा नहीं सकता तो यह चुहल क्यों ? बात उसी तरह की है जिस तरह की बात भक्तों ने कही है, परन्तु परंपरा से हटकर अमूर्त्त भावों से संबद्ध होने के कारण उसमें रहस्यमयता आ जाना अनिवार्य है ।

७—जीवन-संदेश

कवि के जीवन-संदेश को हमने 'कामायिनी' शीर्षक के अंतर्गत विस्तारपूर्वक समझाया है। यहाँ हमें केवल यही कहना है कि आधुनिक कवियों में प्रसाद जी का एक विशिष्ट स्थान है। इस विशिष्ट स्थान का कारण उनकी दार्शनिक गंभीरता है। पंत, निराला और महादेवी की दृष्टि एकांगी है। ये कवि जीवन की अनुभूतियों में उतने गहरे नहीं उतरते। इनमें पंत ने समय-समय पर मानवजीवन और नवीन मानव-समाज की कल्पना को भी अपनी कविता का विषय बनाया है, परन्तु वह 'वादों' के बाहर स्वतन्त्र चिंतक के रूप में हमारे सामने नहीं आते।

'जीवन-संदेश' की दृष्टि से 'कामायिनी' विशेष महत्त्वपूर्ण है और आज वह एक महान युग-स्तंभ बन गई। उसमें जीवन के मौलिक तत्त्वों की गवेषणा की गई है और विभिन्न विरोधी तत्त्वों में सामञ्जस्य लाने की चेष्टा की गई है। प्रसाद के नाटक उपन्यास और उनके निबंध उनके जीवन-संबंधी दृष्टिकोण को अधिक स्पष्ट रूप से हमारे सामने रखते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि प्रसाद का एक सर्वांगीण अध्ययन उपस्थित किया जाय और उन्हें एक महान युग नेता के रूप में देखा-परखा जाय। तभी हम उनकी महत्ता का पता पा सकेंगे।

८—शैली

प्रसाद की शैली एक आनंदवादी, चिंतक कवि की शैली है। जब हम यह कहते हैं तो हम उनकी प्रौढ़ शैली के संबंध में ही कहते हैं। वैसे प्रसाद के काव्य में अनेक प्रकार की शैलियाँ हैं और एक लंबे युग (१९०९-३६) तक वे बराबर अपनी शैलियों का परिष्कार करते रहे हैं। 'आँसू' के तीनों संस्करणों में जो

कहीं उसे सम्बोधित कर पुकार उठता है—

अब जागो जीवन के प्रभात !

कभी प्रिय-मिलन-चुहल के एक बड़ा रूपक ही खड़ा कर देता है—

निज अलकों के अंधकार में तुम कैसे छिप आओगे
इतना सजग कुतूहल, ठहरो, यह न कभी बन पाओगे
आह, चूम लूँ जिन चरणों को चाँप-चाँप कर उन्हें नहीं
दुःख दो इतना, अरे अरुणिमा ऊषा-सी वह उधर बही
वसुधा चरण चिह्न-सी बनकर यहीं पड़ी रह जायेगी
प्राची रज-कुंकुम ले चाहे अपना भाल सजायेगी
देख न लूँ, इतनी ही तो है इच्छा ? लो, सिर झुका हुआ
कोमल किरन उँगलियों से ढँक दोगे यह दृग खुला हुआ
फिर कह दोगे, पहचानो तो, मैं हूँ कौन, बताओ तो
किन्तु उन्हीं अधरों से, पहिले उनकी हँसी दबाओ तो
सिहर भरे निज शिथिल मृदुल अंचल को अधरों से पकड़ो
वेला बीत चली है चंचल बाहुलता से आ जकड़ो

× × ×

तुम हो कौन और मैं क्या हूँ ?
इसमें क्या है धरा, सुनो
मानस-जलधि रहे चिर-चुम्बित
मेरे क्षितिज उदार बनो

यहाँ वही अज्ञात सत्ता 'क्षितिज' नाम से पुकारी गई। कवि प्रार्थना करता है कि यह लुकाछिपी बंद हो जाये, मानवात्मा और परमात्मा का सहज संबंध स्थापित हो। प्रयत्न करने पर भी जब वह अज्ञात तत्त्व अपने को छिपा नहीं सकता तो यह चुहल क्यों ? बात उसी तरह की है जिस तरह की बात भक्तों ने कही है, परन्तु परंपरा से हटकर अमूर्त्त भावों से संबद्ध होने के कारण उसमें रहस्यमयता आ जाना अनिवार्य है।

७—जीवन-संदेश

कवि के जीवन-संदेश को हमने 'कामायिनी' शीर्षक के अंतर्गत विस्तारपूर्वक समझाया है। यहाँ हमें केवल यही कहना है कि आधुनिक कवियों में प्रसाद जी का एक विशिष्ट स्थान है। इस विशिष्ट स्थान का कारण उनकी दार्शनिक गंभीरता है। पंत, निराला और महादेवी की दृष्टि एकांगी है। ये कवि जीवन की अनुभूतियों में उतने गहरे नहीं उतरते। इनमें पंत ने समय-समय पर मानवजीवन और नवीन मानव-समाज की कल्पना को भी अपनी कविता का विषय बनाया है, परन्तु वह 'वादों' के बाहर स्वतन्त्र चिंतक के रूप में हमारे सामने नहीं आते।

'जीवन-संदेश' की दृष्टि से 'कामायिनी' विशेष महत्त्वपूर्ण है और आज वह एक महान युग-स्तंभ बन गई। उसमें जीवन के मौलिक तत्त्वों की गवेपणा की गई है और विभिन्न विरोधी तत्त्वों में सामञ्जस्य लाने की चेष्टा की गई है। प्रसाद के नाटक उपन्यास और उनके निबंध उनके जीवन-संबंधी दृष्टिकोण को अधिक स्पष्ट रूप से हमारे सामने रखते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि प्रसाद का एक सर्वांगीण अध्ययन उपस्थित किया जाय और उन्हें एक महान युग नेता के रूप में देखा-परखा जाय। तभी हम उनकी महत्ता का पता पा सकेंगे।

८—शैली

प्रसाद की शैली एक आनंदवादी, चिंतक कवि की शैली है। जब हम यह कहते हैं तो हम उनकी प्रौढ़ शैली के संबंध में ही कहते हैं। वैसे प्रसाद के काव्य में अनेक प्रकार की शैलियाँ हैं और एक लंबे युग (१९०९-३६) तक वे बराबर अपनी शैलियों का परिष्कार करते रहे हैं। 'आँसू' के तीनों संस्करणों में जो

अरी व्याधि की सूत्रधारिणी ! अरी आधि मधुमय अभिशाप
हृदय-गगन में धूमकेतु-सी, पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप

लक्षणा के अनेक भेद-प्रभेदों का प्रयोग प्रसाद ने इस ग्रंथ में किया है। 'यथार्थवाद और छायावाद' निबंध में उन्होंने प्राचीन ध्वन्याचार्यों को अपना आदर्श माना है। उन्होंने आनन्दवर्द्धन के इस श्लोक को उद्धृत किया है—

मुख्या महाकवि गिरामलंकृति भृतामयि।
प्रतीयमानच्छायैषाभूषालज्जेव योषिता ॥

और 'प्रतीयमान छाया' की व्याख्या करते हुए कहा है—कवि की वाणी में यह प्रतीयमान छाया युवती के लज्जा भूषण की तरह होती है। × × इस दुर्लभ छाया का संस्कृत काव्योत्कर्ष काल में अधिक महत्त्व था। आवश्यकता इसमें शाब्दिक प्रयोगों की भी थी, किन्तु आन्तर अर्थवैचित्र्य को प्रकट करना भी इनका प्रधान लक्ष्य था। 'कामायिनी' के अनेक प्रयोग कवि की इस अपनी व्याख्या के बाद ही समझ में आते हैं।

९—गीतात्मकता

प्रसाद के काव्य में काव्य संगीत के इतने निकट आ गया है कि हमें आश्चर्य होता है। अधिकांश काव्य सुन्दर रूप से गेय है। वैसे नाटकों के लिए आधुनिक 'प्रगीतों' (लिरिक) की रचना पहले प्रसाद ने ही की और इसके बाद पंत और प्रसाद ने अनेक सुन्दर प्रगीति हिन्दी को दिये। प्रसाद के दो सुन्दर गीत 'बीती विभावरी जाग री।' और 'ले चल मुझे भुलावा देकर, नाविक, धीरे-धीरे' हिन्दी-काव्य के सब से लोकप्रिय गीत हैं। यह अवश्य कि अन्य छायावादी कवियों के गीतों की तरह प्रसाद के गीत हिन्दी जनता के कंठ की भारती नहीं बन सके, परन्तु इसमें दोष उन शताब्दियों का है जिन्होंने हिन्दी भाषा क्षेत्र की संस्कृति और

भाषा को मूलतः नष्ट कर दिया है। जो हो, प्रसाद के गीतिमय काव्य ने हिन्दी-काव्य-धारा को एक नई दिशा दी है, इसमें कोई संदेह नहीं।

१०—भाषा

प्रसाद की भाषा के अध्ययन के लिए एक छोटी-मोटी पुस्तक की आवश्यकता है। उन्होंने शब्द, शब्द-समूहों और वाक्यों की नई-नई भंगिमाओं की खोज की है। भाषा की दृष्टि से वे हिन्दी के सब से समर्थ कवि हैं। उन्होंने जीवन को एक नई दृष्टि से देखा और उसे सचाई से अभिव्यक्त करने की चेष्टा की। भावों की लुका-छिपी और संघात-प्रतिघात के वर्णन में वे अद्वितीय हैं। यह अवश्य है कि उन्होंने संस्कृतज्ञों की भाषा-संबंधी कला-कौशलता में पारंगतता प्राप्त की, परन्तु साथ ही उन्होंने उर्दू, अंग्रेजी और बंगला काव्य से भाषा की नई गति-विधियाँ उधार लीं। उनकी इस दिशा की प्रवृत्तियों की इतनी बहुलता है कि उन्हें विशेषण-विपर्यय, मूर्तिमत्ता, अमूर्त्त संस्थापन जैसे कुछ गिने-चुने शब्दों में भरना असंभव है। सच तो यह है, भाषा की दृष्टि से जो क्रान्ति छायावाद-काव्य में हुई है, उसकी महत्ता को हमने अभी नहीं समझा और न उसका वैज्ञानिक अध्ययन ही किया है। जब हम यह कर सकेंगे, तब हम प्रसाद की समर्थ भाषा के ऊपर से अस्पष्टता और रहस्यमयता का आवरण उतार सकेंगे।

११—छंद

खड़ी बोली में अपने विशिष्ट काव्य के प्रकाशन के लिए नए छंद गढ़ना पड़े हैं, नये प्रयोग करने पड़े हैं, परन्तु पंत और निराला जैसी स्वतंत्रता उन्होंने नहीं ली है। 'इंदु'-काल में हम

उन्हें सॉनेट जैसे अंग्रेजी और त्रिपदी और पयार जैसें बङ्गाली छन्दों का प्रयोग करते हुए पाते हैं। उन्होंने अतुकांत काव्य का भी प्रयोग किया और 'महाराणा का महत्त्व' और 'प्रेम-पथिक' जैसे सफल काव्य लिखे। अंतिम रचनाओं में कुछ मुक्त छंद की रचनाएँ भी हैं जो स्वयं महत्त्वपूर्ण हैं। 'आँसू' में प्रसाद ने पहली वार एक निश्चित छंद का प्रयोग किया। इस छंद में १४, १४ के विराम से २८ मात्राएँ हैं। प्रसाद के अनुकरण में यह छंद बड़ा लोकप्रिय हुआ और स्वयं प्रसाद को भी इसका मोह अंत तक वना रहा। 'कामायिनी' का अंतिम सर्ग 'आनन्द' इसी आँसू-छंद में है। परन्तु प्रसाद की कविता केवल एक-दो निश्चित छंदों तक सीमित नहीं है। 'कामायिनी' में ही एक दर्जन के लगभग छंदों का सफल प्रयोग है। ये छंद हैं—ताटंक (चिंता, आशा, स्वप्न, निर्वेद), पादाकुलक (काम, लज्जा), रूपमाला (वासना), सार (कर्म), रोला (संघर्ष)। इनके अतिरिक्त नये प्रयोग भी हैं जैसे ईर्ष्या और दर्शन सर्ग (पादाकुलक+पद्धरि), रहस्य सर्ग (ताटंक+ऽ) 'इड़ा' में गीतों (गेय पदों) का प्रयोग कर प्रसाद ने एक नवीन आदर्श स्थापित किया और इसमें तुकांत में भी सुन्दर परिवर्तन कर दिये हैं।

१२—प्रसाद : विकास के पथ पर

'इंदु' (१९०९) से लेकर 'कामायिनी' (१९३६) तक प्रसाद ने जो काव्य लिखा, वह अधिक नहीं, परन्तु जब हम उनकी अनेक साहित्यिक प्रवृत्तियों को देखते हैं तो हमें स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद ने काव्य को बड़ी साधना से बनाया-सँवारा है। कदाचित् किसी भी कवि को विकास की इतनी मंजिलें नहीं नापनी पड़ीं, न किसी ऐसी साधारण भूमि से उठकर कवि 'कामायिनी' जैसी परिणति पर पहुँच सका। प्रसाद के विकास

का इतिहास स्वयं एक महत्त्वपूर्ण इतिहास है। अभी इसका कोई भी पृष्ठ खुल नहीं सका है, यह हिंदी आलोचकों के लिए चिंता की बात है।

१३—प्रसाद और उनका युग

प्रसाद का प्रौढ़ काल १६१५ से आरंभ होकर १६३६ में समाप्त हो जाता है। १६०५ से १६१५ तक के काव्य को हम उनके विकास-काल का काव्य मान लेते हैं। इस प्रकार उनके काव्य में दो दशक का समय समाप्त हो जाता है। प्रश्न यह है, प्रसाद के काव्य में उनका युग कहाँ तक प्रतिबिंबित है? उत्तर कुछ कठिन अवश्य है, परन्तु असंभव नहीं है। प्रसाद साधक कवि थे। काव्य ही उनकी साधना थी। वे आनन्दवादी थे। आनन्दवादी शैव कालिदास ने जिस प्रकार कला की उपासना की थी, उसी प्रकार प्रसाद ने काव्य को साधना बना लिया। यह साधना एकांतिक साधना थी। बाहर की हलचलें उस तक नहीं पहुँचीं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि प्रसाद युग के प्रति सचेत नहीं थे। 'कंकाल' और 'तितली' और चार कहानी-संग्रह इसके उदाहरण हैं। उन्होंने युग की प्रत्येक समस्या को खुली आँखों से देखा, जो देखा, वह चित्रित किया, चाहा तो समाधान भी दिया। परन्तु प्रसाद कलाकार कला के भिन्न-भिन्न अंगों की सीमाएँ मानकर चले, उन्होंने नाटकों में अतीत की पुस्तक के पन्ने पलटे, उपन्यासों में समसामयिक जगत को खुली यथार्थवाद की आँखों से देखा, परन्तु काव्य-रचना के समय अपनी एकांतिक साधना का आग्रह किया। इसी कारण इतिहासकार प्रसाद, समस्य-शोधक प्रसाद, युग-चित्रकार प्रसाद और कवि प्रसाद में भिन्नता उपस्थित हो जाती है।

यह आग्रह उनका जीवन भर बना रहा। जो आलोचक प्रसाद के व्यक्तित्व के इस द्वैत को नहीं समझते, वे धोखा खा

छोड़ कर जीवन के अतिवाद
मध्य पथ से लो सुगति सुधार
दु:ख का समुदय उसका नाश
तुम्हारे कर्मों का व्यापार

परन्तु उनके नाटकों में यह संदेश अधिक निखर कर आया है। परन्तु अंत में उन्हें जैसे इससे पूरा संतोष नहीं हुआ। वे और पीछे हटकर "शैवागमों" और इन्दुकाल के वैदिकों के आनन्दवाद की ओर गये। 'गीतांजलि' से हिन्दी संसार में जो जिज्ञासा आरंभ हुई थी, 'कामायिनी' उसी का समाधान लाई। रवि बाबू के 'भाव'-वाद और गांधीजी के 'कर्मवाद' को प्रसाद ने अधूरा समझा। उन्होंने जीवन में स्वर्गीय आनन्द की संस्थापना पर बल दिया। भाव-कर्म-ज्ञान का संतुलन ही मानव के लिए श्रेष्ठ आदर्श है।

एक तरह से प्रसाद का सारा काव्य गांधीयुग के सारी हल-चलों के बीच चुनौती की तरह खड़ा है। लोग उसपर 'पलायन' की लांछा लगाते हैं। परन्तु प्रसाद कवि को चिंतक के रूप में देखते थे, अतः वह कवि-ऋषि के नाते समस्या के भीतर बहुत दूर तक उतरे।

१४—प्रसाद : युगेतर

इसी से हम कह सकते हैं कि प्रसाद के काव्य में युग की समस्या को युग-युग की समस्याओं की तुला पर परखा है। उन्होंने युग से ऊपर उठ कर जीवन के महान् तत्त्वों में सामञ्जस्य लाने का प्रयत्न किया। प्रसाद मूलतः प्रेम, सौंदर्य और आनंद के कवि हैं। उनके काव्य में सारे उपकरण इन्हीं युगेतर तत्त्वों के आधार को पुष्ट करते दिखाई पड़ते हैं। प्रकृति का भी स्वतंत्र प्रयोग हम प्रसाद के काव्य में नहीं पाते। उन्होंने मानव के

जाते हैं। उन्होंने युग के चित्र खेंचे, उसमें ज्ञान, कर्म और भाव का जो विरोध है वह समझा, इतिहास की ओर मुड़ कर उन्होंने परिस्थिति का समाधान पाने की चेष्टा की। बुद्ध का करुणा में उन्हें समाधान मिला। परन्तु उन्होंने देखा, यह समाधान व्यक्ति के लिए हो सकता है, परन्तु दुःखबोध या करुणा सारे संसार के सारे प्राणियों के लिए कोई संदेश नहीं। अंत में वह शैवागमों की ओर गये। यहाँ उनकी गति अबाध थी। उन्हें आनंदवाद का संदेश मिला। यह स्वयं उनकी प्रकृति के अत्यन्त निकट था, अतः उन्होंने बुद्ध की करुणा के संदेश (दुःखवाद) से हटकर आनन्द की वंशी बजा दी। शैवों के त्रिपुरदाह में उन्होंने सांकेतिक अर्थ में ज्ञान, कर्म और भाव के त्रैत के ऊपर के एक ज्ञान-कर्म-भाव संतुलित संसार का संदेश पढ़ा। 'कामायिनी' (१६३६) में उन्होंने इस संदेश को विस्तारपूर्वक समझा। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद के तीन रूपों में कोई मौलिक विरोध नहीं है। उनके नाटकों का दुःखवाद या करुणावाद 'कामायिनी' के आनंदवाद या 'त्रिपुरदाह' के पहले का समाधान है।

१६१४ में 'गीतांजलि' और गांधी दो महान् प्रभावों से हिंदी संसार परिचित हुआ। गीतांजलि में आत्म-समर्पण का संदेश था, एक ऐसा अध्यात्म था, जिससे उपनिषदों के समय से अब तक भारतीय हृदय बराबर परिचित रहा है। गांधी का संदेश और भी मौलिक था। वह जीवन को एक नितांत नए ढङ्ग से गढ़ना चाहते थे। 'गीतांजलि' भाव का प्रतीक था, गांधी कर्म के। युग की प्रताड़ना से विकल होकर रवि बाबू उपनिषदों के भारत की ओर गये हैं और वहाँ से आश्रम-सभ्यता और अदृश्य देशों के प्रति आत्मसमर्पण का संदेश लाये। प्रसाद ने भी यही चेष्टा की, परन्तु उन्होंने बुद्ध के करुणावाद को ढूँढ निकाला। 'लहर' की एक कविता में उन्होंने इस करुणावाद की रूपरेखा दी है—

छोड़ कर जीवन के अतिवाद
मध्य पथ से लो सुगति सुधार
दु:ख का समुदय उसका नाश
तुम्हारे कर्मों का व्यापार

परन्तु उनके नाटकों में यह संदेश अधिक निखर कर आया है। परन्तु अंत में उन्हें जैसे इससे पूरा संतोष नहीं हुआ। वे और पीछे हटकर "शैवागमों" और इन्दुकाल के वैदिकों के आनन्दवाद की ओर गये। 'गीतांजलि' से हिन्दी संसार में जो जिज्ञासा आरंभ हुई थी, 'कामायिनी' उसी का समाधान लाई। रवि बाबू के 'भाव'-वाद और गांधीजी के 'कर्मवाद' को प्रसाद ने अधूरा समझा। उन्होंने जीवन में स्वर्गीय आनन्द की संस्थापना पर बल दिया। भाव-कर्म-ज्ञान का संतुलन ही मानव के लिए श्रेष्ठ आदर्श है।

एक तरह से प्रसाद का सारा काव्य गांधीयुग के सारी हल-चलों के बीच चुनौती की तरह खड़ा है। लोग उसपर 'पलायन' की लांछा लगाते हैं। परन्तु प्रसाद कवि ।को चिंतक के रूप में देखते थे, अतः वह कवि-ऋषि के नाते समस्या के भीतर बहुत दूर तक उतरे।

१४—प्रसाद : युगेतर

इसी से हम कह सकते हैं कि प्रसाद के काव्य में युग की समस्या को युग-युग की समस्याओं की तुला पर परखा है। उन्होंने युग से ऊपर उठ कर जीवन के महान् तत्त्वों में सामञ्जस्य लाने का प्रयत्न किया। प्रसाद मूलतः प्रेम, सौंदर्य और आनंद के कवि हैं। उनके काव्य में सारे उपकरण इन्हीं युगेतर तत्त्वों के आधार को पुष्ट करते दिखाई पड़ते हैं। प्रकृति का भी स्वतंत्र प्रयोग हम प्रसाद के काव्य में नहीं पाते। उन्होंने मानव के

जाते हैं। उन्होंने युग के चित्र खींचे, उसमें ज्ञान, कर्म और भाव का जो विरोध है वह समझा, इतिहास की ओर मुड़ कर उन्होंने परिस्थिति का समाधान पाने की चेष्टा की। बुद्ध का करुणा में उन्हें समाधान मिला। परन्तु उन्होंने देखा, यह समाधान व्यक्ति के लिए हो सकता है, परन्तु दुःखबोध या करुणा सारे संसार के सारे प्राणियों के लिए कोई संदेश नहीं। अंत में वह शैवागमों की ओर गये। यहाँ उनकी गति अबाध थी। उन्हें आनंदवाद का संदेश मिला। यह स्वयं उनकी प्रकृति के अत्यन्त निकट था, अतः उन्होंने बुद्ध की करुणा के संदेश (दुःखवाद) से हटकर आनन्द की वंशी वजा दी। शैवों के त्रिपुरदाह में उन्होंने सांकेतिक अर्थ में ज्ञान, कर्म और भाव के त्रैत के ऊपर के एक ज्ञान-कर्म-भाव संतुलित संसार का संदेश पढ़ा। 'कामायिनी' (१९३६) में उन्होंने इस संदेश को विस्तारपूर्वक समझा। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद के तीन रूपों में कोई मौलिक विरोध नहीं है। उनके नाटकों का दुःखवाद या करुणावाद 'कामायिनी' के आनंदवाद या 'त्रिपुरदाह' के पहले का समाधान है।

१९१४ में 'गीतांजलि' और गांधी दो महान् प्रभावों से हिंदी संसार परिचित हुआ। गीतांजलि में आत्म-समर्पण का संदेश था, एक ऐसा अध्यात्म था, जिससे उपनिषदों के समय से अब तक भारतीय हृदय बराबर परिचित रहा है। गांधी का संदेश और भी मौलिक था। वह जीवन को एक नितांत नए ढङ्ग से गढ़ना चाहते थे। 'गीतांजलि' भाव का प्रतीक था, गांधी कर्म के। युग की प्रताड़ना से विकल होकर रवि बाबू उपनिषदों के भारत की ओर गये हैं और वहाँ से आश्रम-सभ्यता और अदृश्य देशों के प्रति आत्मसमर्पण का संदेश लाये। प्रसाद ने भी यही चेष्टा की, परन्तु उन्होंने बुद्ध के करुणावाद को ढूँढ निकाला। 'लहर' की एक कविता में उन्होंने इस करुणावाद की रूपरेखा दी है—

इसका निर्मल विधु नीलाम्बर मध्य किया करता क्रीड़ा
चपला जिसको देख चमक कर छिप जाती है घनपट में
प्रेम पवित्र पदार्थ, न इसमें कहीं कपट की छाया हो
इसका परिमित रूप नहीं जो व्यक्तिमात्र में बना रहे
क्योंकि यही प्रभु का स्वरूप है जहाँ कि सब में समता है
इस पथ का उद्देश नहीं है श्रांत भवन में टिक रहना
किंतु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं
अथवा उस आनंद भूमि में जिसकी सीमा कहीं नहीं

आशा के कितने स्वर उनमें बजते हैं :

फिर तम प्रकाश झगड़े में
नव ज्योति विजयिनी होती
हँसता यह विश्व हमारा
बरसाता मंजुल मोती

स्वयं वेदना में तप कर मानव जगत को प्रकाश और शीतलता देनेवाले कवि का अभिनंदन विश्व करेगा। कवि कहता है—

निर्मम जगती को तेरा
मंगलमय मिले उजाला
इस जलते हुए हृदय की
कल्याणी शीतल ज्वाला

इस प्रकार कवि मङ्गलाशी हो एक नवीन शांति युग की ओर इंगित करता है, जब मनुष्य मनुष्य में सहज सद्भाव जाग्रत हो जायेगा। 'कामायिनी' में कैलाश इसका प्रतीक है। इड़ा और मनु को कैलाश-शिखर की ओर इंगित कर प्रसाद कहते हैं—

मनु ने कुछ-कुछ मुस्क्याकर
कैलास ओर दिखलाया

मनस्तत्त्व के स्थायी तत्त्वों को अपने काव्य का विषय बनाया। इसलिए वे युग के होते हुए भी युग-युग के हैं।

जान पड़ता है, काव्य के संबन्ध में प्रसाद की एक मिश्रित धारणा थी। वह उसे प्रतिदिन के उत्ताप से भरना नहीं चाहते थे। उनके काव्य में जहाँ व्यक्ति के सुख-दुख का वर्णन है, वहाँ भी वह व्यक्तित्व को इतना दबा देते हैं कि उनका काव्य मानव-मात्र के लिए हो जाता है। इस प्रकार वह चिर नवीन, चिर जीवित, चिर स्पंदन रहते हैं। पंत ने जहाँ सौंदर्य, प्रेम और प्रकृति के गीत गाये हैं, वहाँ उन्होंने युग की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को भी परखा है, समाजवाद और साम्यवाद के तत्त्वों का मूल्यांकन भी उन्होंने किया है। उनका काव्य सच-मुच ही युगवाणी है। निराला ने रहस्यमयी सत्ता का टि क्रीड़ा-कलाप प्रकृति के महान चित्रों और पौराणिक एवं ऐतिहासिक व्यक्तियों के मनस्तत्त्व के विश्लेषण से उतर कर समाजवादी काव्य में योग दिया। 'बेला' और 'नये पत्ते' उनकी इस नई दिशा की सूचना देते हैं। परन्तु तुलसी की तरह प्रसाद काव्य में निस्पृह लगे। उन्होंने काव्य को आनंद माना, कवि-कर्म उनके लिए साधना बना, उन्होंने कविता के माध्यम से युग-युग के अनुरूप जीवन दर्शन की सृष्टि की। यही प्रसाद की महत्ता है।

इसी युगंतर प्रसाद को हम भारतीय साहित्य की निधि मानते हैं। यहीं वे हिंदी की सीमा से निकलकर विराट्-विश्व के हो गये हैं। यहीं वे प्रेम, सौंदर्य और आनन्द के महान सौंदर्यवाहक के रूप में हमारे सामने आते हैं। प्रेम के संबंध में प्रसाद का आदेश कितना सार्वभौमिक है—

प्रेमयज्ञ में स्वार्थ और कामना हवन करना होगा
तब तुम प्रियतम स्वर्गविहारी होने का फल पाओगे

प्रसाद ने इस महान् विश्व को एक मङ्गलाशी महान सत्ता के स्पंदन के रूप में देखा है। मनुष्य का सुख-दुःख उस विश्व-हृदय की धड़कन-मात्र है। जब मनुष्य इसको समझ लेता है, तो वह परस्पर सहानुभूति और प्रेम के संबन्ध स्थापित करने में सफल हो जाता है। 'गांधीवाद', 'समाजवाद', 'साम्यवाद' आदि अनेक जीवनदर्शनों के समकक्ष प्रसाद ने मौलिक रूप से एक नया पथ रखा है। वह पथ है शैवों का आनंदवाद और ज्ञान-कर्म और भाव के समन्वय का संदेश। इस आर्यपथ पर चलता हुआ मानव जगत् के दुःखों से त्राण पा सकता है, इसमें उन्हें किंचित-मात्र भी सन्देह नहीं है।

बोले "देखो कि यहाँ पर
कोई भी नहीं पराया
हम अन्य न और कुटुम्बी
हम केवल एक हमीं हैं
तुम सब मेरे अवयव हो
जिसमें कुछ नहीं कमी है

शापित न यहाँ है कोई
तापित पापी न यहाँ है
जीवन वसुधा समतल है
समरस है जो कि यहाँ है
चेतन समुद्र में जीवन
लहरों-सा बिखर पड़ा है
कुछ छाप व्यक्तिगत अपना
निर्मित आकार खड़ा है

इस ज्योत्स्ना के जलनिधि में
बुदबुद-सा रूप बनाये
नक्षत्र दिखायी देते
अपनी आभा चमकाये
वैसे अभेद सागर में
प्राणों का सृष्टिक्रम है,
सब में घुलमिल कर रसमय
रहता यह भाव चरम है

अपने दुःख सुख से पुलकित
यह मूर्त्त विश्व सचराचर
चिति का विराट वपु मंगल
यह सत्य सतत चिर सुन्दर

यूनानी दार्शनिक प्लेटो ने काव्य को संगीत के अंतर्गत रखा है। जर्मन दार्शनिक हेगेल ने कला के अंतर्गत ही काव्य का वर्गीकरण किया है। उसके अनुसार कला के दो रूप हैं—सूक्ष्म और स्थूल। संगीत और काव्य सूक्ष्म कला के भीतर आते हैं, कला शेष रूप (चित्र, मूर्ति, वस्तु) स्थूल रूप है। इस वर्गीकरण के अनुसार स्थूल कला से सूक्ष्म कला श्रेष्ठ है। माध्यम जितना भी सूक्ष्म होता जाता है, कला की उतनी ही श्रेष्ठता बढ़ती जाती है। इस आदर्श के अनुसार काव्य श्रेष्ठतम कला है। फिर संगीत। फिर चित्रकला। इस भाँति आधुनिक आलोचनाशास्त्र में हेगेल की यह व्याख्या सर्वमान्य है।

प्रसाद की काव्य और कला-संबंधी दृष्टि शुद्ध भारतीय दृष्टि है। वे इस विचार को लेकर चलते हैं कि काव्य और कला एवं तद्-संबंधी विचारों का आधार विशेष संस्कृति है। भारत की अपनी विशिष्ट संस्कृति है। यूरोपीय संस्कृति से वह भिन्न है। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह विरोधी। हो वास्तव में भिन्न-भिन्न देशीय संस्कृतियों के भीतर स्वतः ही एक विश्वजनीय संस्कृति विद्यमान है—"संस्कृति मंदिर, गिरजा और मसजिद-विहीन प्रांतों में अन्तः प्रतिष्ठित होकर सौन्दर्य-बोध की बाह्य सत्ताओं का सृजन करती है। संस्कृति का सामूहिक चेतना से मानसिक शील और शिष्टाचारों से, मनोभावों से मौलिक संबंध है।" "इसलिये साहित्य के विवेचन में भारतीय संस्कृति और तदनुकूल सौन्दर्यानुभूति की खोज अप्रासङ्गिग नहीं, किन्तु आवश्यक है।" इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद ने आधुनिक हिंदी समीक्षा की विदेशी भित्ति ही हिला दी है। चाहे कितने ही क्षीण स्वर में हो, उन्होंने भारतीय काव्य और कला को विदेशी मापदंडों पर आँकने के विरुद्ध अपनी विरोध की वाणी उठाई है। इस प्रकार उन्होंने साहित्य-समीक्षकों का ध्यान एक

१०

प्रसाद : उनका अपना दृष्टिकोण

कवि की रचना की परख का एक ढङ्ग यह भी है कि हम स्वयं उसके काव्य और कला-संबंधी विचारों से परिचित हों और उसके आधार पर उसके काव्य की विवेचना करें। इससे कवि के साथ अधिक न्याय होने की आशा है। प्रसाद कवि ही नहीं हैं, वे असाधारण समीक्षक और साहित्य-द्रष्टा भी थे। प्रारंभ से ही काव्य और कला के संबंध में उनके अपने विचार थे। 'इंदु' इसका प्रमाण है। 'इंदु' के माध्यम से उन्होंने एक विशेष प्रकार का साहित्य हिंदी को दिया और वहीं उसकी व्याख्या भी की। परन्तु प्रसाद के प्रौढ़तम विचार भी हमारे पास 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध-ग्रंथ में सुरक्षित हैं। ये प्रसाद के वे लेख हैं जो उन्होंने १९३० के बाद लिखे। अतः इन्हें हम कवि की प्रौढ़तम कृति समझ सकते हैं। इनमें हमें प्रसाद के उन प्रौढ़ विचारों का पता चलता है जो उन्हें एक युगप्रवर्तक समीक्षक के रूप भी हमारे सामने रखते हैं। भिन्न-भिन्न शीर्षकों के अंतर्गत हम प्रसाद की काव्य और कला संबंधी विचार-धारा को परखने की चेष्टा करेंगे।

१—कला

'काव्य और कला' निबंध में प्रसाद ने कला की नई परिभाषा उपस्थित की है और काव्य में उनका संबंध जोड़ा है। उनका कहना है कि काव्य और कला की पश्चिमी परिभाषाएँ भारतीय आचार्यों की परिभाषाओं में मेल नहीं खातीं, न उनके आधार पर भारतीय काव्य और कला की परख हो सकती है।

यूनानी दार्शनिक प्लेटो ने काव्य को संगीत के अंतर्गत रखा है। जर्मन दार्शनिक हेगेल ने कला के अंतर्गत ही काव्य का वर्गीकरण किया है। उसके अनुसार कला के दो रूप हैं—सूक्ष्म और स्थूल। संगीत और काव्य सूक्ष्म कला के भीतर आते हैं, कला शेष रूप (चित्र, मूर्ति, वस्तु) स्थूल रूप है। इस वर्गीकरण के अनुसार स्थूल कला से सूक्ष्म कला श्रेष्ठ है। माध्यम जितना भी सूक्ष्म होता जाता है, कला की उतनी ही श्रेष्ठता बढ़ती जाती है। इस आदर्श के अनुसार काव्य श्रेष्ठतम कला है। फिर संगीत। फिर चित्रकला। इस भाँति आधुनिक आलोचनाशास्त्र में हेगेल की यह व्याख्या सर्वमान्य है।

प्रसाद की काव्य और कला-संबंधी दृष्टि शुद्ध भारतीय दृष्टि है। वे इस विचार को लेकर चलते हैं कि काव्य और कला एवं तद्-संबंधी विचारों का आधार विशेष संस्कृति है। भारत की अपनी विशिष्ट संस्कृति है। यूरोपीय संस्कृति से वह भिन्न है। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह विरोधी। हो वास्तव में भिन्न-भिन्न देशीय संस्कृतियों के भीतर स्वतः ही एक विश्वजनीय संस्कृति विद्यमान है—"संस्कृति मंदिर, गिरजा और मसजिद-विहीन प्रांतों में अन्तः प्रतिष्ठित होकर सौन्दर्य-बोध की बाह्य सत्ताओं का सृजन करती है। संस्कृति का सामूहिक चेतना से मानसिक शील और शिष्टाचारों से, मनोभावों से मौलिक संबंध है।" "इसलिये साहित्य के विवेचन में भारतीय संस्कृति और तदनुकूल सौन्दर्यानुभूति की खोज अप्रासङ्गिक नहीं, किन्तु आवश्यक है।" इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद ने आधुनिक हिंदी समीक्षा की विदेशी भित्ति ही हिला दी है। चाहे कितने ही क्षीण स्वर में हो, उन्होंने भारतीय काव्य और कला को विदेशी मापदंडों पर आँकने के विरुद्ध अपनी विरोध की वाणी उठाई है। इस प्रकार उन्होंने साहित्य-समीक्षकों का ध्यान एक

१०

प्रसाद : उनका अपना दृष्टिकोण

कवि की रचना की परख का एक ढङ्ग यह भी है कि हम स्वयं उसके काव्य और कला-संबंधी विचारों से परिचित हों और उसके आधार पर उसके काव्य की विवेचना करें। इससे कवि के साथ अधिक न्याय होने की आशा है। प्रसाद कवि ही नहीं हैं, वे असाधारण समीक्षक और साहित्य-द्रष्टा भी थे। प्रारंभ से ही काव्य और कला के संबंध में उनके अपने विचार थे। 'इंदु' इसका प्रमाण है। 'इंदु' के माध्यम से उन्होंने एक विशेष प्रकार का साहित्य हिंदी को दिया और वहीं उसकी व्याख्या भी की। परन्तु प्रसाद के प्रौढ़तम विचार भी हमारे पास 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध-ग्रंथ में सुरक्षित हैं। ये प्रसाद के वे लेख हैं जो उन्होंने १९३० के बाद लिखे। अतः इन्हें हम कवि की प्रौढ़तम कृति समझ सकते हैं। इनमें हमें प्रसाद के उन प्रौढ़ विचारों का पता चलता है जो उन्हें एक युगप्रवर्तक समीक्षक के रूप भी हमारे सामने रखते हैं। भिन्न-भिन्न शीर्षकों के अंतर्गत हम प्रसाद की काव्य और कला संबंधी विचार-धारा को परखने की चेष्टा करेंगे।

१—कला

'काव्य और कला' निबंध में प्रसाद ने कला की नई परिभाषा उपस्थित की है और काव्य में उनना संबंध जोड़ा है। उनका कहना है कि काव्य और कला की पश्चिमी परिभाषाएँ भारतीय आचार्यों की परिभाषाओं में मेल नहीं खातीं, न उनके आधार पर भारतीय काव्य और कला की परख हो सकती है।

चाक्षुष् प्रत्यक्ष से इतर जो है, हृदय उसका भी रूपानुभव कर सकता है। स्वयं मूर्त्त विश्व अमूर्त्त ब्रह्म का स्वरूप मात्र है, अतः अभिन्न है।

अतः स्पष्ट है कि भारतीय कला-समीक्षक को मूर्त्त-अमूर्त्त के भेद को लेकर चलना नहीं होगा। उसे दर्शन (ज्ञान), धर्म (नीति) और काव्य (सौन्दर्य) को अलग-अलग मानकर नहीं चलना होगा। अपने मापदंड उसे अधिक आधारों पर स्थित करने होंगे।

भारतीय दृष्टि से काव्य और कला भिन्न-भिन्न कोटि की वस्तुएँ हैं। काव्य दर्शन है। कला उपविद्या है। यह विज्ञान से अधिक संबंध रखती है। स्वयं काव्य में भी समस्या-पूर्ति आदि कला हैं। वस्तु-निर्माण, मूर्ति, चित्र, नृत्य, गीतादि कलाएँ हैं। इन कलाओं की संख्या ६४ है। कला-पारंगत कलावंत कहलाते हैं। काव्य उपविद्या नहीं, विद्या है। वह 'कला' से बहुत ऊँची श्रेणी की वस्तु है। वह साक्षात् दर्शन है। कला का काव्य में भी स्थान है। तब वह काव्यानुभूति के कौशलपूर्ण प्रकाशन का नाम-मात्र हो जाता है। छंद, अलंकार, वक्रोक्ति, रीति और कथानक कला हैं, कौशल-विशेष काव्यांग है, रस नहीं, काव्य नहीं। शुद्ध काव्य में आत्मानुभूति को प्रधानता है, कौशलमय आकारों या प्रयोगों की नहीं। इस प्रकार कला और काव्य में संबंध स्थापित हो जाता है। काव्य कला-निरपेक्ष है। कला काव्य-निरपेक्ष है। परन्तु काव्य और कला का सहजानुभूति द्वारा समन्वय उदात्त कवि के लिए नैसर्गिक बात है।

काव्य की परिभाषा देते हुए प्रसाद लिखते हैं—

"काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है, जिसका संबंध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है। वह एक श्रेयमयी प्रेम रचनात्मक ज्ञान-धारा है। विश्लेषणात्मक तर्कों से और

नई साहित्यिक आवश्यकता की ओर दिलाया है। यदि हमें विशाल भारतीय प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्य के रहते अपने मापदंड पश्चिम से उधार लें, तो क्या यह दुःख की बात नहीं है?

इसीलिए प्रसाद प्लेटो और हेगेल की मान्यताओं को भारतीय काव्य और कला की परख के लिए अव्यवहारिक समझते हैं। अनेक सिद्धांत जो आज पश्चिम से आये हैं, मूलरूप में भारतीय शास्त्र-परंपरा में भी मिलते हैं, और समय-समय उन्होंने हमारे काव्य को प्रभावित किया है, इस पर भी प्रसाद ने बल दिया है। अपनी प्राचीन शास्त्र-परंपरा को भूलकर हम पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान को ही मुक्ति का एकमात्र द्वार समझ लेते हैं, यह हमारी अकिंचनता ही है। प्रसाद के मत में भारतीय काव्य-दृष्टि यूनानी काव्य-दृष्टि से श्रेष्ठतर है। यूनानी समीक्षक भौतिकता से ऊपर नहीं उठते। वे लौकिक उपयोगिता की दृष्टि से कला का वर्गीकरण करते हैं। मूर्त्त और अमूर्त्त का भेद इसी उपयोगितावाद पर निर्भर है। इसी से अरस्तू कला का 'अनुकरण' (Imitation) मात्र मान कर संतोष कर लेता है। भारतीय समीक्षक की दृष्टि से काव्य और कला लोकोत्तर आनन्द के विधायक हैं। वहाँ भौतिक दृष्टि नहीं है, अध्यात्म अधिक है। यूनानी विचारक कला और काव्य, धर्मशास्त्र और दर्शन को उत्तरोत्तर श्रेष्ठ मानते हैं। कला और काव्य से धर्मशास्त्र की अनुभूति होती है, धर्मशास्त्र की अनुभूति से शुद्ध तर्कज्ञान के सौन्दर्य की। परन्तु भारतीय विचारक्रम कला और काव्य को गौण स्थान नहीं देता है। ऋषयो मन्त्रद्रष्टावः। ऋषि मन्त्र-द्रष्टा हैं। कवि और ऋषि पर्यायवाची हैं। भारतीय विचार-धारा कवि, धर्मवेत्ता और द्रष्टा में भेद नहीं करती। अध्यात्मवादी भारत मूर्त्त और अमूर्त्त के चाक्षुष्-भेद को लेकर नहीं बैठ सकता था। मूर्त्त और अमूर्त्त दोनों उस अमृतत्व (ब्रह्म) के भेद-मात्र हैं।

पाठ्य-काव्य की ही बात कर रहे हैं। आरम्भिक पाठ्य-काव्य शीर्षक निबंध में उन्होंने भारतीय कविता के विकास की रूपरेखा उपस्थित की है। काव्य के दो भेद हैं—नाटक और श्रव्य (पाठ्य) काव्य। नाटक अभिनयात्मक काव्य है, पाठ्य काव्य वर्णनात्मक। उनके अनुसार नाटक की आत्मा रस है, परन्तु पाठ्य-काव्य में जहाँ कवि अपरोक्ष अनुभूतिमय हो जाता है, वहाँ ही वर्णनात्मक अनुभूति रस की कोटि तक पहुँच जाती है। वर्णनात्मक वस्तु है 'इदं'। रसात्मक काव्य द्वारा 'इदं' को 'अहं' के समीप लाया जाता है। "वर्णनों से भरे महाकाव्य में जीवन और उसके विस्तारों का प्रभावशाली वर्णन आता है। उसके सुख-दुःख, हर्ष-क्रोध, राग-द्वेष का वैचित्र्यपूर्ण आलेख्य मिलता है।" उसमें जीवन-तत्त्व को समझने का उत्साह रहता है। नाटक और पाठ्य-काव्य में एक दूसरा अंतर भी है। "वैदिक से लेकर लौकिक तक ऐसे श्रव्य-काव्यों का आधार होता था इतिहास। जहाँ नाट्य में अभ्यन्तर की प्रधानता होती है, वहाँ श्रव्य में वाह्य वर्णन की मुख्यता अपेक्षित है। वह बुद्धिवाद से अधिक सम्पर्क रखने वाली वस्तु है; क्योंकि आनन्द से अधिक उसमें दुःखानुभूति की व्यापकता होती है। और वह सुनाया जाता है, जनवर्ग का अधिकाधिक कष्ट-सहिष्णु, जीवन-संघर्ष में पटु तथा दुःख के प्रभाव से परिचित होने के लिए। नाटकों की तरह उसमें रसात्मक अनुभूति, आनन्द का साधारणीकरण न था। घटनात्मक विवेचनाओं की प्रभावशाली परंपरा में उत्थान और पतन की कड़ियाँ जोड़ कर महाकाव्यों की सृष्टि हुई थी, विवेकवाद को पुष्ट करने के लिये।"

श्रव्य-काव्य के दो विभाग हो सकते हैं—काल्पनिक अर्थात् आदर्शवादी, वस्तुस्थिति अर्थात् यथार्थवादी। भारतीय पाठ्य-काव्यों में रामायण-प्रभृति काव्य आदर्शवादी हैं। रामायण के चरित्रों में आदर्श की कल्पना पराकाष्टा तक पहुँच गई है। इसके

विकल्प के आरोप से मिलन न होने के कारण आत्मा की मनन क्रिया जो वाङ्मय रूप में अभिव्यक्ति होती है वह निःसन्देह प्राणमयी और सत्य के उभय लक्षण प्रेम और श्रेय दोनों से परिपूर्ण होती है।" अतः उनके अनुसार काव्य कवि की संकल्पात्मक, संश्लेषण-प्रधान अनुभूति का नाम है। इसी अनुभूति की मौलिकता, अमौलिकता, शिथिलता, तीव्रता कवि और महाकवि का भेद स्थापित करती है। कवि कवि का अंतर यहीं होता है।

अतः प्रसाद के अनुसार काव्य का अध्ययन इस प्रकार हो सकेगा :

१—कवि की मूल अनुभूति की खोज।

२—देखना कि उनमें संकल्पात्मकता कितनी है, मौलिकता कितनी है, तीव्रता कितनी है।

३—काव्यशरीर की जाँच।

(क) अलंकार, व्यंजना, वक्रोक्ति आदि का प्रयोग।

(ख) विशिष्ट पद-रचना।

४—देखना कि काव्य-शरीर मूल अनुभूति को सुन्दरता से वहन करता है या नहीं।

५—काव्य में रसात्मकता का अनुभव।

६—प्रतीकों का प्रयोग। 'प्रसाद' के अनुसार प्रत्येक युग की काव्यानुभूति युग के अनुसार अपने प्रतीक चुन लेती है और उन्हीं में रसात्मक रूप से प्रगट होती है।

२—काव्य

काव्य के प्रति प्रसाद का दृष्टिकोण हमने पीछे दिया है। इसके अनुसार काव्य की सत्ता स्वयं है। वह कला-निरपेक्ष है। कवि की संकल्पनात्मक अनुभूति का प्रकाशन ही काव्य है। यह प्रकाशन सुन्दर हो, संगीतात्मक हो, छन्दबद्ध हो, कला (कौशल)-पूर्ण हो, तो दूसरी बात है। वास्तव में काव्य के अंतर प्रसाद केवल

आदर्शवाद' जैसे काव्य के उदाहरण देकर बताया कि किसी भी वर्ग का काव्य शुद्ध स्वानुभूति से हटकर 'मिथ्या' हो जाता है।

३—रस

प्रसाद काव्य को कवि की संकल्पात्मक अनुभूति मानते हैं। रस संकल्पात्मक अनुभूति से कवि को 'आनन्द' की प्राप्ति होती है। यही आनन्दानुभूति ही 'रस' है। प्रारम्भ में कवि और ऋषि एक ही व्यक्ति होता था। परन्तु जब धर्म-नीति धर्म-पंडितों, स्मृतिकारों और अध्यात्म दार्शनिकों एवं साधकों की सम्पत्ति हो गये, तो शुद्ध काव्य रस की व्याख्या शुरू हुई। प्रारंभ का काव्य नाटक था, अतः नाटकों को ही सब से पहले काव्य कहा गया और आत्मा की अनुभूति को उसका 'रस' बताया गया। अभिनवगुप्त के अनुसार—

आस्वादनात्माऽनुभवोरसः काव्यार्थे मुच्यते।

'नाटकों में भरत के मत से चार ही मूल रस हैं—शृङ्गार, रौद्र, वीर और वीभत्स। इनमें अन्य चार रसों की उत्पत्ति मानी गई। शृंगार से हास्य, वीर से अद्भुत, रौद्र से करुण और वीभत्स से भयानक।' काव्यानन्द के लिए रसात्मक अनुभूति की आवश्यकता मानी गई। यह रसात्मक अनुभूतिजन्य आनन्द ब्रह्मानन्द से अलग वस्तु होने पर भी ब्रह्मानन्द के समान था।

रसानुभूति के लिए भरत ने विभाव, अनुभाव और व्यभिचारियों के संयोग का निदान किया। 'विभावानुभाव व्यभिचारि परिवृत्त, स्थायीभावो रसनाम लभते' (नाट्यशास्त्र अ० ७)। इसके बाद तो रसदृष्टि को इन्हीं रसतत्त्वों के विश्लेषण एवं व्याख्या में सीमित कर दिया गया।

प्रसाद रसवाद और अलंकारवाद का इतिहास उपस्थित करते हुए रस को शुद्ध धर्मदृष्टि एवं आनन्दवादी काव्यदृष्टि से जोड़ते हैं और अलंकारवाद का संबंध पौराणिकों से। "इधर

विपरीत महाभारत यथार्थवादी काव्य है। चरित्रों की दुर्बलताएँ उसकी विशेषता हैं।

प्रसाद ने हिंदी काव्य-साहित्य-परंपरा को भी आदर्श और यथार्थवाद के मापदंड पर परखा है। पिछले युग में हमारा काव्य नाट्याश्रित हो गया। हमने मुक्तकों में रस भरने की हास्यास्पद चेष्टा की। नाटिकाएँ जिनसे पिछले काल का साहित्य भरा पड़ा है, नाटकोपयोगी वस्तु हैं। वृत्तियाँ कैशिकी, भारती आदि भी नाट्यानुकूल भाषाशैली के विश्लेषण हैं। वे हिन्दी काव्य-साहित्य-धारा का विश्लेषण इस प्रकार करते हैं :—

(१) आदर्शवादी साहित्य—तुलसी का सुधारवादी काव्य।

(२) रहस्यात्मक साहित्य।

(क) सिद्धों का आनन्दवादी काव्य।

(ख) संतों का बुद्धिवादी काव्य।

(ग) सूफियों का प्रेमपरक काव्य।

(घ) कृष्ण-कवियों का प्रेम, विरह और समर्पण वाला काव्य।

(३) शास्त्रवादी साहित्य—रीतिकाव्य जिसमें नाटकों के अंगों को लेकर श्रव्य-काव्य का विस्तार किया गया।

(४) यथार्थवादी काव्य—आधुनिक काव्य जिसका प्रारंभ हरिश्चंद्र से होता है।

(५) नूतन रहस्यवादी काव्य—छायावाद या आधुनिक काव्य जिसमें व्यक्तिवाद की प्रमुखता थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद की काव्य-संबंधी जिज्ञासा सदैव जाग्रत रही और उन्होंने भारतीय काव्य-परंपरा में समीक्षक के रूप में भी योग दिया। उन्होंने काव्य की विभिन्न धाराओं को फिर से आँका और 'मिथ्या रहस्यवाद', 'मिथ्या

स्थापना की। 'ध्वन्यालोक' की टीका में अभिनवगुप्त ने रस को भी अध्ययन का विषय बनाया। उसने कहा—काव्य के दो प्रकार हैं, स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति। स्वभावोक्ति रस का विषय है।

परन्तु रस की महत्ता कम नहीं थी और उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। अतः रस को श्रव्यकाव्योपयोगी बनाने के लिए कई उपाय किये गये। भरत ने रस के लिए सात्विक, आङ्गिक, वाचिक और आहार्य इन चारों क्रियाओं की व्यवस्था की थी। उनकी दृष्टि अभिनय-प्रधान नाटक पर थी। श्रव्य-काव्य में केवल 'वचन' के बल पर रस की स्थापना हो सकती थी। भट्टनायक ने साधारणीकरण का सिद्धान्त प्रचारित किया जिसके अनुसार रस न नट में है, न सामाजिक में, न नायक में, यह सामान्य रूप से लोक में उसी प्रकार प्रतिष्ठित है जिस प्रकार चेतनता। इस प्रकार नाटक के रस को काव्य की सामान्य भूमि पर उतारा गया।

'ध्वनि'-वादी आचार्य श्री आनन्दवर्द्धन ने एक दूसरी प्रकार अलंकारवाद और रसवाद में समझौता किया। उन्होंने कहा, रस और अलंकार दोनों व्यंजित होते हैं। ध्वनि ही प्रधान है। ध्वनि के तीन भेद हैं। रसध्वनि, अलंकारध्वनि, वस्तुध्वनि। इनमें रसध्वनि प्रधान है। इस प्रकार एक नये ढङ्ग से काव्य में रस की महत्ता स्थापित हुई, यद्यपि उसे व्यंग्य माना गया। आनन्द-वर्द्धन के अनुसार प्रबंधकाव्य में रस की प्रतिष्ठा हो सकती थी, परन्तु मुक्तक काव्य के विषय में रस की निबंधना कठिन बात थी।

पश्चात् रस की आध्यात्मिक व्याख्या भी हुई। आचार्यों ने स्थिर किया कि वासनात्मक रति आदि वृत्तियाँ ही साधारणीकरण

विवेक या बुद्धिवादियों की वाङ्मयी धारा दर्शनों और कर्म-पद्धतियों तथा धर्मशास्त्रों का प्रचार करके भी, जनता के समीप न हो रही थी। उन्होंने पौराणिक कथानकों के द्वारा वर्णनात्मक उपदेश करना आरम्भ किया। उनके लिये भी साहित्यिक व्याख्या की आवश्यकता हुई। उन्हें केवल अपनी अलंकारमयी सूक्तियों पर ही गर्व था; इसलिये प्राचीन रसवाद के विरोध में उन्होंने अलंकारमत खड़ा किया, जिसमें रीति और वक्रोक्ति इत्यादि का भी समावेश था।" इन लोगों के पास रस जैसी कोई आभ्यन्तरिक वस्तु न थी। अपनी साधारण धार्मिक कथाओं में वे काव्य का रंग चढ़ा कर सूक्ति, वाग्विकल्प और वक्रोक्ति के द्वारा जनता को आकृष्ट करने में लगे रहे। बाद को आचार्यों का एक दल ऐसा उठ खड़ा हुआ जिसने पौराणिकों की मान्यताओं के सहारे काव्य की नई परख शुरू की। भामह ने अलंकार को प्रधानता दी, दण्डि ने रीति को महत्त्व दिया। सौन्दर्यबोध के आधार पर अलंकारों और शब्द-विन्यास कौशल की परीक्षा होने लगी। एक वर्ग ने वाग्विकल्प को भी अलंकार में मान लिया। इस प्रकार श्रव्य-काव्य की अलोचना के तीन आधार हुए: (१) रीति, (२) अलंकार, (३) वक्रोक्ति। इन अलंकारवादी आचार्यों ने रस को भी एक तरह का अलंकार माना और उसे रसवद् अलंकार कहा। 'शब्द या वाक्य' को काव्यानुभूति की इकाई मान कर—"वाक्यं रसात्मकं काव्यं", "रमणीयार्थ प्रतिपादकं शब्दः काव्यम्" जैसी सूक्तियाँ चल पड़ीं। कुछ आगे बढ़कर पंडित जगन्नाथ ने कहा कि अर्थ से काव्य का कोई संबंध नहीं, शब्द मात्र ही काव्य है। अतः रसपूर्ण अनुभूति को छोड़कर वाक्वैचित्र्य को ही काव्य की आत्मा माना जाने लगा। काव्य का अर्थ हुआ कुतूहल। भामह, दण्डि, वामन, उद्भट प्रभृति आचार्यों का यही दृष्टिकोण रहा। इन आचार्यों ने तर्कप्रधान विकल्पात्मक आलोचनाशास्त्र की

सकते। भक्ति-साहित्य की परख के संबंध में जो उच्छृङ्खलता फैली हुई है, उसका कारण यही ऐतिहासिक दृष्टि का अभाव है। मध्ययुग के कृष्ण-भक्तों ने 'रस' को अध्यात्मपरक बना दिया था। यहाँ द्वैतभावना की प्रधानता थी। मधुर, दास्य, सख्य, वात्सल्य, शांत, रहस्य। इस प्रकार नये रसों की सृष्टि हुई। इस मधुर सम्प्रदाय में जिस भक्ति का परिपाक रस के रूप में हुआ, उसमें परकीया प्रेम का महत्त्व इसीलिए बढ़ा कि इन भक्तों ने श्रुतिपथ (आर्यपथ) को तोड़कर समाज-नियम निरपेक्ष प्रेमाभक्ति की नियोजना की थी। जीव और ईश की भिन्नता और विवेकहीन अवैधा प्रेमाभक्ति की महत्ता स्थापित करना ही परकीया भावना का काम था। भक्तों ने इन नए रसों को प्रेममूलक रहस्य बना दिया और यह रहस्य भी गोप्य माना। आनंद का स्थान चिर विरहोन्मुख प्रेम ने ले लिया। इसीलिए भक्तिकाव्य में शुद्ध काव्य-रस ढूँढना हास्यास्पद है और इससे भ्रांति होना संभव है।

४—रहस्यवाद

प्रसाद स्वयं रहस्यवादी कवि के नाते प्रसिद्ध हैं। अतः रहस्यवाद के संबंध में उनके विचार उपादेय हैं।

रहस्यवाद की परिभाषा वे इस तरह देते हैं :

(१) काव्य में आत्मा की संकल्पात्मक मूल अनुभूति की मुख्यधारा रहस्यवाद है।

(२) वास्तव में भारतीय दर्शन और साहित्य दोनों का समन्वय रस में हुआ था। और यह साहित्यिक रस दार्शनिक रहस्यवाद से अनुप्राणित है।

(३) रहस्यवाद सच्चा भी हो सकता है और मिथ्या भी। प्रसाद ने मिथ्या रहस्यवाद का उदाहरण दिया है—

द्वारा भेद-विगलित हो जाने पर आनन्द-स्वरूप हो जाती हैं। उनका आस्वाद ब्रह्मास्वाद के तुल्य होता है। काव्यानन्द को 'समाधि-सुख' कहा गया है। यह निश्चित हुआ कि चित्तवृत्तियों की आत्मानंद में तल्लीनता समाधि-सुख ही है। साहित्य में भी दार्शनिक परिभाषाओं का प्रचलन हो गया और पंडित जगन्नाथ ने 'रसोवैसः, रसंह्येव लब्ध्वाऽनन्दी भवति' कहकर रस को ब्रह्मानंद के कैलाश शिखर पर पहुँचा दिया।

भरत ने 'शांतरस' को प्रधान माना था। यह शांतरस निस्तरङ्ग, निर्विकार महोदधि है। अन्य रस तरंग मात्र हैं। भावों के आलोड़न-विलोड़न हैं। परन्तु बाद के बुद्धिवादी साहित्यिकों ने शृङ्गार को ही अधिक महत्त्व दिया। वही रसराज माना गया।

परन्तु आध्यात्मिकों ने भी रस को ग्रहण किया। 'भक्ति' को भी रस माना गया। साहित्य में जो शृङ्गार रस था, उसे अध्यात्म-वादियों ने 'मधुर रस' और 'उज्ज्वल रस' कहा। मध्ययुग में रागात्मिका भक्ति का विशेष विकास हुआ और हास्य, करुण आदि प्राचीन रस गौण हो गये और दास्य, सख्य और वात्सल्य आदि नये रसों की सृष्टि हुई। रस अद्वैताश्रित भाव है। शैवागमों की अद्वैतभक्ति का आधार 'मधुररस' होना संभव था। परन्तु मध्ययुग की भक्ति द्वैतभावना पर आश्रित थी। अतः इस द्वैतभाव : भक्ति के आधार पर रस की व्याख्या अस्पष्ट एवं रहस्यमूलक हो गई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद ने पहली बार रस-सिद्धांत का विकास हिन्दी समीक्षकों के सामने रखा। उन्होंने दर्शन, साहित्य और भक्ति की तीन प्रवृत्तियों के भीतर रस की स्थापना के इतिहास की खोज की। रस-सम्बन्धी इस ऐतिहासिक दृष्टि के अभाव में हम अपने काव्य के साथ पूर्णतयः न्याय नहीं कर

"प्राचीन आर्य लोग सदैव से अपने क्रिया-कलाप में आनन्द, उल्लास और प्रमोद के उपासक रहे। आनन्द भावना, प्रिय-कल्पना और प्रमोद हमारी व्यवहार्य वस्तु थी। आज की जातिगत निर्वीर्यता के कारण उसे ग्रहण न कर सकने पर, यह सेमेटिक है, कहकर संतोष कर लिया जाता है!" ऐतिहासिक विवेचना करते हुए प्रसाद आर्यों की दो चिंताधाराओं तक जाते हैं। आर्यों में ऐकेश्वरवाद और आत्मवाद की दो चिंताधाराएँ अलग-अलग चल रही थीं। ऐकेश्वरवाद के प्रतिनिधि थे वरुण और आत्मवाद के इंद्र। इंद्र आत्मवाद और आनन्दवाद के प्रचारक थे। "वरुण को देवताओं के अधिपतिपद से हटना पड़ा, इंद्र के आत्मवाद की प्रेरणा ने आर्यों में आनन्द की विचारधारा उत्पन्न की। फिर तो इन्द्र ही देवराजपद पर प्रतिष्ठित हुए। साहित्य में आत्मवाद के प्रचारक इंद्र की जैसी चर्चा है, उवशी आदि अप्सराओं का जो प्रसंग है, वह उनके आनन्द के अनुकूल ही है। बाहरी याज्ञिक क्रिया-कलापों के रहते हुए भी वैदिक आर्यों के हृदय में आत्मवाद और ऐकेश्वरवाद की दोनों दार्शनिक विचारधाराएँ अपनी उपयोगिता में संघर्ष करने लगीं। सप्तसिन्धु के प्रबुद्ध तरुण आर्यों ने इस आनन्दवादी धारा का अधिक स्वागत किया।" जो ऐकेश्वरवादी आर्य इस आनन्दवाद को ग्रहण नहीं कर सके, वे असुर कहलाये। उन्होंने ही असीरिया का साम्राज्य स्थापित किया। सेमेटिक ऐकेश्वरवाद के वे ही आदि जनक हैं। स्वयं सप्तसिंधु के आर्यों का एक दल भी 'आत्मवाद' या 'आनन्दवाद' को पूर्णतः ग्रहण नहीं कर सका। उसने कर्मकाण्ड, चैत्यपूजा, अग्निहोत्र आदि कर्म जारी रखे। इस प्रकार वैदिक काल के बाद यही दो धाराएँ चलीं। इन व्रात्य और अयाज्ञिकों ने ही विवेक-प्रधान, बुद्धिवादी, अपरिग्रही तीर्थंकर मत को जन्म दिया। ये दुःखातिरेकवादी, आत्मवाद में आस्था

ताहि अहीर की छोहरियाँ छछियाँ भरछाछ पै नाच नचावत

(४) प्रसाद के अनुसार रहस्यवाद की हमारी अपनी दार्शनिक एवं काव्य-परंपरा है, परन्तु मध्ययुग में मिथ्या रहस्यवाद का इतना प्रचार हुआ कि सच्चे रहस्यवादी पुरानी चाल की छोटी-छोटी मण्डलियों में लावनी गाने और चंग खड़काने लगे।

आधुनिक युग में रहस्यवाद को पश्चिम की वस्तु माना गया। आलोचकों ने कहा—रहस्यवाद का मूल उद्गम सेमेटिक धर्म-भावना है और इसीलिए वह भारत से बाहर की वस्तु है। प्रसाद ने 'रहस्यवाद' निबंध में इसके विपरीत मत की स्थापना की है। उनका कहना है कि रहस्यवाद (अनलहकवाद) सेमेटिक धर्म भावना के विरुद्ध है एवं ईसा, मंसूर और सरमद आर्य अद्वैत धर्म-भावना से प्रभावित हैं।

ऋग्वेद के समय ही 'काम' (प्रेम) की प्रधानता मान ली गई थी। इसी वैदिक काम की, आगम शास्त्रों में, कामकला के रूप में उपासना भारत में विकसित हुई थी। यह उपासना सौन्दर्य, आनन्द और उन्मादभाव की साधना प्रणाली थी। पीछे १२वीं शताब्दी में सिंध के संपर्क के साथ यह भावना ईरान और अरब पहुँची। हो सकता है, फारस में जिस सूफी धर्म का विकास हुआ, उस पर काश्मीर के साधकों का भी प्रभाव पड़ा है। अतः रहस्यवाद और प्रेमवाद को मूलतः भारतीय चिंतनपद्धति स्वीकार करते हुए प्रसाद कहते हैं : "शैवों का अद्वैतवाद और उनका सामरस्य वाला रहस्य सम्प्रदाय, वैष्णों का माधुर्यभाव और उनके प्रेम का रहस्य तथा कामकला की सौन्दर्य-उपासना आदि का उद्गम वेदों और उपनिषदों के ऋषियों की वे साधना-प्रणालियाँ हैं, जिनका उन्होंने समय-समय पर अपने संघों में प्रचार किया था।"

अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अहम् का इदम् से सम्बन्ध करने का सुन्दर प्रयत्न है। हाँ, विरह भी युग की वेदना के अनुकूल मिलन का साधन बनकर इसमें सम्मिलित है। वर्तमान रहस्यवाद की धारा भारत की निजी संपत्ति है, इसमें सन्देह नहीं।"

५—यथार्थवाद

यथार्थवाद को प्रसाद वर्तमान युग की एक प्रधान प्रवृत्ति मानते हैं। दूसरी प्रवृत्ति है 'छायावाद'। उनकी विवेचक दृष्टि में हरिश्चन्द्र ने राष्ट्रीय वेदना के साथ ही जीवन के यथार्थ रूप का भी चित्रण आरम्भ किया था। 'प्रेम-योगिनी' हिंदी में इस ढंग का पहला प्रयास है। और 'देखी तुमरी कासी' वाली कविता को भी मैं इसी श्रेणी की समझता हूँ। प्रतीक-विधान चाहे दुर्बल रहा हो, परन्तु जीवन की अभिव्यक्ति का प्रयत्न हिन्दी में इसी समय प्रारंभ हुआ था। वेदना और यथार्थवाद का स्वरूप धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगा।"

"यथार्थवाद की विशेषताओं में प्रधान है लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात। उसमें स्वभावतः दुःख की प्रधानता और वेदना की अनुभूति आवश्यक है। लघुता से मेरा तात्पर्य है साहित्य में माने हुए सिद्धांत के अनुसार महत्ता के काल्पनिक चित्रण के अतिरिक्त व्यक्तिगत जीवन के दुःख और अभावों का वास्तविक उल्लेख।" व्याख्या करते हुए वे यथार्थवाद की विशेषता यह भी बताते हैं—

दैवीशक्ति से तथा महत्त्व से हटकर अपनी क्षुद्रता तथा मानवता में विश्वास होना, संकीर्ण संस्कारों के प्रति द्वेष होना। वे कहते हैं—"जाति के जो धार्मिक और साम्प्रदायिक परिवर्तनों के स्तर आवरण-स्वरूप बन जाते हैं, उन्हें हटाकर अपनी प्राचीन वास्तविकता को खोजने की चेष्टा भी साहित्य में तथ्यवाद की

न रखनेवाले और वाह्य उपासना में चैत्यपूजक थे। इस अनात्मवाद की प्रतिक्रिया से भक्तिवाद का जन्म हुआ और किसी त्राणकारी पराशक्ति की खोज की जाने लगी।

इस प्रकार भारत के प्राचीनतम इतिहास के समय से दो धाराएँ वरावर चली आती हैं; एक, विकल्पात्मक बुद्धिवाद की धारा; दो, आनंदवाद की धारा। कठ, पांचाल, काशी और कोशल आनन्दवादियों के केन्द्र थे। मगध का संवंध व्रात्यों से था। सदानीरा के उसपार का देश दार्शनिक चिंतन और दुःखवाद की जन्मभूमि रहा है।

उपनिषदों के ऋषियों से आरम्भ होकर सिद्धों और संतों तक आनन्दरस की साधना की एक धारा चलती रही। उपनिषदों के ऋषियों, आगमवादियों, टीकाकारों, योगियों और सिद्धों ने इस अद्वैत आनन्द को भली-भाँति विकसित किया। रामभक्त तुलसी और कृष्णभक्त सूरदास भी इस रहस्यवादी धारा के प्रभाव से नहीं वच सके। परन्तु इनमें आनंद अमिश्रित नहीं रहा। संतों ने राम की वहुरिया वनकर प्रेम और विरह की कल्पना कर ली। भागवत के कुछ अध्यायों (वेणु-वादन, भ्रमरगीत, वनगमन) से इंगित लेकर उस पर नायक-नायिका के मिलन-वियोग का आवरण चढ़ाकर चंडीदास और विद्यापति ने महारास (आत्मा-परमात्मा के मिलन) की वीथिका के लिए वियोग-दुःख का आयोजन किया। इस प्रकार मध्ययुग में शुद्ध आनंदवाद के सुर दव गये। "किन्तु सिद्धों की रहस्य सम्प्रदाय की परंपरा में तुकनगिरि और रसालगिरि आदि ही शुद्ध रहस्यवादी कवि लावनी में आनन्द और अद्वयता की धारा वहाते रहे।"

आधुनिक रहस्यवाद के संवंध में उनका मत है—"वर्तमान हिन्दी में इस अद्वैत रहस्यवाद की सौंदर्यमयी व्यंजना होने लगी है, वह साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। इसमें

ऊपर हमने यथार्थ-सम्बन्धी प्रसाद के तथ्यों को उद्धृत किया है। इनके विश्लेषण से हमें प्रसाद की यथार्थवाद-संबन्धी धारणा का पता चलता है :

(१) जीवन के यथार्थ रूप का चित्रण।

(२) लघु और उपेक्षित जीवों और वस्तुओं के प्रति सहानुभूति।

(३) दुःख और वेदना की अनुभूति।

(४) व्यक्तिगत जीवन के दुःख और अभावों का वास्तविक उल्लेख।

(५) संकीर्ण संस्कारों के प्रति विद्रोह।

(६) मनष्य की दुर्बलताओं का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण।

(७) व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक अवस्था और सामाजिक रूढ़ियों की परख।

(८) स्त्रियों के सम्बन्ध में नारीत्व की दृष्टि।

प्रसाद गद्य-साहित्य को ही यथार्थवाद का प्रमुख माध्यम मानते हैं। स्वयं उनकी कितनी ही कहानियाँ और उनका प्रसिद्ध उपन्यास 'कंकाल' यथार्थवाद के अन्यतम उदाहरण हैं। परन्तु भावभूमि में वे आदर्शवाद और यथार्थवाद के समन्वय को ही सत्साहित्य मानते हैं। वे कहते हैं—साहित्यकार न तो इतिहास-कर्त्ता है और न धर्मशास्त्र-प्रणेता। इन दोनों के कर्तव्य स्वतंत्र हैं। साहित्य इन दोनों की कमी को पूरा करने का काम करता है। साहित्य समाज की वास्तविक स्थिति क्या है, इसको दिखाते हुए भी उसमें आदर्शवाद का सामञ्जस्य स्थिर करता है। दुःख-दग्ध जगत् और आनन्दपूर्ण स्वर्ग का एकीकरण साहित्य है; इसीलिए असत्य अघटित घटना पर कल्पना को वाणी महत्त्वपूर्ण स्थान देती है, जो निजी सौन्दर्य के कारण सत्यपद पर प्रतिष्ठित होती है। इसमें विश्वमङ्गल की भावना ओतप्रोत रहती है।"

ऊपर हमने यथार्थ-सम्बन्धी प्रसाद के तथ्यों को उद्धृत किया है। इनके विश्लेषण से हमें प्रसाद की यथार्थवाद-संबन्धी धारणा का पता चलता है :

(१) जीवन के यथार्थ रूप का चित्रण।

(२) लघु और उपेक्षित जीवों और वस्तुओं के प्रति सहानुभूति।

(३) दुःख और वेदना की अनुभूति।

(४) व्यक्तिगत जीवन के दुःख और अभावों का वास्तविक उल्लेख।

(५) संकीर्ण संस्कारों के प्रति विद्रोह।

(६) मनष्य की दुर्बलताओं का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण।

(७) व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक अवस्था और सामाजिक रूढ़ियों की परख।

(८) स्त्रियों के सम्बन्ध में नारीत्व की दृष्टि।

प्रसाद गद्य-साहित्य को ही यथार्थवाद का प्रमुख माध्यम मानते हैं। स्वयं उनकी कितनी ही कहानियाँ और उनका प्रसिद्ध उपन्यास 'कंकाल' यथार्थवाद के अन्यतम उदाहरण हैं। परन्तु भावभूमि में वे आदर्शवाद और यथार्थवाद के समन्वय को ही सत्साहित्य मानते हैं। वे कहते हैं—साहित्यकार न तो इतिहास-कर्त्ता है और न धर्मशास्त्र-प्रणेता। इन दोनों के कर्तव्य स्वतंत्र हैं। साहित्य इन दोनों की कमी को पूरा करने का काम करता है। साहित्य समाज की वास्तविक स्थिति क्या है, इसको दिखाते हुए भी उसमें आदर्शवाद का सामञ्जस्य स्थिर करता है। दुःख-दग्ध जगत् और आनन्दपूर्ण स्वर्ग का एकीकरण साहित्य है; इसीलिए असत्य अघटित घटना पर कल्पना की वाणी महत्त्वपूर्ण स्थान देती है, जो निजी सौन्दर्य के कारण सत्यपद पर प्रतिष्ठित होती है। इसमें विश्वमङ्गल की भावना ओतप्रोत रहती है।"

सहायता करती है। फलतः आरम्भिक साहसपूर्ण और विचित्रता से भरी हुई आख्यायिकाओं के स्थान पर—जिनकी घटनाएँ राजकुमारों से ही संबद्ध होती हैं—मनुष्य के वास्तविक जीवन का साधारण चित्रण आरम्भ होता है। व्यापक दुःख संवलित मानवता को स्पर्श करनेवाला साहित्य यथार्थवादी बन जाता है। इस यथार्थवादिता में अभाव, पतन और वेदना के अंकुर प्रचुरता से होते हैं।"

"यथार्थवाद में यह भी माना जाता है कि मनुष्य में दुर्बलताएँ होती हैं और वास्तविक चित्रों में पतन का भी उल्लेख आवश्यक है। और फिर पतन के मुख्य कारण क्षुद्रता और निन्दनीयता भी—जो सामाजिक रूढ़ियों के द्वारा निर्धारित रहती हैं—अपनी सत्ता बनाकर दूसरे रूप में अवतरित होती हैं। वास्तव में कर्म, जिनके सम्बन्ध में देश, काल और पात्र के अनुसार यह कहा जा सकता है कि वे सम्पूर्ण रूप से न तो भले हैं और न बुरे हैं, कभी समाज के द्वारा ग्रहण किये जाते हैं.कभी त्याज्य होते हैं। दुरुपयोग से मानवता के प्रतिकूल होने पर अपराध कहे जाने वाले कर्मों से जिस युग के लेखक समझौता कराने का प्रयत्न करते हैं, वे ऐसे कर्मों के प्रति सहानुभूति प्रगट करते हैं। व्यक्ति की दुर्बलता के कारण की खोज में व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक अवस्था और सामाजिक रूढ़ियों को पकड़ा जाता है। और इस विषमता को ढूँढने पर वेदना ही प्रमुख होकर सामने आती है। साहित्यिक न्याय की व्यावहारिकता में वह संदिग्ध होता है। तथ्यवादी पतन और स्खलन का भी मूल्य जानता है और वह मूल्य है, स्त्री नारी है और पुरुष नर है, इनका परस्पर केवल यही संबन्ध है।"

"वेदना से प्रेरित होकर जनसाधारण के अभाव और वास्तविक स्थिति तक पहुँचने का प्रयत्न यथार्थवादी.साहित्य करता है।"

है। जब कवि 'बाह्य उपाधि से हटकर आन्तर हेतु की ओर प्रेरित हुए', तो उन्हें अभिव्यक्ति का एक निराला ढङ्ग आविष्कृत करना पड़ा। 'इस नये प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए जिन शब्दों की योजना हुई, हिंदी में वे पहले से कम समझे जाते थे; किंतु शब्दों में भिन्न प्रयोग से एक स्वतंत्र अर्थ उत्पन्न करने की शक्ति है।' इसी स्वतंत्र शक्ति की साधना छायावादी कवियों को मान्य हुई।

अभिव्यक्ति के इस नए ढङ्ग की प्रसाद ने प्राचीनों की उक्तियों के सहारे व्याख्या की है। उन्होंने बताया है, यह कोई नई वस्तु नहीं। भारतीय काव्य-परंपरा में बराबर इसका प्रयोग रहा है और आनन्दवर्द्धन और कुन्तक जैसे आचार्यों ने साहित्यशास्त्रों में इसकी व्याख्या की है। कवि अर्थ से कुछ अधिक प्रगट करना चाहता था। इसके लिए वह एक नई शैली पकड़ता है। अर्थ से अधिक यह जो है, उसे प्राचीन आचार्यों ने 'लावण्य', 'छाया' 'विच्छित्ति', 'वक्रता', 'वैदग्ध भंगी' नाम से प्रगट किया है। इसे 'ध्वनि' भी कहते हैं। "यह ध्वनि प्रबन्ध, वाक्य, पद और वर्ण में दीप्त रहती है। कवि की वाणी में यह प्रतीयमान छाया युवती के लज्जा के भूषण की तरह होती है। ध्यान रहे कि यह साधारण अलंकार जो पहन लिया जाता है वह नहीं है, किन्तु यौवन के भीतर रमणी-सुलभ श्री की बहिन ही है, घूँघट वाली लज्जा नहीं। संस्कृत-साहित्य में यह प्रतीयमान छाया अपने लिए अभिव्यक्ति के अनेक साधन उत्पन्न कर चुकी है। इस दुर्लभ छाया का संस्कृत काव्योत्कर्ष-काल में अधिक महत्त्व था। आवश्यकता इसमें शाब्दिक प्रयोगों की भी थी, किन्तु आन्तर अर्थवैचित्र्य को प्रकट करना भी इनका प्रधान लक्ष्य था। इस तरह की अभिव्यक्ति के उदाहरण संस्कृत में प्रचुर हैं। उन्होंने उपमाओं में भी आन्तर सारूप्य खोजने का प्रयत्न किया था। निरहङ्कार मृगांक, पृथ्वी गतयौवना, संवेदन मिवाम्बरं, मेघ के लिए जनपदवधू

६—छायावाद

प्रसाद की 'छायावाद' की विवेचना साहित्य-सम्बन्धी उनकी सारी स्थापनाओं में सबसे मौलिक है। उनका कहना है कि आधुनिक कविता की छायावादी धारा रीतिकालीन परंपरा की प्रतिक्रिया है जिसमें बाह्यवर्णन की प्रधानता थी। इसे हम वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति कह सकते हैं। छायावाद की कविता के संबंध में वे लिखते हैं—"ये नवीन भाव आंतरिक स्पर्श से पुलकित थे। आभ्यंतर सूक्ष्म भावों की प्रेरणा बाह्य स्थूल आकार में भी कुछ विचित्रता उत्पन्न करती है। सूक्ष्म आभ्यन्तर भावों के व्यवहार में प्रचलित पदयोजना सफल रही। उनके लिये नवीन शैली, नया वाक्य-विन्यास आवश्यक था। हिंदी में नवीन शब्दों की भंगिमा स्पृहणीय आभ्यंतर वर्णन के लिये प्रयुक्त होने लगी।"

इस प्रकार प्रसाद 'छायावाद' को प्रधानता शब्द, शब्दभंगिमा और शैली के क्षेत्र में एक क्रांति मानते हैं। वे इसे रहस्यवाद से अलग वस्तु समझते हैं। यह तो ठीक है कि आधुनिक काव्य की अभी अपनी भावदिशाएँ विकसित हो रही थीं :

(१) वेदना की प्रधानता।

(२) स्वानुभूति मयी अभिव्यक्ति (व्यक्तिवाद)।

(३) भावों की सूक्ष्म व्यंजना।

परन्तु बाह्यांग में भी कम महत्त्वपूर्णपरिवर्तन न था। बाह्यांग में थी :

(४) नवीन पदयोजना।

(५) नवीन शैली।

(६) नया वाक्य-विन्यास जिसमें सूक्ष्म अभिव्यक्ति का प्रयास हो और जो भाव में एक तड़प उत्पन्न कर दे।

(७) आभ्यंतर वर्णन के लिए शब्दों की नवीन भंगिमा।

प्रसाद ने छायावाद के इसी बाह्य-पक्ष की ओर ही अधिक बल दिया

वे छायावाद की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—'छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौंदर्यमय प्रतीक-विधान तथा उपचार-वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएँ हैं। अपने भीतर से मोती के पानी की तरह आन्तर स्पर्श करके भाव-समर्पण करनेवाली अभिव्यक्ति छाया कांतिमयी होती है।'

प्रसाद ने काव्य के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, वह इधर-उधर बिखरा पड़ा है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वे उच्चकोटि के समीक्षक थे और उनकी मान्यताएँ साहित्यिकों और आलोचकों के मनन करने की वस्तु है। नीचे हम उनकी मान्यताओं को क्रमबद्ध रूप से रखते हैं :

१—कला

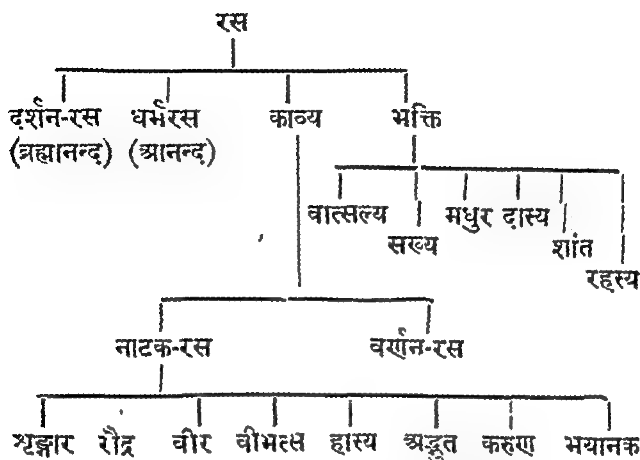
पश्चिमी विचारकों की भाँति प्रसाद मूर्त्त और अमूर्त्त कला का भेद नहीं मानते। उनकी दृष्टि में 'कला' अनुकरण नहीं है, वह आत्मानुभूति है, भीतर और बाहर आनन्द की साधना है। कला में 'इदं' 'अहं' हो जाता है। भारतीय दृष्टि में कला उप-विद्या है। काव्य उससे ऊपर। कला कौशल मात्र है। काव्य के बाह्याङ्ग से इसका सम्बन्ध हो सकता है, परन्तु काव्य का आभ्यंतर कला (कौशल) निरपेक्ष है। छंद, अलंकार, वक्रोक्ति, रीति आदि काव्यांग कला के विषय हैं। अतः कला के भीतर वर्गरूप में काव्य की स्थापना का प्रश्न ही नहीं उठता।

२—काव्य

काव्य विज्ञान का विपरीत है। जहाँ विज्ञान में विश्लेषण या विकल्प है, वहाँ काव्य में संश्लेषण। प्रसाद के शब्दों में

लोचनैः पीयमानः या कामदेव के कुसुम शर के लिए विश्वसनीयमायुधं, ये सब प्रयोग बाह्य सादृश्य से अधिक आन्तर सादृश्य को प्रकट करने वाले हैं।" "इन अभिव्यक्तियों में जो छाया की स्निग्धता है, तरलता है, वह विचित्र है। अलंकार के भीतर आने पर भी ये उनसे कुछ अधिक हैं।" प्रसाद कहते हैं—"प्राचीन साहित्य में यह छायावाद अपना स्थान बना चुका है। हिन्दी में जब इस तरह के प्रयोग आरम्भ हुए तो कुछ लोग चौंके सही, परन्तु विरोध करने पर भी अभिव्यक्ति के इस ढङ्ग को ग्रहण करना पड़ा। कहना न होगा कि ये अनुभूतिमय आत्मस्पर्श काव्य-जगत् के लिए अत्यंत आवश्यक थे। काकु या श्लेष की तरह यह सीधी वक्रोक्ति भी न थी। बाह्य से हटकर काव्य की प्रवृत्ति आन्तर की ओर चल पड़ी थी।"

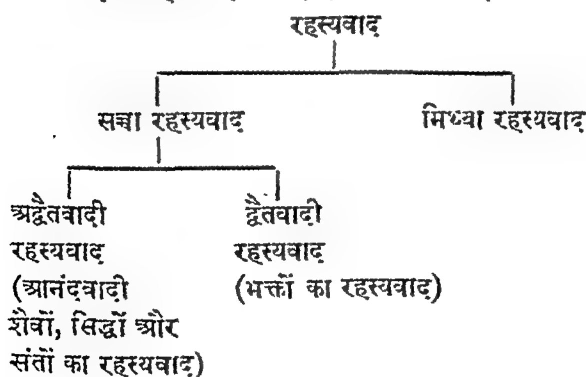
छायावाद काव्य पर आलोचकों ने यह दोष लगाया है कि वह अस्पष्ट है, इसका निवारण प्रसाद ने किया है : "कुछ लोग इस छायावाद में अस्पष्टता का रंग भी देख पाते हैं। हो सकता है कि जहाँ कवि ने अनुभूति का पूर्ण तादात्म्य नहीं कर पाया हो, वहाँ अभिव्यक्ति विशृङ्खल हो गई हो, शब्दों का चुनाव ठीक न हुआ हो, परन्तु सिद्धान्त में ऐसा रूप छायावाद का ठीक नहीं कि जो कुछ अस्पष्ट छाया-मात्र हो, वास्तविकता का स्पर्श न हो, वही छायावाद है।" परन्तु प्रसाद छायावाद और रहस्यवाद को पर्यायवाची शब्द भी नहीं मानते : "मूल में यह रहस्यवाद भी नहीं है। प्रकृति विश्वात्मा की छाया या प्रतिबिंब है; इसलिए प्रकृति को काव्यगत व्यवहार में ले आकर छायावाद की सृष्टि होती है, यह सिद्धांत भी भ्रामक है। यद्यपि प्रकृति का आलंबन, स्वानुभूति का प्रकृति से तादात्म्य नवीन काव्यधारा में होने लगा है, किन्तु प्रकृति से संबंध रखनेवाली कविता को ही छायावाद नहीं कहा जा सकता।"



इस प्रकार हम प्रसाद की रसदृष्टि को सर्वाङ्गीण पाते हैं। किसी 'वाद' विशेष तक सीमित रहने का आग्रह उनमें नहीं है। उनकी दृष्टि ऐतिहासिक होने के कारण व्यापक है।

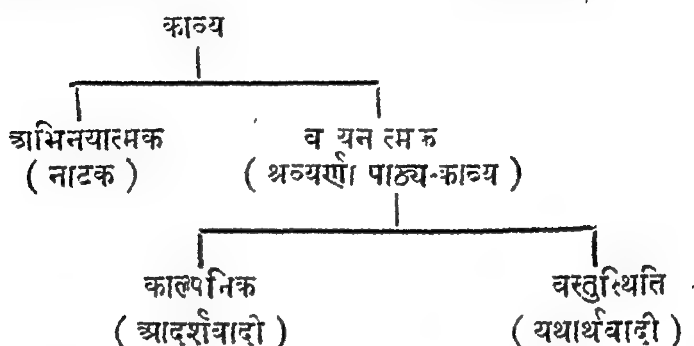
४—रहस्यवाद

प्रसाद ने रहस्यवाद के भेद इस प्रकार माने हैं :



'काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है।' यह अनुभूति मौलिक और तीव्र होनी चाहिये।

प्रसाद के अनुसार काव्य का वर्गीकरण इस प्रकार होगा—



रस-दृष्टि से काव्य के और भी भेद हो सकते हैं—

१—आनन्दवादी।

२—बुद्धिवादी।

३—रहस्यवादी।

इस प्रकार प्रसाद ने प्रमुख मानव-प्रवृत्तियों के आधार पर ही काव्य की समीक्षा की चेष्टा की है।

३—रस

कवि की संकल्पात्मक अनुभूति से जिस 'आनन्द' की सृष्टि होती है, उसे ही 'रस' माना गया है। प्रसाद ने 'रस' की ऐतिहासिक विवेचना की है और बताया है कि दर्शन, काव्य और धर्म के अनुसार 'रस' शब्द के अर्थ भिन्न-भिन्न रहे हैं। शुद्ध काव्य-रस की विवेचना की ओर समीक्षकों की दृष्टि गई ही नहीं है। उन्होंने एक बड़ी क्रांतिकारी सूझ उपस्थित की है जो मध्ययुग के काव्य को नई परख देगी। उन्होंने रस के ये विभाजन किये हैं—

स्वयं प्रसाद के काव्य की परख पर इन स्थापनाओं का प्रभाव पड़ना आवश्यक है। उनके अनुसार आधुनिक काव्य की तीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं—

१—यथार्थवाद।

२—रहस्यवाद।

३—छायावाद।

यथार्थवादी काव्य के अंतर्गत वह सब काव्य आ जाता है जिसमें उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति है, व्यक्तिगत जीवन के सुख-दुःख का उल्लेख है, मनोवैज्ञानिक अवस्था या सामाजिक रूढ़ियों का चित्रण है, स्त्रियों के प्रति नारीत्व का दृष्टिकोण है, या राष्ट्रीय भावना है। स्वयं प्रसाद के काव्य का बहुत थोड़ा भाग यथार्थवाद के अंतर्गत आता है। 'प्रलय की छाया' को हम इसके भीतर रख सकते हैं। प्रसाद का अधिकांश काव्य रहस्य या छायावाद के अंतर्गत आता है। प्रसाद शैव थे, आनन्दवादी कवि थे, इस दृष्टि से उनके सारे काव्य में आनन्द और रहस्य की एक धारा बह रही है। 'लहर' की कितनी रचनाएँ सुन्दर रहस्यवादी काव्य हैं। परन्तु उनका आग्रह 'छायावाद' की ओर ही विशेष रूप से है, इसमें कोई भी संदेह नहीं है। प्रसाद काव्य में 'छायावाद' का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण 'आँसू' है। जो आलोचक प्रसाद की छायावाद-संबंधी स्थापनाओं से परिचित नहीं है, वह इस सुन्दर कृति के साथ न्याय नहीं कर सकता। 'आँसू' के कुछ पद देकर हम इस बात को स्पष्ट करेंगे। कवि वेदना को संबोधित करता है—

सपनों की सुख छाया में
जब तन्द्रालय संसृति है
तुम कौन सजग हो आई
मेरे मन में विस्मृति है

जब साहित्य में रहस्यवाद रूढ़ि बन जाता है, तो उसके साथ बहुत कुछ मिथ्या रहस्यवाद के रूप में हमारे सामने आता है। हमारे साहित्य में भी ऐसे मिथ्या रहस्यवाद की कमी नहीं है। प्रसाद आधुनिक रहस्यवादी काव्य को एकदम परंपराविहीन विदेशी वस्तु नहीं मानते। वे आधुनिक रहस्यकाव्य का आधार "अद्वैतवाद" मानते हैं जिसमें अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अहम् का इदम् से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है। इस प्रकार उन्होंने आज की रहस्यवादी कविता को भारत की निजी रहस्यवादी काव्यसंपत्ति से जोड़ने का श्रेय प्राप्त किया है।

५—यथार्थवाद

प्रसाद यथार्थवाद को आदर्शवाद का विरोधी मानते हैं। परन्तु रहस्यवाद और छायावाद से उसका कोई विरोध नहीं मानते। उनके अनुसार हमारा सारा साहित्य मूलतः आदर्शवादी रहा है। यथार्थवाद बाबू हरिश्चन्द्र से आरम्भ होता है। यह यथार्थवाद आधुनिक काव्य का महत्त्वपूर्ण अंग है।

६—प्रसाद ने 'छायावाद' की विशद विवेचना की है। उनके अनुसार 'छायावाद' अभिव्यक्ति की एक विशिष्ट शैली मात्र है। रहस्यवाद से उसका कोई अनिवार्य संबंध नहीं। उन्होंने अभिव्यक्ति के इस नए ढङ्ग को प्राचीन काव्य में भी खोज निकाला है और आचार्यों की साक्षी ला खड़ी की है। उनके अनुसार छायावाद की विशेषताएँ हैं—

(१) ध्वनि, (२) लक्षण, (३) सौन्दर्यमय प्रतीक-विधान, (४) कथन की वक्रता, (५) स्वानुभूति।

इस तरह उन्होंने आधुनिक आलोचकों के उस वर्ग से मत-भेद प्रगट कर दिया है जो छायावाद को रहस्यवाद का पर्यायवाची मानकर चलते हैं।

तुम ! अरे, वही हाँ तुम हो
मेरी चिर-जीवन-संगिनि
दुख वाले दग्ध हृदय की
वेदने ! अश्रुमयि रंगिनि

जब तुम्हें भूल जाता हूँ
कुड्मल किसलय के छल में
तब कूक हूक-सी बन तुम
आ जाती रंगस्थल में

बतला दो अरे, न हिचको
क्या देखा शून्य गगन में
कितना पथ हो चल आई
रजनी के मृदु निर्जन में

कवि दुखविह्वल है। जब सब सुख की नींद सो रहे हैं, तब भी वह जाग रहा है। कौन उसे सजग कर रहा है ? वह तो जैसे भूल गया है ! सहसा उसे याद आई। यह तो वेदना है, उसकी चिरजीवन संगिनि ! (अश्रुमयि रंगिनि !) जैसे प्रयोग वेदना को मूर्त्त बना देते हैं। उसे आश्चर्य होता है—संसार के सुख छल में (कुड्मल-किसलय के दल में व्यंग्य है) जब वह भूल जाता है, तब भीतर से वेदना की हूक उठती है। इसके बाद वह मूर्तिमान वेदना से कई प्रश्न करता है जो संसार-व्यापी दुःख को भली भाँति व्यंजित कर देते हैं। वेदने ! तुम तो रजनी की इस निर्जनता में न जाने कितनी दूर से चलकर यहाँ आई हो। जरा बताओ तो ! इधर शशि-किरणें हँस-हँस कर मकरंद पान करती हैं, इधर कुमुद रोते हैं। प्रेमी जलनिधि आकाशचारी शशि को पाने में असफल है। शैल-मालाओं के भीतर भयंकर ज्वाला भरी पड़ी है ! यह सब तुमने क्या नहीं देखा ? कलियों का रसपान

कर कृतज्ञता भूल कर उड़ जाने वाले अलियों तुमने देखा है। जिनके आँसू भी सूख गये हैं, उन दुखियों को भी तुमने देखा है ? अंत में वह पूछता है—

सूखी सरिता की शय्या
वसुधा की करुण कहानी
कूलों में लीन न देखी
क्या तुमने मेरी रानी!
सूनी कुटिया कोने में
रजनी भर जलते जाना
लघु स्नेह भरे दीपक का
देखा हो फिर बुझ जाना

(इस पृथ्वी पर कैसी-कैसी करुण कहानियाँ चल रही हैं। ऐसी भी नदियाँ हैं जिनका जल सूख गया है, वह किनारे समेटे पड़ी हैं। ऐसे भी दीपक हैं जो सूनी कुटियों के किसी कोने में अपना थोड़ा-सा संबल मात्र स्नेह जला चुके हैं। फिर अज्ञात ही बुझ गये हैं) इन प्रश्नों के पीछे कवि की अपनी कथा है। एक नूतन शैली में कवि अपने प्रेमी से कह रहा है, देखो तो ! यदि तुम्हें संसार का इतना दुःख, इतनी वेदना, इतना सर्वनाश देखना है, तो इस मेरे हृदय को देखो ! व्यंजना की यह नई शैली हिंदी काव्य को प्रसाद की मूल्यवान देन है।

———

११

अंतिम अध्याय

पीछे के पृष्ठों में हमने कवि प्रसाद और उनके काव्य के सम्बन्ध में अपनी गवेषणा उपस्थित की है। प्रसाद आधुनिक हिंदी काव्य के एक प्रमुख स्तंभ हैं, अतः उनका अध्ययन अनिवार्य हो जाता है। उनको भलीभाँति समझे बिना आधुनिक काव्य की रहस्यवादी और छायावादी धारा को समझना असंभव है।

प्रसाद ने जिस समय काव्य-रचना आरंभ की, उस समय ब्रजभाषा काव्य का प्रचार था उसी में रचना होती थी, खड़ी बोली कविता में ग्रहण की जाने लगी थी और सरस्वती (१९००) ने उसका प्रचार भी शुरू किया था, परंतु मैदान ब्रजभाषा के ही हाथ था। स्वयं काशी में भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र का काव्य एक महान रूढ़ि बन गया था। यह काव्य ब्रजभाषा में था। इसकी अवहेलना प्रसाद के लिए असंभव था। अतः हम प्रसाद को भक्ति और प्रेम (शृङ्गार) की रचना से काव्य का आरंभ करते पाते हैं। उनकी सबसे पहली प्रकाशित रचना यह है—

सावन आये विभोगिन को तन
आली अनंग लगे अति तावन
तावन हीय लगी अवला
तड़पै जब बिज्जु छटा छवि छावन
छावन कैसे कहूँ मैं विदेस
लगे जुगनू हिय आग लगावन

गायन लगे मयूर कलाधर
झाँपि कै मेघ लगे बरसावँन
(भारतेन्दु, जुलाई १६०६)

इसके बाद 'इंदु' (१६०६-१६) में उन्होंने व्रजभाषा के अनेक पद, सवैया, कवित्त दिये और उसमें नए भाव भी भरने का प्रयत्न किया। सॉनेट (चतुष्पदी) जैसे छंद को व्रजभाषा रूप में उपस्थित करने का साहस उन्हीं जैसे कवि को हो सकता था।

'इंदु' में ही उन्होंने खड़ी बोली की कविता लिखनी शुरू की और फिर धीरे-धीरे व्रजभाषा में लिखना छोड़ दिया। पहले वह द्विवेदीयुग के कवियों से थोड़े प्रभावित जरूर हुए, परन्तु शीघ्र ही उन्होंने अपना निश्चित पथ ग्रहण कर लिया और अभिव्यंजना की एक नई शैली के आविष्कार का प्रयत्न किया। १६१३ ई० में रविबाबू की 'गीतांजलि' हिंदी संसार के सामने आई और प्रसाद उससे प्रभावित हुए। काशी जैसे धर्मतंत्र में रहते हुए शैव भक्तों के बीच में पले प्रसाद आत्मसमर्पण और अदृश्य सत्ता की गहरी अनुभूति के संदेश के प्रभाव से बच सकते, ऐसा असंभव था। गीतांजलि का प्रभाव 'पंत' और 'निराला' की कुछ कविताओं पर भी है, परंतु यह प्रभाव कहीं भी अधिक नहीं है। हिन्दी के इन तीनों कवियों ने अलग-अलग दिशाएँ ग्रहण कीं और एक नये प्रकार के काव्य का सूत्रपात किया।

प्रसाद ने अभिव्यंजना की एक नई शैली निकाली और प्रेम, सौन्दर्य और आनंद को अपना विषय बनाया। 'झरना' को छोड़ कर उनकी अन्य कविताओं पर रविबाबू का जरा भी प्रभाव नहीं है। उनकी अपनी शैली, अपनी मूर्त्तिमत्ता। 'पंत' ने अंग्रेजी के रोमांटिक (स्वच्छंदतावादी) कवियों के काव्य का सहारा लिया और 'छाया', 'बादल', 'ज्योत्स्ना' जैसी कविताएँ लिखकर प्रकृति

और मानव के सहज-सुन्दर परन्तु रहस्यमय संबन्ध की ओर संकेत किया। पंत नारी-सौन्दर्य, प्रेम और प्रकृति के कवि हैं। जीवन की सभी छोटी-बड़ी भङ्गिमाओं के प्रति जितना प्रेम उनकी कविताओं में लक्षित है, उतना प्रेम अन्य स्थान पर नहीं मिलेगा। 'निराला' ने रविबाबू के प्रौढ़ काव्य से बल प्राप्त किया। हिन्दी के अन्य कवियों की संवेदना केवल 'गीतांजलि' तक सीमित रहती थी। रविबाबू की 'उर्वशी' जैसी विराट् चित्रपटी से वे परिचित नहीं थे। निराला ने उनके लिए एक नई परंपरा स्थापित की। 'विधवा' 'भिक्षुक' जैसी प्रतिदिन की संवेदनाओं को लेकर उन्होंने काव्य का सुन्दर प्रासाद खड़ा किया। उनकी classical प्रवृत्ति ने उन्हें 'राम की शक्ति-उपासना', 'शिवाजी का पत्र', 'जागो फिर एक वार' और 'तुलसीदास' जैसे खंड काव्यों की ओर बढ़ाया। इस प्रकार 'गीतांजलि' का प्रभाव अधिक दिन तक टिक नहीं सका। कवियों की व्यक्तिगत रुचि और उनकी सीमाओं ने 'छायावाद' को रवि बाबू की 'गीतांजलि' की 'उच्छिष्ट' मात्र सामग्री होने से बचा लिया।

इन तीनों कवियों ने हमारी काव्य-परंपरा से हट कर एक नये काव्य की नींव डाली। जितनी बड़ी क्रांति 'छायावाद' काव्य ने की, उतनी बड़ी क्रांति हिंदी कविता के किसी भी युग में नहीं हुई थी। भाषा, भाव, शैली, व्यंजना—सभी में शत प्रति शत क्रांति थी। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे प्रगतिशील विचारक और आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल जैसे विचारशील आलोचक नए काव्य को परंपराभ्रष्ट और उच्छृंखल समझने लगे। कौन नहीं जानता कि आचार्य द्विवेदी ने 'सुकवि किंकर' के नाम से पंत की कविताओं का विरोध किया था और आचार्य शुक्ल ने 'रहस्यवाद' विषय पर एक वृहद् ग्रंथ लिखकर छायावादी कवियों को चुनौती दी थी। मई १९२७ की 'सरस्वती' में

द्विवेदी जी ने 'कवि किंकर' के नाम से पंत की वीणा की विरोधी आलोचना की थी, उन्होंने 'वीणा' के प्रकाशकों से आग्रह करके भूमिका का एक अंश निकलवा भी दिया था। पंत को भी वृद्ध द्विवेदी के व्यंग का उत्तर व्यंग से देना पड़ा था—

"व्यास, कालिदास के होते हुए, तथा सूर, तुलसी के अमर काव्यों के रहते हुए भी ये कवि यशोलिप्सु, कवित्वहंता छायावाद के छोकड़े, कमल-यमल, अरविंद-मलिंद आदि अनोखे-अनोखे उपनामों की लाङ्गूल लगा, कामा फुलिस्टापों से जर्जरित, प्रश्न-आश्चर्य-चिन्हों के तीरों से मर्माहत कभी गज-गज की लंबी, कभी दो ही दो अंगुल की, टेढ़ी-मेढ़ी, ऊँची-नीची, यतिहीन, छंदहीन, शब्द-अर्थ-तुकशून्य काली सतरों की चीटियों की टोलियाँ, तथा अस्पृश्य काव्य के गुह्यातिगुह्य कच्चे घरोंदे बना, ताड़पत्र, भोजपत्र को छोड़ बहुमूल्य कागज पर मनोहर टाइप में, अनोखे-अनोखे चित्रों की सजधज तथा उत्सव के साथ छपवा कर, जो 'विन्ध्यस्तरेत् सागरम्' की चेष्टा कर रहे हैं, यह सरासर इनकी हिमाक़त, धृष्टता, अहमन्यता, तथा 'हम चुना दीगरे नेस्ती' के सिवा और क्या हो सकता है? घटानां मिर्यातुस्त्रि भुवन विद्यातुथ्य कलहः।" इत्यादि

(भारतेन्दु भाग १, १६२८)

स्वयं प्रसाद को इस नए काव्य की व्याख्या करनी पड़ी। वे लिखते हैं—"× × अधिकांश महाशय × × × कविता-कर्म समझने की बात तो दूर है, उस पर ध्यान भी नहीं देते। यह क्यों छन्द-विषयक अरुचि है? इसका कारण यह है कि सामयिक पाश्चात्य शिक्षा का अनुकरण करके जो समाज के भाव बदल रहे हैं उनके अनुकूल कविताएँ नहीं मिलतीं और पुरानी कविता को पढ़ना मानो महाकठिन-सा प्रतीत होता है, क्योंकि इस ढङ्ग की कविता बहुतायत से हो गई है×××

'शृङ्गार रस' की मधुरता पान करते-करते आपकी मनोवृत्तियाँ शिथिल हो गई हैं इस कारण अब आपको भावमयी, उत्तेजनामयी अपने को भुला देने वाली कविताओं की आवश्यकता है। अस्तु धीरे-धीरे जातीय संगीतमयी वृत्ति स्फुरणकारिणी, आलस्य को भंग करने वाली, आनन्द बरसाने वाली, धीर गंभीर पद-विक्षेपकारिणी, शांतिमयी कविता की ओर हम लोगों को अग्रसर होना चाहिए। अब दूर नहीं है, सरस्वती अपनी मलिनता को त्याग कर रही है, और नवल रूप धारण करके प्राभातिक ऊषा को भी लजावेगी, एक बार वीणाधारिणी अपनी वीणा को पंचम स्वर में ललकारेगी, भारत की भारती फिर भी भारत ही की होगी।

('इंदु' कला २, किरण १, 'कवि और कवित्त')

इस महान विरोध के कारण इन छायावादी कवियों को अपने काव्य की व्याख्या करनी पड़ी। उन्हें अपनी प्रवृत्तियों को सुलझे रूप में जनता के सामने उपस्थित करना पड़ा। इससे यह लाभ तो हुआ कि हम कवियो की भाव-धाराओं के संबंध में आज अधिक जानते हैं और उनकी मनःभावनाओं का उनकी कविताओं से संबन्ध स्थापित कर सकते हैं। पंत ने लिखा :

१—कविता करने की प्रेरणा मुझे सब से पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है, जिनका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्माचल प्रदेश को है। कवि-जीवन से पहले भी, मुझे याद है, मैं घंटों एकांत में बैठा, प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था, और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर, एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था। तब कभी मैं आँखें मूँदकर लेटता था, तो वह दृश्य-पट चुपचाप, मेरी आँखों के सामने घूमा करता था। अब मैं सोचता हूँ कि क्षितिज में सुदूर तक फैली, एक के ऊपर एक उठी, ये हरित नील धूमिल कूर्माचल

की छायांकित पर्वत-श्रेणियाँ, जो अपने शिखरों पर रजत मुकुट हिमाचल को धारण की हुई हैं, और अपनी ऊँचाई से आकाश की अवाक् नीलिमा को और भी ऊपर उठाई हुई हैं, किसी भी मनुष्य को अपने महान् नीरव संमोहन के आश्चर्य में डुबा कर कुछ काल के लिए, भुला सकती हैं ! और शायद पर्वत प्रांत के वातावरण ही का प्रभाव है कि मेरे भीतर विश्व और जीवन के प्रति एक गंभीर आश्चर्य की भावना, पर्वत की तरह, निश्चय रूप से अवस्थित है। प्रकृति के साहचर्य ने जहाँ एक ओर मुझे सौन्दर्य, स्वप्न और कल्पना-जीवी बनाया, वहाँ दूसरी ओर ज़न-भीरु भी बना दिया। यही कारण है कि जनसमूह से अब भी मैं दूर भागता हूँ, और मेरे आलोचकों का यह कहना कुछ अंशों तक ठीक ही है कि मेरी कल्पना लोगों के सामने आने में लजाती है।

२—दर्शनशास्त्र और उपनिषदों के अध्ययन ने मेरे रागतत्त्व में मंथन पैदा कर दिया और उसके प्रवाह की दिशा बदल दी। मेरी निजी इच्छाओं के संसार में कुछ समय तक नैराश्य और उदासीनता छा गई। मनुष्य के जीवन के अनुभवों का इतिहास बड़ा ही करुण प्रमाणित हुआ। जन्म के मधुर रूप में मृत्यु दिखाई देने लगी, वसंत के कुसुमित आवरण के भीतर पतझर का अस्थिपंजर।

३—किंतु दर्शन का अध्ययन विश्लेषण की पैनी धार से जहाँ जीवन के नाम रूप गुण के छिलके उतार कर मन को शून्य की परिधि में भटकाता है, वहाँ वह छिलके में रस की तरह व्याप्त एक ऐसी सूक्ष्म सश्लेषात्मक सत्य के आलोक से भी हृदय को स्पर्श करता है कि उसकी सर्वातिशयता चित्त को अलौकिक आनन्द से मुग्ध और विस्मित कर देती है। भारतीय दर्शन ने

मेरे मन को अस्थिर वस्तु-जगत् से हटा कर अधिक चिरंतन भाव-जगत् में स्थापित कर दिया।

४—व्यक्तिगत सुख-दुःख के सत्य को अथवा अपने मानसिक संघर्ष को मैंने अपनी रचनाओं में वाणी नहीं दी है, क्योंकि वह मेरे स्वभाव के विरुद्ध है। मैंने उससे ऊपर उठने की चेष्टा की है।

५—बाद की रचनाओं में मेरे हृदय का आकर्षण मानव-जगत् की ओर अधिक प्रकट होता है।

६—'छायावाद' के पास भविष्य के लिए उपयोगी नवीन आदर्शों का प्रकाश, नवीन भावना का सौन्दर्यबोध और नवीन विचारों का रस नहीं था। वह काव्य न रह कर केवल अलंकृत संगीत बन गया था। द्विवेदीयुग के काव्य की तुलना में छायावाद इसलिए आधुनिक था कि उसके सौन्दर्यबोध और कल्पना में पाश्चात्य साहित्य का पर्याप्त प्रभाव पड़ गया था, और उसका भाव-शरीर द्विवेदीयुग के काव्य की परंपरागत सामाजिकता से प्रथक हो गया था। किंतु वह नवयुग की सामाजिकता और विचारधारा का समावेश नहीं कर सका था। उसमें व्यावसायिक क्रांति और विकासवाद के बाद का भावना-वैभव तो था, पर महायुद्ध के बाद की 'अन्न-वस्त्र' की धारणा (वास्तविकता) नहीं आई थी। उसके 'हास-अश्रु आशाऽकांक्षा' 'खाद्य मधुमानी' नहीं बने थे। इसलिए एक ओर वह निगूढ़, रहस्यात्मक, भाव-प्रधान (सबजेक्टिव) और वैयक्तिक हो गया, दूसरी ओर केवल टेकनिक और आवरणमात्र रह गया। दूसरे शब्दों में नवीन सामाजिक जीवन की वास्तविकता को ग्रहण कर सकने से पहले हिन्दी कविता, छायावाद के रूप में, हासयुग के वैयक्तिक अनुभवों, ऊर्ध्वमुखी विकास की प्रवृत्तियों, ऐहिक जीवन की आकांक्षाओं संबंधी स्वप्नों, निराशाओं और संवेदनाओं

विचार, भाव, शैली आदि उसकी पुष्टि के लिए गौण रूप से काम करते रहे हैं।

सुश्री महादेवी वर्मा ने भी अपना व्यक्तिगत विश्लेषण हमें इस प्रकार दिया है—

१— एक ओर साधनापूत, आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर, कर्मनिष्ठ और दार्शनिक पिता ने अपने-अपने संस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा विकास दिया उसमें भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय पर किसी वर्ग या संप्रदाय में न बँधनवाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी। जीवन की ऐसी ही पार्श्व-भूमि पर, माँ की पूजा-आरती के समय सुने हुए मीरा, तुलसी आदि के तथा स्वरचित पदों के संगीत पर मुग्ध होकर मैंने वृजभाषा में पद-रचना आरंभ की थी।

२.......वाह्यजीवन के दुःखों की ओर मेरा विशेष ध्यान जाने लगा......

३—तब सामाजिक जागृति के साथ राष्ट्रीय जागृति की किरणें फैलने लगी थीं, अतः उनसे प्रभावित होकर मैंने भी 'श्रृङ्गारमयी आनुरागमयी भारतजननी भारतमाता', 'तेरी उतारूँ आरती, मा भारती !' आदि रचनाओं की सृष्टि की।

४—इस समय से मेरी प्रवृत्ति एक विशेष दिशा की ओर उन्मुख हुई जिसमें व्यष्टिगत दुःख समष्टिगत गंभीर वेदना का रूप ग्रहण करने लगा और प्रत्यक्ष का स्थूल रूप एक सूक्ष्म चेतना का अभास देने लगा।

५—मेरी काव्य-जिज्ञासा कुछ तो प्राचीन साहित्य और दर्शन में सीमित रही और कुछ संतयुग की रहस्यात्मक आत्मा से लेकर छायावाद के कोमल कलेवर तक फैल गई। करुणावहुल होने के कारण वुद्ध-संवन्धी साहित्य भी मुझे वहुत प्रिय रहा है।

६—मेरे सपूर्ण मानसिक विकास में उस बुद्धि-प्रसूत चिंतन का भी विशेष महत्त्व है जो जीवन की बाह्य व्यवस्थाओं के अध्ययन में गति पाता रहा है। अनेक सामाजिक रूढ़ियों में दबे हुए, निर्जीव संस्कारों का भार ढोते हुए और विविध विषमताओं में साँस लेने का भी अवकाश न पाते हुए जीवन के ज्ञान ने मेरे भावजगत् की वेदना को गहराई और जीवन को क्रिया दी है।

७—निरन्तर एक स्पंदित मृत्यु की छाया में चलते हुए मेरे अस्वस्थ शरीर और व्यस्त जीवन को जब कुछ क्षण मिल जाते हैं तब वह एक अमर चेतना और व्यापक करुणा से तादात्म्य करके अपने आगे बढ़ने की शक्ति प्राप्त करता है।

८—इस बुद्धिवाद के युग में भी मुझे जिस अध्यात्म की आवश्यकता है वह किसी रूढ़ि, धर्म या संप्रदायगत न होकर उस सूक्ष्म सत्ता की परिभाषा है। व्यष्टि की सप्राणता में समष्टिगत एकप्राणता का आभास देती है और इस प्रकार वह मेरे सम्पूर्ण जीवन का ऐसा सक्रिय पूरक है जो जीवन के सब रूपों के प्रति मेरी ममता समान रूप से जगा सकता है। जीवन के प्रति मेरे दृष्टिकोण में निराशा का कुहरा है या व्यथा की आर्द्रता यह दूसरे ही बता सकेंगे, परन्तु हृदय में तो आज निराशा का कोई स्पर्श नहीं पाती, केवल एक गम्भीर करुणा की छाया ही देखती हूँ।

९—साहित्य मेरे सम्पूर्ण जीवन की साधना नहीं है।

१०—बाहर के वैपम्य और संघर्ष से थकित मेरे जीवन को जिन क्षणों में विश्राम मिलता है उन्हीं को कलात्मक कलेवर में स्थिर कर मैं समय-समय पर उनके (काव्य-मर्मज्ञ पाठकों के) पास पहुँचाती रही हूँ।

११—मेरी कविता यथार्थ की चित्रकर्त्री न होकर स्थूलगत

सूक्ष्म की भावक है, अतः उसके उपयोग के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जा सकता है।

१२—भौतिकता के कठोर धरातल पर, तर्क से निष्करुण और हिंसा से जर्जरित जीवन में व्यक्त युग को देखकर स्वयं कभी-कभी मेरा व्यथित मन भी अपना करुण भावना से पूछना चाहता है 'अश्रुमय कोमल कहाँ तू आ गई परदेशिनी री'।— परन्तु मेरे हृदय के कोने-कोने में सजग विश्वास जानता है कि जिस विद्युत के भार से कठोर पृथ्वी फट जाती है, उसी को बादल की सजलता अपने प्राणों का आलोक बनाये घूमती है। अग्नि को बुझाने के लिए हमें, उसके विरोधी उपादानों में ही शक्तिशाली जल की आवश्यकता होगी, अंगारों के पर्वत और लपटों के रेले की नहीं।

'छायावाद' के सम्बन्ध में कवयित्री के विचार उपादेय हैं :

एक—छायावाद ने नये छन्दबंधों में सूक्ष्म सौंदर्यानुभूति को जो रूप देना चाहा वह खड़ी बोली की सात्विक कठोरता नहीं सह सकता था, अतः कवि ने कुशल स्वर्णकार के समान प्रत्येक शब्द को ध्वनि, वर्ण और अर्थ की दृष्टि से नाप-तोल और काट-छाँट कर तथा कुछ नये गढ़ कर अपनी सूक्ष्म भावनाओं को कोमलतर कलेवर दिया।

दो—इस युग की प्रायः सब प्रतिनिधि रचनाओं में किसी न किसी अंश तक प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य में व्यक्त किसी परोक्ष सत्ता का आभास भी रहता है और प्रकृति के व्यक्तिगत सौन्दर्य पर चेतनता का आरोप भी; परन्तु अभिव्यक्ति की विशेष शैली के कारण वे कहीं सौन्दर्यानुभूति की व्यापकता, कहीं संवेदन की गहराई, कहीं कल्पना के सूक्ष्म रंग और कहीं भावना की मर्मस्पर्शिता लेकर अनेक वादों को जन्म दे सकी है।

तीन—यह युग पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित और बंगाल की नवीन काव्य-धारा से परिचित तो था ही साथ ही उसके सामने रहस्यवाद की भारतीय परम्परा भी थी।

चार—कितने दीर्घकाल से वासनोन्मुख स्थूल सौन्दर्य का हमारे ऊपर कैसा अधिकार रहा है यह कहना व्यर्थ है। युगों से कवि को शरीर के अतिरिक्त और कहीं सौन्दर्य का लेश भी नहीं मिलता था। वह उसी के प्रसाधन के लिए अस्तित्व रखता था। जीवन के निम्न स्तर से होता हुआ यह स्थूल, भक्ति की सात्विकता में भी कितना गहरा स्थान ला सका है यह हमारे कृष्ण-काव्य का शृङ्गार-वर्णन प्रमाणित कर देगा।

यह तो स्पष्ट है कि खड़ी बोली का सौन्दर्यहीन इतिवृत्त उसे हिला भी न सकता था। छायावाद यदि अपने संपूर्ण प्राणवेग से प्रकृति और जीवन के सूक्ष्म सौन्दर्य को असंख्य रंग-रूपों में अपनी भावना द्वारा सजीव करके उपस्थित न करता तो उस धारा को × × × ×। मनुष्य की वासना को बिना स्पर्श किये हुए जीवन और प्रकृति के सौन्दर्य को उसके समस्त सजीव वैभव के साथ चित्रित करने वाली उस युग की अनेक कृतियाँ किसी भी साहित्य को सम्मानित कर सकेंगी।

पाँच—छायावाद स्थूल की प्रतिक्रिया में उत्पन्न हुआ था, अतः स्थूल को उसी रूप में स्वीकार करना उसके लिए संभव न हो सका; परन्तु उसकी सौन्दर्य-दृष्टि स्थूल के आधार पर नहीं है यह कहना स्थूल की परिभाषा को संकीर्ण कर देना है।

छः—छायावाद ने कोई रूढ़िगत अध्यात्म या वर्गगत सिद्धांतों का संचय न देकर हमें केवल समष्टिगत चेतना और सूक्ष्मगत सौन्दर्यसत्ता की ओर जागरूक कर दिया था, इसी से उसे यथार्थ रूप में ग्रहण करना हमारे लिए कठिन हो गया।

सात—छायावाद का जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं रहा यह निर्विवाद है परन्तु कवि के लिए यह दृष्टिकोण कितना आवश्यक है इस प्रश्न के कई उत्तर हैं।

आठ—छायावाद के जन्मकाल में मध्यम वर्ग की ऐसी क्रांति नहीं थी। आर्थिक प्रश्न इतना उग्र नहीं था, सामाजिक विषमताओं के प्रति हम संपूर्ण क्षोभ के साथ आज के समान जागृत भी नहीं हुए थे और हमारे सांस्कृतिक दृष्टिकोण पर असंतोष का इतना स्याह रंग भी नहीं चढ़ा था। तब हम कैसे कह सकते हैं कि केवल संघर्षमय यथार्थ जीवन से पालायन के लिए ही उस वर्ग के कवियों ने एक सूक्ष्म भावजगत् को अपनाया। हम केवल इतना कह सकते हैं कि उन परिस्थितियों ने आज की निराशा के लिए धरातल बनाया।

ऊप जो कहा गया है, उससे छायावाद काव्य की प्रवृत्तियों का निरूपण इस प्रकार हो सकता है :

१—अभिव्यंजना के कलात्मक नये प्रयत्न (महा० एक)

२—पाश्चात्य साहित्य और बंगला काव्य का प्रभाव (महा० तीन, सु० ७)

३—प्रकृति की ओर स्वाभाविक एवं रहस्यात्मक आकर्षण (महा० दो, सु० १)

४—वासनामूलक स्थूल सौन्दर्य हटकर सूक्ष्म सौन्दर्य की अभिव्यक्ति (महा० चार)

५—स्थूल के प्रति प्रतिक्रिया (महा० पाँच, छः)

६—जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव (महा० सात)

७—दर्शनशास्त्र और उपनिषदों के अध्ययन का प्रभाव (सु० २)

८—संत-साहित्य एवं बुद्ध का प्रभाव (महा० ५)
९—व्यक्तिगत सुख-दुःख (सु० ४)
१०—कल्पना-प्रियता (सु० ६)
११—पारिवारिक एवं वैयक्तिक प्रभाव (महा० १)
१२—वाह्य जीवन के दुःखों का प्रभाव (वही, २)
१३—सामाजिक और राष्ट्रीय जागृति का प्रभाव (वही, ३)
१४—बुद्धि-प्रसूत चिंतन (वही, ६)
१५—अस्वस्थता और व्यस्तता (वही, ७)

दोनों कवियों ने 'पलायनवाद' और 'अतृप्त वासना' के आक्षेपों का उत्तर दिया है। ये प्रमुख छायावादी कवि इन दोषों लांछनाओं को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से देखते हैं। पंत कहते हैं कि संत और भक्त-साहित्य भी 'पलायनवाद' पर स्थित है और संतों और भक्तों ने भी अपनी अतृप्त आकांक्षाओं को ही भगवान को समर्पित किया है। इस प्रकार ये तो कोई लांछा और अपराध की बात है ही नहीं। महादेवी की दृष्टि में छायावाद के आरंभ के दिनों में आर्थिक समस्याएँ इतनी जटिल नहीं थीं जितनी आज हैं, अतः उनसे भागने का प्रश्न ही नहीं उठता!

परन्तु जहाँ महादेवी इस काव्य से नितान्ततः संतुष्ट हैं, वहाँ पंत के काव्य के प्रति दृष्टिकोण में महान परिवर्तन हो गया है। 'आधुनिक कवि : सुमित्रानंदन पंत' की कवि की भूमिका इनकी प्रगति-शीलता को स्पष्ट कर देती है। इन्होंने ठीक ही कहा है— '(छायावाद) के पास भविष्य के लिये उपयोगी नवीन आदर्शों का प्रकाश, नवीन भावना का सौन्दर्य-बोध और नवीन विचारों का रस नहीं था। वह काव्य न रहकर केवल अलंकृत संगीत बन गया था।' "वह नए युग की सामाजिकता और विचार-धारा का समावेश नहीं कर सकता था।" परन्तु इतना होते हुए भी हिंदी काव्य

में 'आमूल क्रांति करने का श्रेय 'छायावाद' को है, उसका ऐतिहासिक महत्त्व बहुत है, यह कहे बिना नहीं रहा जा सकता।

प्रसाद के काव्य में 'छायावाद' की उपरोक्त कितनी ही प्रवृत्तियाँ मिलती हैं और कितनी ही नवीन प्रवृत्तियों के वे प्रवर्तक हैं। 'कामायिनी' के प्रकाशन ने हमें कम से कम एक काव्य ऐसा दिया है जिसके संबंध में यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव है। इस ग्रंथ में प्रसाद ने जीवन की सर्वांगीण व्याख्या की है और ऐसे सूत्र छोड़े हैं जो भावी जीवनादर्श के निर्माण में सहायक हो सकेंगे। अभिव्यंजना के कलात्मक नए प्रयत्नों की ओर प्रसाद का ध्यान सब छायावादी कवियों से अधिक था, अतः इस क्षेत्र में उनके सचेष्ट, जागरूक प्रयत्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

कवि जयशंकर प्रसाद ने हिंदी-काव्य-क्षेत्र में उस समय पदार्पण किया जब सारा काव्य द्विवेदीयुग की जड़ता और इतिवृत्तात्मकता से निष्क्रिय और निष्प्राण हो रहा था। १६००-२१ तक का काव्य मूलतः नैतिकवादी है। नारी-सौन्दर्य, प्रेम, कल्पना-विलास, जीवन के आनन्द का स्वच्छन्द प्रकाशन, इनका इस काव्य में जरा भी स्थान नहीं है। नए खड़ीबोली काव्य को गढ़ने के लिए आचार्य द्विवेदी ने मराठी काव्य को अपना आदर्श माना था। आधुनिक भारतीय भाषा के काव्यों में मराठी का काव्य सबसे अधिक पुरातनवादी है। वही संस्कृत के वृत्त, वही रुक्ष पदावली, वही नैतिकवाद। इसका फल यह हुआ कि हिंदी की द्विवेदीयुग की कविता को अच्छा नेतृत्व न मिला और वह जड़ रूढ़ि बन गई। श्रीधर पाठक और मैथिलीशरण के काव्य को छोड़ कर उसमें क्या धरा था। स्वयं श्रीधर पाठक अंग्रेजी के १८वीं सदी के कवि गोल्डस्मिथ, पोप, ड्राइडन आदि से प्रभावित हैं। प्रत्येक युग का साहित्य उसके युग के अनुरूप होता है। १६वीं शताब्दी

के अंतिम दशक और बीसवीं शताब्दी के पहले दो दशक अति-नैतिकवादी थे। क्रांति का कहीं नाम न था। रूढ़ियों-परंपराओं का समर्थन जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता समझा जाता था। इसी से कवियों की दृष्टि आचारवादी १८वीं शती के क्लासिकल काव्य और मराठी कविता तक सीमित रही।

परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के अंत होते-होते देश बंगला काव्य से परिचित हो रहा था। माइकेल, बिहारीलाल, हेमचन्द्र और रवीन्द्र हिंदी प्रदेश में भी पहुँचे। इनमें रवीन्द्र की कविता पर अंग्रेजी स्वच्छंदतावाद, उपनिषदों के रहस्यवाद, बंगला भावुकता और वैष्णवभक्ति का प्रभाव था। १९१३ के आस-पास उनके काव्य के अनुकरण से ये प्रभाव भी हिंदी में आ गये। परन्तु रवीन्द्र ने अकेले छायावादी काव्य को जन्म दिया, यह कहना अत्युक्ति होगी। १९०० के बाद से ही 'सरस्वती' में कीट्स शेली, वर्डसवर्थ, ब्लैक आदि रोमांटिक कवियों के अनुवाद प्रकाशित होने लगे थे इन अनुवादों ने अनुवादकर्त्ताओं और लेखकों को प्रभावित किया। दूसरे, अंग्रेजी की उच्च कक्षाओं में रोमांटिक काव्य पढ़ाया जाने लगा था और नए हिन्द के कवि इससे अपरिचित नहीं रह सके। 'पंत' द्वारा अंग्रेजी रोमांटिक काव्य का प्रभाव मुख्य रूप से हिन्दी में आया। 'पंत' और 'निराला' दोनों रवीन्द्र के काव्य से प्रभावित हैं। 'पंत' के 'पल्लव' और निराला की कितनी कविताओं में रवीन्द्र के स्वर बोल उठे हैं। निराला ने विवेकानंद के अद्वैत भक्ति के काव्य से भी स्फूर्ति ली। 'प्रसाद' ने रवीन्द्र की 'गीतांजलि' के प्रभाव को ग्रहण किया। 'झरना' की कविताएँ इसका उदाहरण हैं। परन्तु उन्होंने इस प्रभाव को शीघ्र ही छोड़ दिया। उर्दू काव्य की व्यंजना शैली और भावुकता एवं संस्कृत मुक्तकों एवं आचार्यों की स्थापना से इंगित लेकर उन्होंने अपने लिए एक विशिष्ट काव्य-शैली का निर्माण किया।

केवल एक दशक के भीतर (१६१०-२०) हिंदी काव्य में महान क्रांति हो गई। जिन लोगों ने इसका सूत्रपात किया, वे बङ्गला या अंग्रेजी काव्य के पंडित थे। जितनी शीघ्रता से यह क्रांति हुई, उसका उदाहरण देश के कविता के इतिहास में मिलना असंभव है। इस क्रांति के कारण पाठक कवियों से बहुत पीछे रह गये। उन्होंने कवि पर अस्पष्टता, छायात्मकता, अनैतिकता, पाश्चात्य काव्य का अंधानुकरण, रवीन्द्र की जूठन, सौ तरह के आक्षेप रखे। कवि सौन्दर्योन्मुख था। वह लापरवाही से गाता हुआ बढ़ गया। वह कहता गया—

चींटियों की सी काली पाँति
गीत मेरे चल फिर निशि भोर
फैलते जाते हैं बहु भाँति
बन्धु, छूने अग जग के छोर

इस अहंता की भावना ने पाठक-कवि का विरोध और बढ़ाया। लगभग एक दशक तक यह विरोध चलता रहा। १६३० के लगभग साधारण जनता में यह छायावादी कवि लोकप्रिय हो चुके थे और समीक्षकों ने उनके काव्य में सौंदर्य का पता लगा लिया था। १६३५-३६ तक हिंदी काव्य-जगत् पर छायावाद का राज्य रहा। इसके बाद धीरे-धीरे उसके प्रति प्रतिक्रिया ने जन्म लिया और "प्रगतिवाद" नाम से एक नई धारा प्रकाश में आई। 'छायावाद' के अग्रगण्य कवि 'पंत' इसके प्रवर्त्तक बने।

परन्तु १६३६ तक प्रसाद की 'कामायिनी' प्रकाशित हो चुकी थी और वे अकाल-कलवित हो गये थे। १६१० से १६३६ तक ढाई दशक की कविता में उन्होंने सहयोग दिया और धारा में योग देने के साथ-साथ अपना व्यक्तित्व भी बनाये रक्खा। प्रकाश स्तंभ की भाँति अपनी उज्ज्वलता दैदीप्यमान प्रसाद का काव्य

भावों और विचारों से आँखमिचौनी खेलता रहा। उन्होंने मुक्तक गीतों की इस बाढ़ में भी एक महाकाव्य की सृष्टि की। रवि बाबू ने एक कविता में लिखा है—मैंने महाकाव्य लिखने की बात सोची, परन्तु शोक, प्रेयसी के कंकणों से टकरा कर वह चूर-चूर हो गया। आधुनिक स्वच्छंदतावादी कवि 'प्रेम' और 'सौंदर्य' के छोटे-छोटे, तितलियों तरह हवा में उड़ते हुए, लहरों की तरह भावसमुद्र में उठते-विलीन होते, भावों में खो गया। उसने जीवन के सर्वांगीण रूप को देखा-समझा नहीं। इसी से यह युग प्रगीतियों और मुक्तकों का युग रहा, परन्तु जयशंकर प्रसाद की 'कामायिनी' ने एकमात्र महाकाव्य के रूप में छायावाद की एक बड़ी लांछना दूर कर दी। 'कामायिनी' छायावाद-युग की श्रेष्ठतम विभूति है, इसमें संदेह नहीं।

———

लेखक की अन्य रचनाएँ

उपन्यास

अंबपाली

काव्य

ताण्डव

निबंध

प्रबंध-पूर्णिमा

निबंध-प्रबोध

आलोचना

सूरदास : एक अध्ययन

तुलसीदास : " "

कवि प्रसाद : " "

कबीर : " "

प्रेमचंद : " "

इतिहास

हिंदी साहित्य : एक अध्ययन